भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-३

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र
तथा
आचार्य असङ्गकृत
त्रिशतिकाकारिकासप्तति

རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོ་དང་།
འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་
རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་འགྲེལ་པ།

भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादक एवं अनुवादक
लालमणि जोशी

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५५३ खीस्ताब्द २००९

बौ.६.५२६

भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-३

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र
तथा
आचार्य असङ्गकृत
त्रिशतिकाकारिकासप्तति

༄། །རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོ་དང་།

འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་

རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་བཤད་པ་དང་། བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादक एवं अनुवादक
लालमणि जोशी

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५५३ ख्रीस्ताब्द २००९

भोट-भारतीय ग्रन्थमाला-३

प्रधान सम्पादक : प्रो० गेशे ङवङ समतेन
प्रकाशन प्रभारी : डॉ० पेमा तेनजिन

प्रथम संस्करण : १९७८
द्वितीय संशोधित संस्करण : १९९७
तृतीय संस्करण : ५०० प्रतियाँ, २००९

Acc. 30262 / 30572

मूल्य
सजिल्द : रु० ९०.००
अजिल्द : रु० ६०.००

© **सर्वाधिकार सुरक्षितः**
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी - २२१००७
२००९, प्रकाशन सम्बन्धी सभी अधिकार सुरक्षित ।

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

मुद्रक : सत्तनाम प्रिन्टिंग प्रेस, पाण्डेयपुर, वाराणसी, भारत।

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - III

Vajracchedikā Prajñāpāramitāsūtra

And
a commentary by Acharya Asanga

Triśatikākārikāsaptati

Edited and translated
by
L. M. Joshi

भोट विद्या संस्थानम्

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

B.E. 2553 C.E. 2009

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - III

Chief Editor : *Prof. Geshe Ngawang Samten*
Publication In-charge : *Dr. Pema Tenzin*

First Edition : 1978
Second Edition : 1997
Third Edition : 500 copies, 2009

Price : Hard Back : Rs. 90.00
Paper Back : Rs. 60.00

© Copyright by Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi -221007, India, 2009. All rights reserved.

Publisher :
Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221007, India.

Printed at Sattnam Printing Press, Pandeypur, Varanasi, India

པར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

༄༅། །ཤེར་ཕྱིན་སུམ་བརྒྱ་པའམ། རྡོ་རྗེ་གཅོད་པར་གྲགས་པའི་ཤེར་ཕྱིན་གྱི་མདོ་འདི་ནི། བོད་དུ་གྲོན་ཐུ་བའི་ཤེར་མདོ་ཞིག་ཡིན་ལ། བོད་ཐུ་མ་དག་ཡུམ་སྲས་ཀྱི་དབྱེ་བས་སྲས་བཅུ་གཅིག་ཏུ་བགྲངས་པའི་ནང་ཚན་ཞིག་ཡིན་པར་མ་ཟད། བོད་མི་རྣན་རབས་མང་པོས་དད་མོས་ཀྱིས་རྒྱུན་པར་ཁ་ཏོན་དུ་བྱ་བའི་མདོ་སྡེ་ཞིག་ཡིན་པ་དང་།

དེའི་དཀའ་འགྲེལ་འཕགས་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་ཤེར་ཕྱིན་སུམ་བརྒྱ་པའི་འགྲེལ་པ་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་བདུན་ཅུ་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདི་ཐོགས་མེད་ཀྱི་གསུང་ཤེར་ཕྱོགས་ཀྱི་བསྟན་བཅོས་རྨད་བྱུང་ཞིག་ཡིན་པས། གཉིས་ཀ་ལེགས་སྦྱར་གྱི་སྐད་དུ་ད་བར་མ་བརླགས་པར་འཕགས་ཡུལ་འདིར་མ་དཔེ་རྙེད་སོན་བྱུང་བ་ནི་སྐྱེ་རྒུའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་སྐལ་བ་མཆོག་ཏུ་འཕྲུམས།

འདིའི་རྩ་འགྲེལ་གཉིས་ཀའི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་རྒྱ་དཔེའི་མ་ཕྱི་དག་ཞུས་དང་། ཧྲིན་སྐད་དུ་སྒྲ་སྒྱུར་བཅས་ལོ་མང་སྔོན་ནས་མཁས་དབང་ཆེན་པོ་ལུའུ་མཆི་ཛོ་ཤཱིས་མཛད་འདུག་པ། དེང་དུས་ཤེར་ཕྱོགས་ཀྱི་སློབ་གཉེར་བ་དག་ལ་ཤིན་ཏུ་མཁོ་བར་སྣང་བས། བོད་སྐད་དུ་ཤེར་མདོ་སུམ་བརྒྱ་པ་བཅས་མཉམ་དུ་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་ནས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༧༨ ལོར་འཕགས་བོད་པོད་ཕྲེང་གྲས་སུ་པར་བསྐྲུན་ཞུས་ཤིང་། སྐབས་དེར་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་བདུན་ཅུ་པ་སྔ་དགེའི་བསྟན་འགྱུར་དུ་མ་བཞུགས་པའི་དབང་གིས་གཞུང་དེ་བོད་དུ་མ་འགྱུར་

ཚུལ་པར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད་དུ་བཀོད་འདུག་པ་ནི་མཐོང་རྒྱ་ཆུང་སྐྱོན་གྱིས་ནོར་འཁྲུལ་ཆབས་ཆེ་ཞིག་བྱུང་འདུག་པར་ཀློག་པ་པོ་ཡོངས་ལ་སྙིང་ནས་བཟོད་གསོལ་ཞུ་བ་དང་ཆབས་ཅིག་གཞུང་འདི་པེ་ཀིང་བསྟན་འགྱུར་དུ་ (ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་བཤད་པ། བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།) ཞེས་པའི་མཚན་བྱང་འོག་བཞུགས་འདུག་པ་འདི་གའི་རྩོམ་སྒྲིག་ལས་རོགས་པདྨ་བསྟན་འཛིན་གྱིས་མ་ཕྱི་གཞན་དང་མཚུངས་བསྡུར་གྱིས་དག་ཞུས་དང་། ལྷག་པར་པར་ཐེངས་སྔོན་མའི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་སྐད་དུ་མ་ཚང་བ་ཇི་སྙེད་ཅིག་ལུས་འདུག་པ་རྣམས་བོད་སྐད་ནས་བསྒྱུར་གསོ་བྱས་ཏེ་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་བདུན་ཅུ་པའང་བོད་སྐད་དང་ཆབས་ཅིག་ད་རེས་པར་ཐེངས་གཉིས་པ་འདིར་པར་སྐྲུན་ཞུས་ཡོད། རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་བོད་ཡིག་ཀྱང་མ་དཔེ་གཞན་དང་མཚུངས་བསྡུར་གྱིས་དག་ཞུས་བསྒྱུར་ནན་དང་བཅས་པར་ཐེངས་གཉིས་པ་པར་སྐྲུན་ཐུབ་པ་འདིས་དོན་གཉེར་ཅན་མང་པོར་ཕན་ཐོགས་ཡོང་བའི་རེ་བ་ཡོད། དག་ཞུས་མཛད་པོ་པདྨ་བསྟན་འཛིན་ལ་ལེགས་སོའི་བསྔགས་བརྗོད་དང་། འདིས་ཀྱང་བསྟན་འགྲོར་སྨན་ཐབས་ཆེན་ཡོང་བའི་སྨོན་འདུན་དང་བཅས། ཝཱ་ཎ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་སློ་བཟང་བསྟན་འཛིན་གྱིས་ ༡༩༩༧ ཕྱི་ཟླ་ ༡༠ ཚེས་ ༣༩ ལ་བྲིས།

प्रकाशकीय

'त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता' या 'वज्रच्छेदिका' नाम से प्रसिद्ध यह ग्रन्थ प्रज्ञापारमितासूत्रों का एक संक्षिप्त ग्रन्थ है, जो भोट देश में प्राचीनकाल में ही या प्रारम्भिक समय में ही पहुँच गया था । प्राचीन भोटदेशीय विद्वान् 'माता एवं पुत्र' के नाम से वर्गीकृत सत्रह प्रज्ञापारमितासूत्रों में से इसे 'पुत्रवर्ग' के अन्तर्गत मानते हैं, जिस (वर्ग) में ग्यारह ग्रन्थ सम्मिलित हैं । यह ग्रन्थ भोटदेशीय धार्मिक व्यक्तियों के प्रायः नित्य पाठ करनेवाले ग्रन्थों में संगृहीत है ।

इन दोनों ग्रन्थों के संस्कृत मूलपाठ (मातृका) का सम्पादन एवं इनका हिन्दी अनुवाद प्रो० लालमणि जोशी ने बहुत पहले ही तैयार कर लिया था । आधुनिक विद्यार्थी, जिनकी अभिरुचि आजकल प्रज्ञापारमिता शास्त्रों की ओर अधिक है, उनके लिए ये ग्रन्थ बहुत उपयोगी जान पड़ते हैं । इन बातों को ध्यान में रखकर सन् १९७८ ई० में भोट भारतीय ग्रन्थमाला के अन्तर्गत केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान ने हिन्दी अनुवाद सहित मूलग्रन्थ 'त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता' को तिब्बती अनुवाद तथा असंग की टीका के साथ प्रकाशित किया है ।

उस समय संस्थान में देगे-तनग्युर के अलावा अन्य तनग्युर संस्करण सुलभ नहीं थे तथा उस संस्करण में असङ्ग की 'त्रिशतिका-कारिकासप्तति' का भोटानुवाद उपलब्ध नहीं था, इस कारण उस ग्रन्थ का भोट भाषा में अनुवाद नहीं हुआ—ऐसा प्रकाशकीय में उल्लिखित है । यह गलती हमारी अल्प दृष्टि के कारण हुई है, अतः सभी श्रोताओं से इसके लिए अन्तर्हृदय से क्षमा-याचना करता हूँ । वस्तुतः यह ग्रन्थ पेंकिङ-तनग्युर संस्करण में ''वज्रच्छेदिकायाः प्रज्ञापारमिताया व्याख्यानोनिबन्धन-कारिका'' नाम से तिब्बती भाषा में सुरक्षित है, उसका यहाँ के सहायक सम्पादक श्री पेमा तेनजिन ने अन्य प्रतिलिपियों के साथ तुलनात्मक निरीक्षण करके संशोधन किया है । विशेषतः पूर्व संस्करण में संस्कृत के जो अनेक अंश अपूर्ण (खाली) रह गये थे, उन सबका भोट संस्करण की सहायता से पुनरुद्धार करके परिपूर्ण रूप में इस

'कारिकासप्तति' को भी भोट पाठ के साथ इस द्वितीय संस्करण में प्रकाशित किया गया है । इसी प्रकार वज्रच्छेदिका के भोट पाठ का भी पुनः अन्य संस्करणों के साथ समुचित तुलनात्मक अध्ययन करके ठीक से संशोधित एवं सुनिर्णीत करके यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है । इससे अनेक जिज्ञासुओं को लाभ पहुँचने की आशा करता हूँ । पुनरुद्धार एवं संशोधन के लिए श्री पेमा तेनजिन को साधुवाद देता हूँ । इससे (बुद्ध) शासन एवं जगत् का हित सम्पादित हो—ऐसा प्रणिधान करता हूँ ।

बुद्धाब्द–२५४१
सन्–१९९७

भिक्षु सम्दोङ् रिनपोछे
(निदेशक)

प्राक्कथन

(द्वितीय संस्करण)

स्व० प्रो० लालमणि द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र एवं आचार्य असंगकृत त्रिशतिका प्रज्ञापारमिताकारिकासप्तति का यह द्वितीय संस्करण है। प्रथम संस्करण इसी संस्थान से भोट-भारती ग्रन्थमाला के अन्तर्गत १९७८ में प्रकाशित हुआ।

प्रथम संस्करण में कुछ संशोधनों एवं असंगकृत त्रिशतिकाकारिकासप्तति के अधूरे श्लोकों की पूर्ति तथा भोट पाठ के सम्पादन के साथ द्वितीय संस्करण का कार्य भार मुझे सौपा गया। शायद इसका एक कारण यह भी रहा कि मैंने इस सूत्र का भोट पाठ के साथ पाठ भेद निर्धारण कर सम्पादन एवं आचार्य कमलशील विरचित वज्रच्छेदिकासूत्र की विस्तृत टीका (Ton 3817. Sher Phyin(Ma 204-267) का तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार किया है, जो सन् १९९४ में संस्थान से उपरोक्त ग्रन्थमाला के ही अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत संस्करण में मुख्य ग्रन्थ वज्रच्छेदिकासूत्र का मैंने भोट पाठ के साथ मिलान कर यत्र तत्र कुछ सम्पादन कार्य किया। तथा सूत्र के भोट पाठ का समावेश ग्रन्थ के अन्त में किया है। विभिन्न भोट संस्करणों में से ल्हासा संस्करण (LMP) 022, 033-034 Fish 11/23 Page 215-235) को आधार मानकर संस्कृत, देगे (Toh.12, Sher Phyin (K. 221-232) एवं नरथङ (LMP) 026, 034-036 Fish 12/14 Pahe 222-240) संस्करणों से पाठ निर्धारण कर भोट पाठ का सम्पादन किया है।

द्वितीय ग्रन्थ आचार्य असंग की कृति त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति है, जिसके लगभग २० त्रुटित श्लोकों का तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार संस्थान

के रिसर्च प्रो० रामशंकर त्रिपाठी जी के सहयोग से किया तथा उन्हें कोष्ठक में रखा है। ग्रन्थ को भोट पाठ से मिलान कर सम्पादन भी किया है तथा भ्रमित पाठों को नीचे दिया है। इस ग्रन्थ के भोट पाठ को भी ग्रन्थ के अन्त में रखा गया है। यह ग्रन्थ देगे संस्करण में उपलब्ध नहीं है। अतः पेकिंग संस्करण में उपलब्ध तनग्युर संग्रह से लिया गया है (नानाविद्या 5070 Nyo), मैंने इस भोट पाठ का संस्कृत एवं सेरडी (तनग्युर Vol. 96, Nyo) संस्करण से पाठ का निर्धारण कर सम्पादन किया है।

अन्त में मैं परम श्रद्धेय निदेशक जी का हृदय से आभार व्यक्त करना चाहूँगा कि उन्होंने प्रो० जोशी जैसे विद्वान् के ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण का दायित्व मुझे सौंपा। मैं इस संस्करण के माध्यम से स्व० प्रो० जोशी को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना चाहता हूँ। प्रकाशन अनुभाग के कार्यकर्त्ताओं के सहयोग के लिए उन्हें भी धन्यवाद देना चाहता हूँ और इस पुनीत कार्य से अर्जित कुशलमूल का सभी सत्त्वों के लिए परिणामना करना चाहता हूँ। सबका मंगल हो, सबका कल्याण हो।

भवतु सर्वमङ्गलम्।

पेमा तेनजिन, आचार्य

सहायक सम्पादक

प्रकाशकीय

(तृतीय संस्करण)

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र तथा आचार्य असङ्ग कृत "त्रिशतिकाया: प्रज्ञापारमिताया: कारिकासप्तति:" उपनिबन्धन नामक ग्रन्थ का प्रथम संस्करण 1978 में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल किये जाने की वज़ह से इसके महत्त्व एवं लोकप्रियता को देखते हुए 1997 में आचार्य असंग की त्रिशतिकाकारिकासप्तति में कुछ अप्राप्त एवं त्रुटित श्लोकों का भोट पाठ की सहायता से पुनरुद्धार कर उसके भोट पाठ का सम्पादन सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ का संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, जो अब समाप्त हो चुका है।

पाठकों की लोकप्रियता एवं बढती हुई माँग को देखकर इस ग्रन्थ के तृतीय संस्करण को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। वर्तमान संस्करण में संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है, अत: इसमें कोई परिवर्तन न करते हुए इसे उसी रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा करता हूँ कि इसके प्रकाशन से न केवल शैक्षणिक जगत् में प्रज्ञापारमिता साहित्य के अध्येता लाभान्वित होंगे, अपितु इसके गहन चिन्तन एवं मनन से वस्तुओं की यथास्थिति का अवबोध होकर आभ्यन्तर ज्ञान में वृद्धि होगी।

ज्येष्ठ पूर्णिमा
७ जून, २००९

कुलपति
प्रो० गेशे नवङ समतेन

विषय-सूची

		पृष्ठ सं०
१.	प्रकाशकीय (हिन्दी)	v-vi
२.	प्रकाशकीय (तिब्बती)	vii-viii
३.	प्राक्कथन	ix-x
४.	विषय सूची	xi
५.	संकेत विवरण	xii
६.	भूमिका- प्रस्तुत पुस्तक-वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-असङ्गकृत त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता-कारिका सप्तति-'प्रज्ञा' का अर्थ और 'प्रज्ञापारमिता' के विचार का विकास-प्रज्ञापारमिता साहित्य	१-३३
७.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र (मूल)	३५-५८
८.	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र (अनुवाद)	५९-९०
९.	त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिका सप्तति (मूल)	९१-१०१
१०.	त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिका सप्तति (अनुवाद)	१०३-१२१
११.	शब्दकोश	१२२-१३०
१२.	सहायक ग्रन्थों एवं लेखों की सूची	१३१-१३६
१३.	आर्यवज्रच्छेदिका नाम प्रज्ञापारमिता महायान सूत्र (तिब्बती)	१३७-१७८
१४.	वज्रच्छेदिकाया: प्रज्ञापारमिताव्याख्यानोपनिबन्धन-कारिका (तिब्बती)	१७९-१९९

●

संकेत विवरण

अ० प्र०	:	अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता, सं परशुराम लक्षमण वैद्य, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली-४, दरभंगा, १९६०; सं० राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता १८८८।
अ० प्र० अनु०	:	अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता, अंग्रेजी अनु० एडवर्ड कॉन्ज़, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९५८ ।
इ० रि० इ०	:	इन्साइक्लोपेडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स, सं० जेम्स हेस्टिंग्ज, एडिनबरा ।
कॉन्ज़	:	वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता, सं० एवं अंग्रेजी अनु० एडवर्ड कॉन्ज़ ।
गा० ओ० सि०	:	गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा ।
गिलगिट/चक्रवर्ती	:	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता की गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपि एन० पी० चक्रवर्ती द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित, एवं जी० तुची द्वारा प्रकाशित मा० बु० टे० भाग १, रोम, १९५६ ।
ना० सं०	:	नागरी संस्करण ।
पू० उ०	:	पूर्व उद्धृत ।
प्रज्ञाकरमति	:	प्रज्ञाकरमति (८०० ई०) कृत बोधिचर्यावतार-पञ्जिका, परशुराम बैद्य द्वारा बौ० सं० ग्र०— १२ में सम्पादित, दरभङ्गा १९६० ।
पार्जीटर	:	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता ऑरेल स्टाइन द्वारा तुर्किस्तान से प्राप्त एफ० ई० पार्जीटर द्वारा सम्पादित तथा ए० एफ० आर० होर्नल द्वारा मैनुस्क्रिप्ट रिमेन्स ऑफ बुद्धिस्ट लिटरेचर फाउण्ड नि ईस्टर्न तुर्किस्तान, १९१६ में प्रकाशित ।
बौ० सं० ग्र०	:	बौद्ध-संस्कृत ग्रन्थावली, दरभङ्गा ।
बुद्धिस्टिक कल्चर	:	स्टडीज़ इन दि बुद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इण्डिया (ड्यूरिंग दि सेवेन्थ एण्ड एट्थ सेन्चुरीज़ ए० डी०), दिल्ली, १९६७ ।
मा० बु० टे०	:	माइनर बुद्धिस्ट टेक्स्ट्स भाग १, जी० तुची द्वारा सम्पादित से० आ० रो० ९, रोम, १९५६ ।
मैक्सम्यूलर	:	वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र, मैक्सम्यूलर द्वारा सम्पादित एनेक्डोटा ऑक्सोनीन्सिया; आर्यन सेरीज; वॉल्यूम १, भाग १, १९८१ ।
वैद्य	:	त्रिशतिका वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, परशुराम वैद्य द्वारा महायानसूत्रसंग्रह भाग १-बौ० सं० ग्र०—१७ में सम्पादित, दरभङ्गा १९६१ ।
से० ऑ० रो०	:	सेरी ऑरियन्तल रोमा (रोम ऑरियन्टल सिरीज) ।

•

भूमिका

१. प्रस्तुत पुस्तक

यह पुस्तक महायान बौद्ध धर्म-दर्शन से सम्बन्धित है और हिन्दी में प्रकाशित बौद्ध धर्म की अपने प्रकार की सर्वप्रथम पुस्तक है। इसमें महायान के दो लघु परन्तु प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रंथों का नागरी संस्करण तथा हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इन दो ग्रंथों में पहला महायान सूत्र है जो 'वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र' के नाम से सुविख्यात है। दूसरा महायान शास्त्र की कोटि का ग्रंथ है जिसका नाम 'त्रिशतिकाया: प्रज्ञापारमिताया: कारिकासप्तति:' है; यह उक्त सूत्र की संक्षिप्त टीका है और इसके रचयिता प्रसिद्ध बौद्धाचार्य असङ्ग हैं। पहले 'वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता' मूल संस्कृत में दी गयी है; कुछ पाण्डुलिपियों के महत्त्वपूर्ण पाठान्तर तथा सूत्र में प्रयुक्त सामग्री के तुलनीय साक्ष-निर्देश यत्र-तत्र पाद-टिप्पणियों में दिये गये हैं। तत्पश्चात सूत्र का सरल हिन्दी अनुवाद दिया गया है; अनुवाद में भी व्याख्यात्मक एवं तुलनात्मक टिप्पणियों का समावेश किया गया है। यही पद्धति 'कारिकासप्तति' के साथ भी अपनाई गयी है, पहले मूल संस्कृत पाठ तदनन्तर व्याख्यात्मक हिन्दी अनुवाद।

दूसरा ग्रन्थ पर्याप्त कठिन है, क्योंकि इसका विषय अति गम्भीर है और अनेक स्थलों पर इसका मूल पाठ लुप्त हो गया है। वस्तुत: 'वज्रच्छेदिका' भी अत्यंत गूढ़ार्थयुक्त कठिन दार्शनिक ग्रन्थ है। दोनों ग्रन्थों का एक साथ नागरी लिपि में सम्पादन यहाँ पर प्रथम बार हुआ है; दोनों का हिन्दी अनुवाद भी सर्वप्रथम यहीं हुआ है। प्रज्ञापारमिता साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाले इन दो लघु ग्रन्थों के प्रस्तुत संस्करण से सद्धर्म की व राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा होगी और आधुनिक भारत में बौद्ध विद्या के अध्ययन में जिज्ञासुओं को कुछ सहायता मिलेगी, इन पुनीत आशाओं से प्रेरित होकर मैंने यह विनम्र प्रयास किया है। पुस्तक को उपयोगी बनाने की दृष्टि से सहायक ग्रन्थों की सूची, पारिभाषिक शब्द-कोश एवं विशेष नामों व विषय की

अनुक्रमणिका भी समाविष्ट कर दी गयी है। पाठकों को चाहिए कि मुख्य ग्रन्थों को पढ़ने से पूर्व भूमिका तथा पारिभाषिक शब्द-कोश का अवलोकन करें। इससे इन ग्रन्थों का सार अधिगत करना सरल हो जायगा।

२. वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र महायान बौद्ध धर्म के प्रज्ञापारमिता साहित्य[१] के लगभग ४० ग्रन्थों में से एक है। ग्रन्थ का यह नाम अर्थ से भरपूर है : 'ऐसी प्रज्ञापारमिता जो वज्र की भाँति (अज्ञान को) काटती है'; कुछ पश्चिमी विद्वानों ने इसको अंग्रेजी में 'डायमण्ड-कटर', 'डायमण्ड-सूत्र' कहा है जो उचित नहीं जान पड़ता। 'जो वज्र को भी काट देती है', लिखना बड़ा स्थूल अर्थ लगाना है। प्रज्ञावज्र की भाँति है परन्तु बौद्ध धर्म में 'वज्र' का अर्थ अंग्रेजी का 'डायमण्ड' अथवा 'थण्डरबोल्ट' नहीं है; यह रहस्यमय 'वज्र' है; शून्यता रूपी वज्र, प्रज्ञा रूपी खड्ग अथवा शस्त्र है, जो क्लेश और अज्ञान का उच्छेद कर देता है, 'धम्मसंगणि' में प्रज्ञा को शस्त्र (पञ्ञासत्थं) कहा गया है[२]। क्योंकि यह क्लेशों का छेदन (किलेसच्छेदन) करने वाला शस्त्र है[३]। तालपुटथेरगाथा में भी तृष्णा-लता को काटने वाली तीक्ष्ण तलवार को प्रज्ञामय (पञ्ञामयं तिखिणमसिं) कहा गया है[४]। कविवर मातृचेत ने बुद्धवचन की तुलना सूर्य, जो पुनः पुनः अन्धकार (अज्ञान) को हटाता है, और इन्द्र के शस्त्र वज्र, जो अभिमानी पर्वतों के भी टुकड़े करता है, से की है। प्रज्ञापारमिता साहित्य का मुख्य विषय 'शून्य' अथवा 'शून्यता' का उपदेश करना है। बौद्ध तन्त्रों में प्रज्ञा अथवा शून्यता को वज्र कहा गया है और अद्वयवज्र इसकी वज्रयानी व्याख्या करता है[५]। डॉ० कॉन्ज का सुझाव है कि 'छेदन' करने की उपमा का स्पष्टीकरण उन

---

१. द्र० एडवर्ड कॉन्ज, दि प्रज्ञापारमिता लिटरेचर, दि हेग १९६०।

२. धम्मसंगणि, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, पृ० २१।

३. अट्ठसालिनी, लन्दन, १८९७, पृ० १४८।

४. खुद्दकनिकाय, जिल्द २, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, पृ० ३७६।

५. अद्वयवज्र-संग्रह, सं० हरप्रसाद शास्त्री, पृ० २३।

मूर्तियों द्वारा भी होता है जिनमें प्रज्ञापारमिता तथा मंजुश्री को खड्ग सहित दिखाया गया है। अतएव ग्रन्थ का नाम उसकी विषय-वस्तु के अनुकूल है। क्योंकि 'वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र' का अर्थ है ऐसा सूत्र अथवा बुद्ध-उपदेश जो क्लेशावरणों को वज्र-सदृश खड्ग की तरह काट देता है; यह मोह-जाल और तृष्णा-लता को काटकर नष्ट करने वाला प्रज्ञापूर्ण वज्रास्त्र है। पारगामिनी, पारंगता, संसार-सागर से पार, निर्वाण नगरी तक, ले जाने वाली प्रज्ञा को 'प्रज्ञापारमिता' कहते हैं। प्रज्ञापारमिता एक पूर्णता है, आध्यात्मिक साधना की सिद्धि है; यह छः और दश पारमिताओं में छठी पारमिता है[१]। यह ज्ञान की पराकाष्ठा और बोधिदात्री है; यह अत्यंत गूढ़, सूक्ष्म, निपुण और अतर्कावचर है; प्रज्ञापारमिता को शून्यता, धर्मता, धर्मधातु, तथता, भूतकोटि, परमार्थ, धर्मकाय आदि नामों से जाना जा सकता है[२]। प्रज्ञापारमिता शब्द का प्रयोग उन सूत्रों के लिए सुविदित है जिनमें इसका उपदेश निहित होता है; प्रज्ञापारमिता साहित्य महायान बौद्ध साहित्य की प्रारंभिक और महत्वपूर्ण श्रेणी है। यह अत्यन्त पवित्र एवं विस्तृत सूत्र साहित्य है। 'सूत्र' (पालि 'सुत्त', चीनी 'चिंङ्', तिब्बती 'म्दो') प्रज्ञा की सूचना देने वाले, बुद्ध के उपदेश की सूचना देने वाले ग्रन्थ हैं।

'वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र' में ३०० श्लोक हैं; अतः इसे त्रिशतिका (नाम वज्रच्छेदिका) प्रज्ञापारमिता भी कहा जाता है। असङ्ग ने इसे 'त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता' कहा है; इसमें ३२ छोटे-छोटे अध्याय हैं। ग्रन्थ के प्रारंभ व अंत में इसका नाम पाया जाता है परन्तु विभिन्न पाण्डुलिपियों के विभिन्न शीर्षक भी दिये गये हैं। इसकी चर्चा आगे यथास्थान की गई है। अधिकांश महायान सूत्रों के प्रकाशन का स्थान राजगृह के निकट गृध्रकूट पर्वत शिखर है। परन्तु प्रस्तुत सूत्र का प्रकाशन श्रावस्ती के प्रसिद्ध श्रेष्ठि अनाथपिण्डद द्वारा निर्मित जेतवन स्थित बिहार में हुआ था। इसमें प्रश्नकर्ता आयुष्मान् सुभूति हैं और भगवान बुद्ध उनके विविध प्रश्नों का उत्तर देते हैं। ग्रन्थ का केन्द्रीय विचार प्रज्ञापारमिता का सम्यक् स्वरूप प्रस्तुत करता है। परन्तु

---

१. द्र० धर्म-संग्रह, पृ० १७-१८ ।

२. द्र० प्रज्ञाकरमति, पृ० १७१ ।

सूत्र के अध्ययन व श्रवण के पुण्यों की पुनः पुनः चर्चा भी अधिकांश अध्यायों में की गयी है।

इस ग्रन्थ की तिथि निश्चित करना कुछ कठिन है। निश्चय ही यह प्रारम्भिक महायान सूत्रों से कुछ समय पश्चात् रचा गया था क्योंकि इसमें 'हीनयान' से 'महायान' की तुलनात्मक श्रेष्ठताओं का अभाव है; 'श्रावकों' और 'प्रत्येकबुद्धों' की इसमें चर्चा ही नहीं की गयी है।[१] यह 'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र' के बाद की रचना है। जैसा कि डॉ० कॉन्ज ने इंगित किया है वज्रच्छेदिका में लगभग आठ स्थलों पर अष्टसाहस्रिका के वाक्यों व विचारों की झलक दिखाई पड़ती है। अष्टसाहस्रिका प्राचीनतम प्रज्ञा-ग्रन्थ माना जा सकता है। लोकरक्ष ने इसे १४८ ई० में चीनी में अनूदित कर दिया था। आचार्य नागार्जुन का जीवन समय ई० पू० से ८० से १२० ई० के मध्य निश्चित करने का प्रयत्न अन्यत्र किया है।[२] इस आचार्य ने एक प्रज्ञापारमिता, सम्भवतः अष्टसाहस्रिका, पर भाष्य लिखा था जो 'महाप्रज्ञापारमिता-शास्त्र' नाम से चीनी में उपलब्ध है और अब फ्रेंच में भी अनूदित हो चुका है।[3] अतएव अष्टसाहस्रिका की तिथि २०० ई० पूर्व ठहरती है। अनेक विद्वान् पंचविंशतिसाहस्रिका, दशसाहस्रिका तथा शतसाहस्रिका नामक प्रज्ञापारमिताओं को बहुत प्राचीन मानते हैं।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रच्छेदिका दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी की रचना है। इसका पहला चीनी अनुवाद ४०० ई० का है जो कुमारजीव ने किया था। वज्रच्छेदिका की प्रतियाँ गिलगिट

---

१. द्र० लालमणि जोशी, 'महायान बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास', सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रंथ, वाराणसी, १९६५, पृ० ११३।

२. एल० एम० जोशी, 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ दि माध्यमिक फिलॉसॉफर नागार्जुन', दि महाबोधि, वॉल्यूम ७३ नं० १-२, कलकत्ता, १९६५।

३. ई० लामोत ले त्रेते दे ला ग्रण्द विर्तु दे साजेस दे नागार्जुन, ४ भाग, लुवें, १९७६।

४. द्र० नलिनाक्षदत्त, एस्पेक्ट्स ऑफ महायान, पृ० ३२३-२८ प० ल० वैद्य, अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता (सं०) इण्ट्रोडक्शन; कॉन्ज, दि मिडिल वे, वर्ष ३२, अंक ४, १९५७; तथा दि प्रज्ञापारमिता लिटरेचर, पृ० २६, ५०-५१।

व मध्य एशिया में मिली हैं। श्री एन० पी० चक्रवर्ती ने गिलगिट पाण्डुलिपियों की तिथि ५वीं शती सुझाई है। श्री एफ० ई० पार्जीटर ने पूर्वी तुर्किस्तान से श्री ऑरेल स्टाइन द्वारा प्राप्त वज्रच्छेदिका की संस्कृत पाण्डुलिपि की तिथि ५००-६०० ई० सुझाई है। वज्रच्छेदिका के चीनी भाषा में छः अनुवाद उपलब्ध हैं; पहला कुमारजीव द्वारा (४०० ई०), दूसरा बोधिरुची द्वारा (५२० ई०), तीसरा परमार्थ द्वारा (५६२ ई०), चौथा धर्मगुप्त द्वारा (६०० ई०), पाँचवाँ श्वानच्वाङ् द्वारा (६६० ई०), तथा छठा ई० चिङ् द्वारा (७०३ ई०)।

भारत और चीन में ही नहीं वरन् तिब्बत, मध्य एशिया व मंगोलिया में भी यह लोकप्रिय ग्रन्थ था। इसके तीन अनुवाद तिब्बती में, एक खोतानी भाषा में, तीन सोगदियन भाषा में, चार मंगोलियन भाषा में और दो मान्चू भाषा में उपलब्ध हैं। आधुनिक काल में भी वज्रच्छेदिका विद्वानों का प्रिय ग्रंथ है। इसके सात विभिन्न अनुवाद अंग्रेजी में, दो फ्रेंच में, दो जर्मन में और एक से अधिक जापानी में किये जा चुके हैं। हिन्दी अनुवाद की कमी यहाँ पर पूरी की जा रही है। अंग्रेजी अनुवादों में मैक्सम्यूलर, श्री ए० एफ० प्राइस तथा डॉ० कॉन्ज के अनुवाद सुलभ और उल्लेख्य हैं।

शान्तिदेव ने अपने एक ग्रंथ में 'वज्रच्छेदिका' से दो बार उद्धरण लिए हैं।[१] प्रज्ञाकरमति ने भी अपनी पंजिका में 'आर्यवज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता' का उल्लेख किया है और इससे एक लम्बा वाक्य उद्धृत किया है।[२] चन्द्रकीर्ति ने अपने एक शास्त्र में इस सूत्र की दो गाथाएँ उद्धृत की हैं।[३] प्रज्ञाकरमति ने अन्यत्र सूत्र का नाम लिए बिना ही इसकी एक गाथा उद्धृत की है।[४] हरिभद्र ने भी अपने ग्रंथ में इस सूत्र की एक गाथा की पहली पंक्ति उद्धृत की है।[५] डॉ० प० ल० वैद्य के द्वारा प्रस्तुत परिशिष्ट से

---

१. शिक्षासमुच्चय, सं० सेसिल बेन्डाल, पृ० १७१ तथा २७५ सं० प० ल० वैद्य, पृ० ९५ तथा २४६।

२. बोधिचर्यावतार-पंजिका, सं० प० ल० वैद्य पृ० २०९-२१०।

३. चतुःशतक-वृत्ति, विधुशेखरभट्टाचार्यकृत तिब्बती से संस्कृत उद्धार, पृ० १७९।

४. बोधिचर्यावतार-पंजिका पृ० २००।

५. अभिसमयालङ्कारालोकव्याख्या सं० प० ल० वैद्य, पृ० ३६६।

ज्ञात होता है कि यह पंक्ति प्रसन्नपदा से है।[१] जो कि चन्द्रकीर्ति का ग्रंथ है। परन्तु वास्तव में यह पंक्ति वज्रच्छेदिका के अध्याय २६ से ली गई है; हरिभद्र ने इस सूत्र का उल्लेख नहीं किया है। हाँ यह सत्य है कि यह उद्धरण प्रसन्नपदा में भी पाया जाता है[२]। प्राचीन भारत में व प्राचीन चीन में वज्रच्छेदिका की लोकप्रियता और प्रामाणिकता इस तथ्य से स्पष्ट है कि ५ भारतीय बौद्ध मनीषियों ने और ९ चीनी बौद्ध पण्डितों ने इस पर टीकायें और टिप्पणियाँ लिखी थीं। पहली टीका असंग की है, जिसका संस्कृत मूल व हिन्दी अनुवाद इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया जा रहा है। केवल यही टीका संस्कृत में उपलब्ध है; अन्य टीकायें वसुबन्धु, वज्रश्री, गुणाद तथा कमलशील की लिखी हुई है जो संस्कृत में अनुपलब्ध हैं, केवल चीनी अथवा तिब्बती अनुवादों में सुरक्षित हैं। चीनी पण्डितों की टीकायें भी चीनी में उपलब्ध हैं।[३]

३. असंगकृत त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता-कारिका सप्तति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता की संस्कृत में उपलब्ध एकमात्र टीका आर्य असंग की कृति है। इस टीका का नाम 'त्रिशतिकाया: प्रज्ञापारमितायाः कारिकासप्ततिः' है। डॉ० जी० तुची ने इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि

---

१. वही, तृतीय परिशिष्टम्, पृ० ५६३।

२. प्रसन्नपदा, सं० बौ० सं० ग्र०, पृ० १९५; सं० बिब्लियोथेका बुद्धिका, पृ० ४४८; यह पंक्ति इस प्रकार है —

> ''धर्मतो बुद्धा दृष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः।
> धर्मता चाप्यविज्ञेया न सा शक्या विजानितुम्॥''

चन्द्रकीर्ति ने इस गाथा को माध्यमिक-वृत्ति तथा चतुःशतकवृत्ति दोनों में उद्धृत किया है परन्तु वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता का उल्लेख नहीं किया है। चन्द्रकीर्ति का समय ५६०-६२० ई० निश्चित किया है (द्र० लेखक की कृति स्टडीज इन दि बुद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इण्डिया, अध्याय ७) पृ० १८३। वज्रच्छेदिका की रचना तीसरी शती ई० के पश्चात् नहीं रखी जा सकती।

३. इन विभिन्न चीनी व तिब्बती अनुवादों की सूचना के लिए जिज्ञासु पाठक डॉ कॉन्ज की पुस्तकें दि प्रज्ञापारमिता लिटरेचर, दि हेग, १९६० तथा उनके द्वारा सम्पादित एवं अनूदित वज्रच्छेदिका का अवलोकन करें।

तिब्बत के ङोर विहार से प्राप्त की थी और उन्होंने ही इसको रोमन लिपि में सम्पादित एवं अंग्रेजी में अनूदित करके १९५६ में रोम से प्रकाशित किया था।[1]

त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति एक अत्यंत छोटा ग्रन्थ है; इसमें ७७ कारिकायें (श्लोक) हैं, अतएव इसका अधिक उपयुक्त नाम 'कारिका-सप्तसप्तति' होना चाहिए। परन्तु इस ग्रन्थ के अन्त में निम्न वाक्य हैं—"त्रिशतिकाया: प्रज्ञापारमिताया: कारिकासप्तति: समाप्ता कृतिरियम् आर्यासङ्गपादानाम् इति"। त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता का नाम है; कारिकासप्तति के रचयिता (आर्य) असङ्ग (पाद) हैं। यह टीका चीनी अनुवाद में भी उपलब्ध है, वहाँ इसका नाम 'वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता सूत्रशास्त्रकारिका' है जिसका अनुवादक ई०-चिङ् था। तिब्बती भाषा में भी एक ऐसा ग्रन्थ अनूदित है जो इस टीका से पूर्णरूपेण मेल खाता है और इसका नाम 'वज्रच्छेदिकाया: प्रज्ञापारमिताया: व्याख्यानोपनिबन्धन कारिका' है[2]। असङ्ग के छोटे भाई वसुबन्धु ने असङ्ग की उक्त कारिकाओं पर एक उप-टीका भी लिखी थी जो चीनी में सुरक्षित है। असङ्ग पेशावर (पुरुषपुर) के एक बौद्ध ब्राह्मण थे। पहले यह हीनयानी (महीशासक सम्प्रदाय के) भिक्षु थे। कालान्तर में इन्होंने महायान अपनाया और योगाचार (योगचर्या) अथवा विज्ञानवाद दर्शन का कुशल प्रतिपादन किया। चीनी तथा तिब्बती ग्रन्थों में असङ्ग को गुह्य-योगचर्या एवं विज्ञप्तिमात्रता का प्रकाण्ड और प्रथम पण्डित बताया है। अनेक ग्रन्थों की रचना का श्रेय भी उनको दिया गया है[3]। परन्तु यह परम्परायें भ्रान्तियुक्त हैं। योगाचार दर्शन के प्रथम व्यवस्थापक मैत्रेयनाथ (३००-४०० ई०) थे जो एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। असङ्ग मैत्रेयनाथ के शिष्य थे

---

१. माइनर बुद्धिस्ट टेक्स्ट्स, भाग १, सेरी ओरियन्टल रोमा नं० ९, रोम, १९५६।

२. द्र० जी० तुची, मा० बु० टे० भाग १, पृ० ६-७; वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, सं० एडवर्ड कॉन्ज, पृ० १०-२१; पेकिंग संस्करण के तनग्युर संग्रह में प्राप्त यह ग्रन्थ (Toh. 5070 विविध, 'ञो') कारिकासप्तति का ही अनुवाद है तथा इसमें सभी श्लोक पूर्ण हैं; किन्तु ग्रन्थ में लेखक का नाम नहीं है।

३. जे० तकाकुसू , 'परमार्थज् लाइफ ऑफ वसुबन्धु', जर्नल ऑफ रायल ऐशियाटिक सोटाइटी, १९०५, लन्दन, पृ० ३३-५३; तारानाथ, छोय-जुङ्ग (अनुवादक शीफनेर), पृ० १०७-११८; एल० ए० वाडेल, बुद्धिज्म ऑफ टिबेट एण्ड लामाइज्म, लन्दन १८९५, पृ० १४१; बु-दोन, छोय-जुङ्ग (अनुवादक ऑबेरमिलर), भाग २, पृ० १४०; टॉमस वाटर्स, युवानच्वाङ् (१९६०), भाग १, पृ० ३५५-५६।

और अपने गुरु से ही उन्होंने योगचर्या एवं प्रज्ञा-शास्त्र में दक्षता प्राप्त की थी[१]। असङ्ग और उसके भाई वसुबन्धु का कार्य-क्षेत्र अयोध्या भी था; राजा विक्रमादित्य के समय में ये विद्वान् अयोध्या मे रहते थे। इस विक्रमादित्य को श्रावस्ती (कोशल) का राजा भी कहा जाता है। वसुबन्धु का समकालीन शासक सम्भवत: स्कन्दगुप्त (४५५-४६७ ई०) था जिसकी एक उपाधि विक्रमादित्य भी थी[२]। असङ्ग का समय पाँचवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध (४००-४५० ई०) तथा वसुबन्धु का समय (४२०-५०० ई०) मानना चाहिए[३]।

असङ्ग महायानसम्परिग्रह, प्रकरण-आर्यवाचा, महायानअभिधर्मसंगीति (सम्भवत: अभिधर्मसमुच्चय) तथा त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता करिकासप्तति के लेखक हैं। योगाचारभूमीशास्त्र (= सप्तदशभूमीशास्त्र) तथा महायानसूत्रालंकार के लेखक असङ्ग नहीं अपितु मैत्रेयनाथ हैं। असङ्ग ने मैत्रेयनाथ के ग्रन्थों पर भाष्य लिखे हों यह सम्भव है और इसके संकेत भी मिलते हैं। डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य का मत है कि यह असङ्ग 'गुह्यसमाजतंत्र' तथा 'प्रज्ञापारमितासाधन' के लेखक भी हैं[४]। गुह्यसमाजतंत्र का रचयिता असङ्ग को मानने के लिए कोई भी प्रमाण नहीं है[५]। 'प्रज्ञापारमितासाधन' का रचयिता 'असङ्गपाद' एक अन्य व्यक्ति है जो परवर्तीकाल का तान्त्रिक लेखक था[६]।

---

१. द्र० हरप्रसाद शास्त्री, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली, १९२५, पृ० ४६५ एच० उई, स्टडीज इन इण्डियन फिलॉसॉफी, भाग १, पृ० ३५९; विन्टर्निट्ज, हिस्टरी ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ३५२-३५४; जी० तुची, डॉक्ट्रिन्स ऑफ मैत्रेय (नाथ) एण्ड असङ्ग, पृ० ७-८ तथा अभिसमयालंकारालोकव्याख्या, पृ० ३०६।

२. द्र० वाटर्स युवान च्वांङ्, भाग १ पृ० २१०-२१२ , ३५५-३५८; ई० फ्राउवाल्नर, ऑन दि डेट ऑफ दि बुद्धिस्ट मास्टर ऑफ दि लॉ वसुबन्धु, से० ऑ० रो० ३, १९५१. तथा जे० तकाकुसू, पूर्व उल्लिखित कार्य।

३. द्र० एम० आनेसकी का लेख 'असङ्ग', ई० रि० ई०, जिल्द २, पृ० ६२; उ० वोगिहारा का लेख 'वसुबन्धु' ई० रि० ई०, जिल्द १२, पृ० ५९५; के० बी० पाठक ने नोयेल पेरी के मतों के विरुद्ध समुचित प्रकाश डाला है। द्र० इण्डियन एन्टिक्वरी, बम्बई १९१२, पृ० २४४।

४. गुह्यसमाजतंत्र, गा० आ० सि० ५३, बड़ौदा, इन्ट्रोडक्शन; साधनमाला, भाग २, गा० आ० सि० ४१, बड़ौदा, इन्ट्रोडक्शन।

५. द्र० लालमणि जोशी, बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय १०, पृ० ३१७-१८ तथा ३३०-३३१।

६. द्र० शान्तिभिक्षु शस्त्री, महायान, पृ० ३०-४४; आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्म-दर्शन (पटना १९५६) पृ० २१२-१८ पण्डितप्रवर गोपीनाथ कविराज, भारतीय संस्कृति और साधना (पटना १९६३)

४. 'प्रज्ञा' का अर्थ और 'प्रज्ञापारमिता' के विचार का विकास

यह ऊपर कहा जा चुका है कि प्रज्ञापारमिता विषयक साहित्य के दो ग्रन्थों को प्रथम बार हिन्दी में प्रस्तुत प्रयास के रूप में सुलभ किया जा रहा है। हिन्दी में प्रज्ञा और प्रज्ञापारमिता पर अभी बहुत कम और संक्षेप में बौद्ध संस्कृत में महायान ग्रन्थों के प्रसंगवश कुछ ही लेखकों ने लिखा है। अतएव निम्नलिखित पृष्ठों में हम इस विषय में कुछ विस्तार के साथ लिखेंगे और ऐतिहासिक क्रम ढूँढेंगे। पहले हम 'प्रज्ञा' शब्द पर विचार करेंगे।

बौद्ध धर्म में 'प्रज्ञा' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे पालि भाषा में 'पञ्ञा' कहते हैं और तिब्बती भाषा में 'शे-रब'। अंग्रेजी में इसके लिए 'नॉलिज', 'विज्डम', 'इन्साइट', 'ग्नॉसिस', 'इन्टुईशन', 'ट्रान्सेन्डेटल आइडियलिज्म', 'स्पिरिचुअल इन्लाइटनमेन्ट' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। संस्कृत भाषा में प्रज्ञा के लिए 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। 'अविद्या' इसका उल्टा है। प्रज्ञाचक्षु (पञ्ञाचक्खु) अनुत्तर है, और प्रज्ञावानों (पञ्ञवन्ता) की संख्या अत्यल्प है। निर्वाणगामिनी प्रतिपदा के तीन आवश्यक तोरणों में प्रज्ञा ही अनुत्तर विमुक्ति (बोधि) के निकट है: 'सीलं समाधि पञ्ञा च विमुत्ति च अनुत्तरा'।

प्रज्ञेन्द्रिय (प्रज्ञा) पाँच इन्द्रियों में से एक है; प्रज्ञाबल भी पाँच बलों में से एक है, प्रज्ञापारमिता छः तथा दश पारमिताओं में से एक है। तथागत के दश बलों में पहला बल प्रज्ञा का ही है, 'यथाभूतं प्रजानाति'।[१] प्रज्ञा ही बौद्ध धर्म-दर्शन का चरम लक्ष्य

पृ० ५१९-३२; डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डे, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० ३३३-४५। अंग्रेजी माध्यम से अधिक कार्य हुआ है। द्र० मसाहरू अनेसकी का लेख, ई० रि० ई० वॉल्यूम ४; ('प्रज्ञापारमिता'); ला वाली पुसें के लेख, ई० रि० ई० वॉल्यूम २ (बोधिसत्त्व) व वॉल्यूम ८ ('महायान'); डी० टी० सुजूकी, आउट लाइन्स ऑफ महायान बुद्धिज्म; नलिनाक्ष दत्त, एस्पेक्ट्स ऑफ महायान; हरदयाल, बोधिसत्व डॉक्ट्रिन; एडवर्ड कॉन्ज की सभी कृतियाँ (दे० सहायक ग्रन्थ सूची)। जी० तुची, टी० मत्सुमोटो, एम० विन्टर्निट्ज तथा ई० लामोत के कार्य भी उल्लेख्य हैं। बौद्ध दर्शन के विश्वविख्यात आधुनिक पण्डितों में शेरबात्सकी (बुद्धिस्ट लाजिक, २ भाग) तथा डी० टी० सुजूकी (एसेज इन जेन बुद्धिज्म, ३ जिल्दें) के नाम व ग्रन्थ अन्यत्र इसी ग्रन्थ में आ चुके हैं।

१. द्र० धर्मसंग्रह तथा अर्थविनिश्चयसूत्र, बौ० सं० ग्र० १७ पृ० ३२२-२४; ३३०-३२ ।

है। प्रसिद्ध पालि ग्रन्थ धम्मसंगणि में प्रज्ञेन्द्रिय की निम्न व्याख्या उपलब्ध है—"या तस्मिं समये पञ्ञा पजानना विचयो पविचयो धम्मविचयो सल्लक्खणा उपलक्खणा पच्चुपलक्खणा पण्डिच्चं कोसल्लं नेपुञ्ञं वेभय्या चिन्ता उपपरिक्खा भूरी मेधा परिणायिका विपस्सना सम्पजञ्ञं पतोदो पञ्ञा पञ्ञिन्द्रियं पञ्ञाबलं पञ्ञासत्थं पञ्ञापासादो पञ्ञाआलोको पञ्ञाओभासो पञ्ञापज्जोतो पञ्ञारतनं अमोहो धम्मविचयो सम्मादिट्ठी — इदं तस्मिं समये पञ्ञेन्द्रियं होति"।[1] इसी प्रकार पालि विभंग में पञ्ञा का विशद विश्लेषण दिया गया है। अर्हन्त उपतिस्स के विमुत्तिमग्ग तथा आचार्य बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग में पञ्ञाविषयक प्राचीन बौद्ध धर्म में उपलब्ध लगभग सभी विचारों का नवनीत प्रस्तुत किया गया है।[2] आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी में धम्मसंगणि के उक्त वाक्यों की उत्कृष्ट व्याख्या की है। मिलिन्दप्रश्न में प्रज्ञा के अर्थ, प्रकारों व कार्यों पर सुन्दर चर्चा पायी जाती है। प्रज्ञा ज्ञान ही है, "प्रज्ञा से अनित्य, दुःख व अनात्म का बोध होता है", "जान लेना" विज्ञान की पहिचान है, "ठीक से समझ लेना" प्रज्ञा की पहिचान है। "जो कुछ काटा जा सकता है प्रज्ञा से ही काटा जा सकता है, और ऐसा कोई नहीं है जो प्रज्ञा को काटे"।[3] बुद्धघोष ने लिखा है "कुशलचित्त से युक्त विपश्यना-ज्ञान प्रज्ञा है"। "भली प्रकार जानने के अर्थ में प्रज्ञा है", यह धर्मों के स्वभाव का प्रतिवेध करती है।[4] यह प्रतिवेध सफल और निश्चित याने अच्युत (अक्खलित) होता है। प्रज्ञा मोहान्धकार का नाश करती है। कहा है: धम्मसभावपटिवेध-लक्खणा पञ्ञा, धम्मानं सभावपटिच्छादकमोहन्धकारविद्धंसनरसा (विसुद्धिमग्ग)। भाष्यकार की ये व्याख्याएँ मूल पालि निकायों पर आधारित हैं। संयुत्तनिकाय में भगवद्वचन

---

१. धम्मसंगणि, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, पृ० २०-२१।

२. द्र० क्रमशः विभङ्ग (ना० सं० १९६०), पृ० १५९, तथा ञाणविभंग परिच्छेद; विसुद्धिमग्ग (दि पाथ ऑफ फ्रीडम्) अंग्रेजी अनुवाद, कोलम्बो १९६१ (अनुवादक श्रद्धेय एन० आर० एहारा, खेमिन्द थेर तथा सोम थेर) तथा विसुद्धिमग्ग (सं० धर्मानन्द कोसंबी, बम्बई १९४१), हिन्दी अनुवाद महाबोधि सभा, सारनाथ से २ भागों में १९५६-५७ में छपा है। अनुवादक भिक्षु धर्मरक्षित।

३. मिलिन्द पञ्हो, पृ० ६४, ८०, ८९; मिलिन्दप्रश्न, पृ० ५२, ९६, ११०।

४. विशुद्धिमार्ग (अनुवादक धर्मरक्षित) भाग २ पृ० ५५-५६।

है: "समाहितो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाति।"[१] समाहित भिक्षु (समाधिस्थ, शान्त, एकाग्रचित्त, ध्यानी) (जो वस्तु जैसी है वस्तुत: उसे उसी रूप में) यर्थाथत: समझता है। इस प्रकार प्रज्ञा समाधि पर आधारित है। परन्तु प्रज्ञा कई प्रकार की है। मुख्य रूप से तीन प्रकार की है—१. श्रुतमयी, २. चिन्तामयी और ३. भावनामयी।[२] इनमें से अन्तिम, भावनामयी प्रज्ञा, प्रमुख रूप से ध्यान और समाधि पर निर्भर करती है और इसके बिना अन्य दो प्रकार की प्रज्ञायें प्राप्त की जा सकती हैं। प्रथम प्रकार की प्रज्ञा से हम श्रोता, ज्ञानी और पण्डित हो सकते हैं; दूसरी प्रकार की प्रज्ञा से हम तर्क, बुद्धि और मनन द्वारा ज्ञानवर्द्धन करते हैं। परन्तु उक्त ज्ञान परमार्थ के निकट अथवा परम शान्ति तक नहीं ले जाते। भावनामयी प्रज्ञा द्वारा ही सत्य का साक्षात्कार और शान्तिलाभ संभव है। अङ्गुत्तर निकाय(भाग १, पृ० २६७) में कहा है कि प्रज्ञा एक सम्पदा है।

प्रज्ञा एक शक्ति है जो 'प्रज्ञा-बल' कहा गया है। चार बलों में यह प्रथम है। अङ्गुत्तरनिकाय में प्रज्ञा रूपी बल की निम्नलिखित व्याख्या ध्यातव्य है— "ये धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता ये धम्मा अकुसला अकुसलसङ्खाता ये धम्मा सावज्जा सावज्जसङ्खाता ये धम्मा अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता ये धम्मा कण्हा कण्हसङ्खाता ये धम्मा सुक्का सुक्कसङ्खाता ये धम्मा सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता ये धम्मा असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता ये धम्मा नालमरिया नालमरियसङ्खाता ये धम्मा अलमरिया अलमरियसङ्खाता, त्यास्स धम्मा पञ्ञाय बोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। इदं, वुच्चति, भिक्खवे, पञ्ञाबलं।"[३]

---

१. संयुक्त निकाय (ना० सं०), भाग ३ पृ० ७४।

यह उक्ति शिक्षासमुच्चय कारिका ९ में— 'समाहितो यथाभूतं प्रजानातीत्यवदन्मुनिः।' तथा भावनाक्रम, पृ० २०५ में —'उक्तं हि भगवता—समाहितचितो यथाभूतं प्रजानाति', उद्धृत है। यह कथन अंशत: दीघनिकाय, जिल्द १ (ना० सं०), पृ० ७३ पर भी द्रष्टव्य है।

२. यह त्रिविध विभाजन सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में सुविदित व सर्वमान्य है। कुछ साक्ष्य—विभङ्ग (ना० सं०) पृ० ३८५; विशुद्धिमार्ग (अनु० भाग २) पृ० ५७; धर्म-संग्रह, ११०, बोधिचित्तोत्पादसूत्रशास्त्र, पृ० २२८; अभिधर्मकोश, ६.५; भावनाक्रम (प्रथम), पृ० १६०, १९८; तत्त्वसंग्रह-पंजिका, श्लोक ३३३८ पर।

३. अङ्गुत्तरनिकाय, जिल्द ४, पृ. १२-१३।

मज्झिमनिकाय में एक स्थान पर आयुष्मान् शारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित के बीच प्रज्ञा पर दिलचस्प चर्चा का उल्लेख है। प्रज्ञावान् की परिभाषा में शारिपुत्र कहते हैं— ''पजानाति पजानाती ति खो, आवुसो, तस्मा पञ्ञवा ति वुच्चति।'' क्या समझता (पजानाति) है? चार आर्य सत्यों को। प्रज्ञा और विज्ञान में अन्तर है। ''विजानाति विजानातीति खो, आवुसो, तस्मा विञ्ञाणं ति वुच्चति।'' क्या जानता (विजानाति) है? यह सुख है यह दुःख है, यह न-सुख-न-दुःख है, ऐसा जानता है। दोनों में क्या अन्तर है? प्रज्ञा भावना (मनोयोग) करने योग्य है, और विज्ञान परिज्ञेय (ज्ञेय) है— ''पञ्ञा भावेतब्बा, विञ्ञाणं परिञेय्यं।''[१]

पारमिता शब्द का प्रयोग पालि श्रुति-संहिताओं में साधारणतया विरल है। 'प्रज्ञापारमिता' शब्द अवश्य एक स्थल पर हमें मिला है। सारिपुत्त-थेरगाथा में निम्न पंक्तियाँ उपलब्ध हैं—

> **''चक्कानुवत्तको थेरो, महायाणी समाहितो।**
> **पथवापग्गिसमानो, न रज्जति न दुस्सति॥**
> **पञ्ञापारमित्तं पत्तो, महाबुद्धि महामति।**
> **अजडो जडसमानो, सदा चरति निब्बुतो॥''[२]**

शारिपुत्र के लिए कहा गया है कि वह ''(धर्म) चक्र का अनुप्रवर्तक, स्थविर, महाज्ञानी, समाहित (—चित्त वाला), पृथ्वी एवं अग्नि की तरह न किसी से प्रसन्न होता है और न किसी से द्वेष करता है। प्रज्ञापारमिता को प्राप्त (कर यह) महान् बुद्धिमान् और महान् मतिमान चेतन (अजड़) होते हुए भी अचेतन (जड़) के समान सदा शान्त (निर्वृत्त) होकर विचरण करता है।'' सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र में भी शारिपुत्र को 'पारमीप्राप्तो' कहा गया है[३]

---

१. मज्झिमनिकाय, जिल्द १, पृ० ३६०-६१। सांकृत्यायन व धर्मरक्षित कृत हिन्दी अनुवाद (१९६४), पृ० १७५-७६।

विभङ्ग, पृ० ३८५ का यह वाक्य भी ध्यान देने योग्य है—

'सब्बा पि समापन्नस्स पञ्ञा भावनामया पञ्ञा।'

प्रज्ञा से सम्बन्धित कुछ प्राचीन सूचनायें ऊपर वज्रच्छेदिका के प्रसंग में पहले दी जा चुकी हैं।

२. खुद्दक निकाय (ना० सं०), जिल्द २, पृ० ३६८, गाथा नं० १०१३-१०१४।

३. सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, (बौ० सं० ग्रं० ६), पृ० २४।

"पञ्ञापारमित्तं" निस्संदेह प्रज्ञापारमिता अर्थात् प्रज्ञा की पूर्णता, 'परफेक्शन ऑफ विज्डम', 'क्लाइमेक्स ऑफ विज्डम' है।[१] मज्झिमनिकाय में 'पारमिप्पत्तो' शब्द आया है, इसका प्रयोग यहाँ पर भी शारिपुत्र के लिए ही हुआ है। पारमिप्पत्तो का अर्थ है 'पारमिप्राप्त', 'पारंगत'; पारमि का अर्थ पूर्णता, 'परफेक्शन' है। शारिपुत्र को आर्य प्रज्ञा में पारंगत और वशित्व प्राप्त कहा गया है; "वसिप्पत्तो पारमिप्पतो अरियाय पञ्ञाय"।[२] हमारी दृष्टि मे विद्वानों को प्रज्ञापारमिता का विकास उक्त दो निकायों के इन उल्लेखों से ढूँढ़ना चाहिए । पारमि शब्द चर्यापिटक में बहुत प्रयुक्त है। प्रज्ञापारमिता के सिद्धांत के विकास के साथ शारिपुत्र का आवश्यक सम्बन्ध है।

प्राचीन स्थविरवादी विद्वान् निम्नलिखित दश पारमियों (पारमिताओं) से परिचित हैं— १. दान, २. शील, ३. नेक्खम्म, ४. पञ्ञा, ५. विरिय, ६. खन्ती, ७. सच्च, ८. अधिट्ठान, ९. मेत्ता तथा १०. उपेक्खा।[३] इनमें से मेत्ता और उपेक्षा ब्रह्मविहारों में भी सुविदित हैं, सच्च शील का अभिन्न अंग है, अधिट्ठान का अर्थ प्रणिधान है। महावस्तु अवदान महासांघिकों की लोकोत्तरवादी शाखा का पवित्र ग्रन्थ है।

---

१. द्र० श्रीमती रीज डेविड्स का अंग्रेजी अनुवाद, साम्स ऑफ दि ब्रेद्रेन, पालि टेक्स सोसाइटी, १९५१, पृ० ३४८, गाथा नं० १०१५ (=ना० सं० १०१४) "पञ्ञापारमित्तं पत्तो" का अनुवाद "ही हैथ दि टॉपमोस्ट प्लेस फॉर विज्डम" समुचित नहीं कहा जा सकता है। डॉ० ऊ० घम्मरतन (थेरगाथा, पृ० २३२) द्वारा 'प्रज्ञा की पूर्णता को प्राप्त' लगभग ठीक है।

२. मज्झिमनिकाय, जिल्द ३ (ना० सं०) पृ० ९२। 'पारमिप्पत्तो' शब्द का यह प्रयोग नलिनाक्षदत्त, एस्पेक्ट्स ऑफ महायान, में भी उल्लिखित है। उन्होंने रोमन सं० जिल्द ३, पृ० २८ का उल्लेख किया है जहाँ पर यह शब्द आया है।

३. द्र० चर्यापिटक (ना० सं० खुद्दक नकाय, जिल्द ७), पृ० ४२०। स्थविर धर्मरक्षित ने अपने विसुद्धिमग्ग के अनुवाद में (विशुद्धि मार्ग, भाग १, पृ० १५, पाद-टिप्पणी ७) निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :

"दानं सीलं च नेक्खमं, पञ्ञा विरियेन पञ्चमं।
खन्ती सच्चमधिट्ठानं, मेत्तुपेक्खो तिमे दस॥"

ये पंक्तियाँ जातकाट्ठकथानिदान की हैं और इस अट्टकथा में दस पारमिताओं, दस उपपारमिताओं और दस परमार्थपारमिताओं का भी उल्लेख है।

लोकोत्तरवादी बौद्ध विचारक बुद्धों और बोधिसत्वों के स्वभाव, जन्म और चरित्र को लोकोत्तर मानते थे। इस प्रकार के 'लोकुत्तर' व्यवहार की चर्चा और उसका खण्डन कथावस्तु में हुआ है। यह ग्रन्थ मूलरूप में अशोक के समय मोग्गलिपुत्त तिस्स द्वारा रचा गया माना जाता है। अत: महावस्तु की मूल रचना तीसरी शती ई० पूर्व की हो सकती है। इसका अन्तिम स्वरूप चौथी शताब्दी ई० का हो सकता है। महावस्तु में बोधिसत्व की जीवन-चर्या का कुछ विस्तार मिलता है। इसमें भूमियों की विशेष चर्या है; पारमिताओं का क्रमबद्ध उल्लेख इसमें अप्राप्य है। महावस्तु, ललितविस्तर, दिव्यावदान, अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, महायानसूत्रालंकार, बोधिचित्तोत्पादसूत्रशास्त्र, शिक्षासमुच्चय, बोधिचर्यावतार तथा धर्म-संग्रह में छ: पारमिताओं का उल्लेख मिलता है[१]। धर्म-संग्रह में और दशभूमिकसूत्र में दस पारमिताओं की सूची पाई जाती है। ये दस पारमितायें निम्नलिखित हैं— १. दानपारमिता, २. शीलपारमिता, ३. क्षान्तिपारमिता, ४. वीर्यपारमिता, ५. ध्यानपारमिता, ६. प्रज्ञापारमिता, ७. उपायकौशल्य पारमिता, ८. प्रणिधिपारमिता, ९. बलपारमिता तथा १०. ज्ञानपारमिता।[२]

पारमिता शब्द का क्या अर्थ है? पारमिता पूर्णता है; हम ऊपर देख चुके हैं कि थेरगाथा, मज्झिमनिकाय तथा चर्यापिटक में पारमि शब्द पूर्णता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस अर्थ में यह शब्द सुत्तनिपात, नैत्तिपकरण एवं जातकों में भी ढूँढ़ा गया है।[३] इसी अर्थ में इसका प्रयोग दिव्यावदान में भी हुआ है।[४] पारमिता के पूर्णता,

---

१. महावस्तु, जिल्द ३, पृ० २२६; ललितविस्तर (बौ०सं०ग्र० १), पृ० २४७; दिव्यावदान (सं० कॉवेल तथा नाइल), पृ० ९५, १२७, ४९०; अ० प्र० (बौ० सं० ग्र० ४), पृ० ९७, करुणापुण्डरीक सूत्र (सं० एस० सी० दास तथा एस० सी० शास्त्री कलकत्ता १८९८), पृ० १२७; शतसाहस्रिका प्र. पा. (सं० प्र० च० घोष), पृ० २४२, महायान सूत्रालंकार (सं० एस० लेवी), पृ० ९९, बोधिचित्तोत्पादसूत्रशास्त्र, अध्याय ४ से ९ तक; शिक्षासमुच्चय, अध्याय १, ५, ९, १०, १२, १५-१६, बोधिचर्यावतार, अध्याय ३ से ९ तक, धर्मसंग्रह १७। बोधिचर्यावतार पञ्जिका, पृ० १६८।

२. धर्मसंग्रह, १८; दशभूमिकसूत्र में प्रत्येक भूमि के साथ एक पारमिता का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

३. हरदयाल, बोधिसत्व डॉक्ट्रिन, पृ० १६५।

४. दिव्यावदान, पृ० ६३७।

उच्चतम अवस्था, 'हाइयेस्ट स्टेट', 'परफेक्शन', 'कम्पलीटनेस', आदि कुछ पर्याय कहे जा सकते हैं। पारमिता शब्द का सम्बन्ध परम से हो सकता है जिसका अर्थ उच्चतम से है, यथा परम उत्तमः अर्थः परमार्थः। कुछ विद्वानों ने निम्नलिखित अर्थ किया है— 'पारम्' (उस पार, दूसरा किनारा), 'इत' (गया, आया)—पारमिता, उस पार आ पहुँचना। वस्तुतः तिब्बती 'फा-रोल्तु-फियन-पा' (पारमिता) का यही अर्थ है।[1]

लङ्कावतार सूत्र में पारमितायें तीन प्रकार की कही गयी हैं—१. लौकिक, २. लोकोत्तर तथा ३. लोकोत्तम[2]। महायान बौद्ध सूत्रों व शास्त्रों में प्रज्ञा तथा प्रज्ञापारमिता पर विस्तृत चर्चा यत्र-तत्र उपलब्ध है। पारमिताओं का अभ्यास महायान के अनुयायियों की विशेषता है। एक सूत्र में कहा है— 'ये सद् (षट्?) पारमितासु चरन्ती ते प्रतिपन्न इहो महयाने'। महायान में प्रज्ञापारमिता पर सर्वाधिक बल दिया गया है। दान, शील, क्षान्ति, वीर्य और ध्यान पारमितायें वस्तुतः प्रज्ञा की उपलब्धि के लिए ही हैं। एक शास्त्रकार ने लिखा है—

इमं परिकरं सर्वं प्रज्ञार्थं हि मुनिर्जगौ।
तस्मादुत्पादयेत्प्रज्ञां दुःखनिवृत्तिकाङ्क्षया॥[3]

महायान दर्शन में प्रज्ञा और प्रज्ञापारमिता शून्यता अथवा तथता के नामान्तर हैं। वस्तुओं (धर्मों) के वास्तविक स्वभाव (प्रतीत्यसमुत्पन्नता)को शून्यता अथवा नैरात्म्य कहा गया है। अतएव प्रज्ञा या शून्यता को उपादायप्रज्ञप्ति, प्रतीत्यसमुत्पाद तथा मध्यम मार्ग द्वारा भी जाना जाता है। महान् शास्त्रकार ने लिखा है—

यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्ष्महे।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा॥[4]

---

१. द्र० टी० डब्ल्यू० रीजडेविड्स तथा डब्ल्यू० स्टेड, पालि डिक्शनरी, 'पारमि'; मॉनियर विलियम्स, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ५६६; सरत् चन्द्र दास, टिबेटन-इंग्लिस-डिक्शनरी, पृ०८१७। द्र० हरदयाल,वही, पृ०१६५-१६६; एफ० एडजर्टन, बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत डिक्शनरी, पृ०३४१।

२. लङ्कावतारसूत्र, बौ० सं० ग्रं० ३, अध्याय ६, पृ० ९६।

३. बोधिचर्यावतार, ९.१।

४. मध्यमकशास्त्र, २४.१८; चतुःशतक, २.२०— 'यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यता सैव मता'। (प्रज्ञाकरमति, पृ० १९८ पर उद्धृत)।

शून्य क्या है? जो प्रतीत्यसमुत्पन्न है, हेतु-कारणों पर निर्भर है, प्रत्ययों के अधीन है, वह शून्य है। अनवतप्तहृदापसंक्रमणसूत्र में कहा है— 'यः प्रत्ययाधीनु स शून्य उक्तो।[१]' इस सत्य का ज्ञान प्रज्ञा द्वारा होता है। प्रज्ञा के लिए भाष्यकार ने कहा है— 'सैव केवला संबोधिसाधनमस्तु[२]'। प्रज्ञा की विशेषता यह है कि यह वस्तुओं के ठीक-ठीक स्वभाव को प्रकाशित करती है; यह तत्व-दर्शिनी, तत्व की ढूँढ़-खोज करने वाली है। 'प्रज्ञा यथावस्थितप्रतीत्यसमुत्पन्नवस्तुतत्त्वप्रविचयलक्षणा[३]'। बिना शून्यता (प्रज्ञा) की भावना किये चित्त मुक्त नहीं होता । 'शून्यता दुःखशमनी' है।[४] सर्वज्ञता की प्राप्ति इसी से होती है। यह क्लेशावरणों तथा ज्ञेयावरणों को हटाती है और अन्धकार को दूर करती है। शून्यता इसका प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती है[५]। इस प्रकार हम देखते हैं कि महायान के आगमों तथा निगमों में प्रज्ञापारमिता केवल एक पारमिता ही नहीं है। यह शून्यता, तथता, धर्मता, धर्मधातु, भूतकोटि, प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यममार्ग और सर्वज्ञतास्वरूप सम्यक्संबोधि का नामान्तर भी है। प्राचीन बौद्ध धर्म में प्रज्ञा का यह पारमार्थिक अर्थ दुर्लभ है। प्रज्ञापारमिता की अन्य पारमिताओं से इस श्रेष्ठता और विशिष्ट अर्थ का प्रज्ञाकरमति ने निम्नलिखित उत्कृष्ट विवरण प्रस्तुत किया है— 'अविद्याप्रवर्तितसकलविकल्पजालमलरहितं क्लेशज्ञेयावरणविनिर्मुक्तमुभयनैरात्म्याधिगमस्वभावं सर्वस्वपरहितसंपदाधारभूतं परमार्थतत्त्वात्मकं तथागतधर्मकायमभिनिर्वर्तयन्तीति प्रज्ञाप्रधाना दानादयो गुणा उच्यते[६]'।

---

१. मध्यक-वृत्ति (प्रसन्नपदा) पृ० १०५ (बौ० सं० ग्र०-१०) में उद्धृत।

२. बोधिचर्यावतार-पञ्जिका, पृ० १६८।

३. वही, पृ० १६८।

४. बोधिचर्यावतार, ९.५६।

५. बोधिचर्यावतार, ९.५५ —

क्लेशज्ञेयावृत्तितमः प्रतिपक्षो हि शून्यता।
शीघ्रं सर्वज्ञताकामो न भावयति तां कथम् ॥

६. बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृ० १६८।

मैत्रेयनाथ के शब्दों में प्रज्ञापारमिता परमार्थ-ज्ञान है[१]। नागार्जुन के अनुसार ज्ञान से भिन्न शून्यता नाम की कोई वस्तु नहीं है— 'न ज्ञानाच्छून्यता नाम काचिदन्या हि विद्यते'[२]। यह अद्वय ज्ञान है, ग्राह्य-ग्राहक भेदरहित ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान है। अतएव आचार्य ने इसका तादात्म्य तथागत से किया है—

द्वय शून्यं हि विज्ञानमन्यथा न प्रसज्यते।
द्वयासत्त्वान्निवृत्तस्य द्वयात्मत्त्वप्रसङ्गतः॥
तच्छ्रुततथतारूपो भगवान् एव भण्यते ।
वेद्यवेदकसद्भावविकल्पाद्यसमाश्रयः ॥[३]

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, अध्यर्धशतिका प्रज्ञापारमिता, तथा पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता आदि सूत्रों के प्रारंभ में प्रज्ञापारमिता को नमस्कार किया गया है—"ओम नमो भगवत्यै आर्यप्रज्ञापारमितायै" —मानो वह परमार्थसत्य अथवा तथता की साकार मूर्ति हो।[४] बौद्ध दर्शन में तर्कशास्त्रीय तत्त्वदर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य दिङ्नाग ने और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में प्रज्ञापारमिता दर्शन के चरमोत्कर्ष का उपसंहार निम्नलिखित स्मरणीय कारिका में किया है—

प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वयं सा तथागतः।
साध्या तादर्थ्ययोगेन ताच्छब्द्यं ग्रन्थमार्गयोः।।[५]

---

१. महायान सूत्रालंकार, पृ० १०९ श्लोक ४१; पृ० ३०१, श्लोक १५।

२. महायानविंशिका (तुची द्वारा प्रकाशित मूल संस्कृत संस्करण, मा० बु० ट्रे० भाग १, पृ० २०१) श्लोक १।

३. महायानविंशिका, श्लोक २-३।

४. धारणीग्रन्थों में प्रज्ञापारमिता परमशक्तिस्वरूपा प्रतीत होती है। वज्रयान से प्रभावित बौद्ध मूर्तिविद्या में प्रज्ञापारमिता की मूर्तियाँ देवी रूप में सुविदित हैं।

५. प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ, कारिका १ (बौ० सं० ग्र० ४, पृ० २६३; जे०आर०ए०एस०, १९४९, पृ० ५६)।

सिद्ध कम्बलाचार्य (कम्बलपाद) ने 'नवश्लोकी' नामक अपने आर्याष्टसाहस्त्रिकाया: प्रज्ञापारमिताया: पिण्डार्थ: के प्रारम्भिक श्लोकों में प्रज्ञापारमिता का यही अद्वैत दर्शन प्रतिपादित किया है—

प्रज्ञापारमिताम्बोधौ शुभरत्नाकरे स्वयं।
सर्वापारमितास्तत्र तादात्म्येन व्यवस्थिता:॥
निष्प्रपञ्चा निराभासा निर्विकल्पा निरालया।
नि:स्वभावा परा सूक्ष्मा बिन्दुनादविवर्जिता॥
प्रज्ञापारमिता माता सर्वबुद्धोदया परा।
त्रयानुपलब्धिरूपा सर्वज्ञज्ञानगोचरा॥[१]

इन श्लोकों का अर्थ बहुतांश में सरल है। 'बिन्दु' और 'नाद' तान्त्रिक बौद्ध दर्शन व साहित्य के परिचित शब्द हैं। महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने इस विषय पर प्रमाणित एवं विस्तृत निबंध लिखे हैं।[२] 'बिन्दु' का अर्थ दक्षिण नाड़ी से और नाद का अर्थ वाम नाड़ी से है, उन्हें क्रमश: 'कालि' और 'आलि' भी कहा जाता है। बिन्दु का अभिप्राय पुरुष, बोधिचित्त, पुरुष-सत्त्व (वीर्य) से भी होता है। नाद का अर्थ मंत्र से कहा गया है— ''नादो हि मन्त्र इत्युक्तं सर्वेषाम् तु शरीरिणाम्।'' काण्हपाद के दोहा कोस के अनुसार 'बिन्दु' 'ए' और 'वम्' के संयोग से (एवंकार) उत्पन्न होता है। अथवा बिन्दु वह अक्षर है जो 'प्रज्ञा' और 'सुरताधिप' के मिलन से उत्पन्न होता है।[३] उक्त श्लोकों में बिन्दु और नाद का अर्थ ज्ञान और वाणी से है; प्रज्ञापारमिता साधारण ज्ञान और शब्दों से रहित है। वह बुद्ध-ज्ञान-गोचरा है। 'त्रयानुपलब्धिरूपा' पर प्रोफेसर तुची ने हमारा ध्यान 'त्रिमण्डलपरिशुद्धि' देय —दायक—प्रतिग्राहकादि त्रितयानुपलम्भ) की ओर आकृष्ट किया है।[४] यह संभव है

---

१. नवश्लोकी, श्लोक १-३ (मा० बु० टे० भाग १, पृ० २१६, जी० तुची द्वारा सम्पादित)।

२. भारतीय संस्कृति और साधना, प्रथम खण्ड, अध्याय २, १७, २६, ३७, ३८ ।

३. द्र० शशिभूषण दासगुप्त, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु तान्त्रिक बुद्धिज्म, कलकत्ता १९५८, पृ० ६१, ११०, १५४ ।

४. मा० बु० टे०, भाग १, पृ० २२५ ।

कि त्रयानुपलब्धि द्वारा त्रिविध परिशुद्धि अथवा त्रिमण्डलपरिशुद्धि अभिप्रेत है। त्रय का अर्थ यानत्रय(श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान एवं महायान) भी किया गया है। यथा चीनी अनुवाद में। प्रज्ञापारमिता निःस्वभावता है और इसके यथार्थ स्वरूप को त्रिविध यान द्वारा भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है। निरालम्बपदा होने से प्रज्ञापारमिता निरालम्बनता अथवा विकल्पविहीनता का नामान्तर है। इसकी उपलब्धि वस्तुतः अनुपलब्धि है।

परन्तु चीनी अनुवाद के अनुसार तीसरे श्लोक का अर्थ इस प्रकार है— "तीन यानों में उपदिष्ट धर्म उपाय है। इन तीनों यानों के लक्षण सर्वज्ञ के ज्ञान के कारण हैं। (अतएव) मैं प्रज्ञापारमिता को नमस्कार करता हूँ।"[१]

"सर्वज्ञज्ञानगोचरा" के ऊपर मैं निम्न टिप्पणी करना चाहता हूँ। भगवान् बुद्ध सर्वज्ञ हैं, उनका ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। बौद्ध न्यायशास्त्र में सम्यग्ज्ञान के साधनों में धर्मकीर्ति ने 'योगिज्ञान' को समुचित स्थान दिया है। इसका महत्व प्रत्यक्ष ज्ञान के बराबर ही है। आचार्य ने आगे कहा है कि सम्यग्ज्ञान का विषय स्वलक्षण है—"तस्य विषयः स्वलक्षणम्।" धर्मोत्तर ने कहा है—"स्वमसाधारणं लक्षणं तत्त्वं स्वलक्षणम्।" धर्मकीर्ति इस "तत्त्व" अथवा "स्वलक्षण" को "परमार्थसत्" भी कहते हैं[२] प्रज्ञाकरमति परमार्थ की निम्न व्याख्या करते हैं— "परमः उत्तमः अर्थः परमार्थः अकृत्रिमं वस्तुरूपं, यदधिगमात् सर्वावृत्तिवासनानुसंधिक्लेशप्रहाणं भवति। सर्वधर्माणां निःस्वभावता, शून्यता, तथता, भूतकोटिः धर्मधातुरित्यादिपर्यायाः।"[३] वह परमार्थ सत्य, अमृत, तत्त्व, निर्वाणधातु जो तथागत ने अधिगत किया था वह 'पण्डितवेदनीयो' और 'अतर्कावचरो' था।[४] वही धर्मकाय बुद्ध है और वही बुद्धज्ञानगोचर, बुद्ध-माता है। इसे परमार्थ सत्य और 'असंस्कृत' कहा जाता है। इसी को संकेतित करने के लिए नागार्जुन ने मध्यमकशास्त्र की वह चार कठिन और भयावह पंक्तियाँ

१. तत्रैव, पाद-टिप्पणी ५ ।

२. न्यायबिन्दु, टीका सहित (चौखंबा, काशी संस्करण), पृ० ७-१७ ।

३. बोधिचर्यावतार-पञ्जिका, पृ० १७१ ।

४. द्र० महावग्ग, पृ० ६, मज्झिमनिकाय, भाग १, पृ० २१७- अमतं अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं।

लिखी थीं जो ग्रन्थ में मंगलाचरण करती है।[१] इसी के बारे में प्रज्ञाकरमति प्रज्ञापूर्ण शब्दों की निम्न वर्षा करते हैं—

''यः पुनः परमार्थः, सोऽनभिलाप्यः, अनाज्ञेयः, अपरिज्ञेयः, अविज्ञेयः, अदेशितः, अप्रकाशितः, यावदक्रियः, अकरणः, यावन्न लाभो नालाभो न सुखं न दुःखं न यशो नायशो न रूपं नारूपमित्यादि।''[२] यह सर्वथा अकथनीय परमार्थ सत्य सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय है।

अब हम प्रज्ञापारमिता के विचार का अध्ययन प्रज्ञापारमिता- सूत्रसाहित्य के आधार पर करेंगे। ऊपर पालिपिटकों, अर्धमहायानी तथा महायानी शास्त्रों पर ही विहंगम दृष्टिपात किया गया है। प्रज्ञापारमिता का सच्चा अर्थ समझने के लिए प्रज्ञापारमिता सूत्रों का गम्भीर परायण करना आवश्यक है; परन्तु स्थानाभाव के कारण इस भूमिका में केवल संक्षिप्त चर्चा ही सम्भव है।

प्रज्ञापारमितासूत्र छः पारमिताओं का उल्लेख करते हैं और प्रज्ञा नामक छठी पारमिता का विस्तृत प्रतिपादन करते हैं। इस साहित्य में प्रज्ञापारमिता का अर्थ शून्यता है, शून्यता ही प्रज्ञापारमिता है। यही इस साहित्य का केन्द्र-बिन्दु और प्रतिपाद्य विषय है। परन्तु इसका प्रतिपादन परस्पर विरोधी वाक्यों व शब्दों द्वारा हुआ है। प्रत्येक धारणा उसके विपक्षी या प्रतिपक्षी धारणा के बराबर कही गयी है। यथा वज्रच्छेदिका में कहा गया है—जो सत्त्व हैं वे असत्त्व ही हैं। जो क्षेत्रव्यूह हैं वे अव्यूह हैं, जो पुण्यस्कन्ध है वह अस्कन्ध, जो संज्ञा है वह असंज्ञा, जो आत्मन् है वह निरात्मन्, जो लक्षणसम्पदा है वह असम्पदा है। अधिक उद्धरणों की आवश्यकता क्या है, एक ही पर्याप्त होगा—

---

१. मध्यमककारिका—

अनिरोधनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्॥
यः प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम्।
देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे वदतांवरन्॥

२. बोधिचर्यावतार-पञ्जिका, पृ० १७७। तु० उदान, ८.३ ।

सुभूति ने पूछा : को नाम अयं भगवन् धर्मपर्यायः, कथं चैनं धारयामि?

भगवान् ने कहा : प्रज्ञापारमिता नामायं सुभूते धर्मपर्यायः। एवं चैनं धारय। तत्कस्य हेतोः? यैव सुभूते प्रज्ञापारमिता तथागतेन भाषिता, सैव अपारमिता तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते प्रज्ञापारमितेति[१]।

धर्मनैरात्म्य और पुद्गलनैरात्म्य का उपदेश प्रज्ञापारमिता सूत्रों के प्रत्येक पृष्ठ में पाया जाता है। सभी धर्म, सभी पदार्थ यथार्थतः स्वभावशून्य हैं; वह निःस्वभाव हैं, अतः शून्य हैं[२]। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक 'भाव' में उसके अपनेपन का 'अभाव' है, शून्यता सभी धर्मों का लक्षण है। जो निःस्वभाव है वह असत्[३] है; उसकी केवल व्यावहारिक सत्ता हो सकती है और यह सत्ता संस्कृत (प्रतीत्यसमुत्पन्न) है, अतएव संस्कृत होने से, प्रतीत्यसमुत्पन्न होने से, वह असत् है, शून्य है, निःस्वभाव है[४]। निःस्वभावता शून्यता है; इसका ज्ञान शून्यता ज्ञान है, यही प्रज्ञापारमिता है। यह शून्यता बीस प्रकार की कही गई है[५]। प्रोफेसर एडवर्ड कान्ज ने ठीक लिखा है—''इन ए बोल्ड एण्ड डाइरेक्ट मैनर दि प्रज्ञापारमिता सूत्रज इक्स्प्लिसिट्ली प्रोक्लेम दि आइडेन्टिटी ऑफ कन्ट्रडिक्टरी अपोजिट्स, एण्ड मेक नो अटेम्प्ट्स टु मिटिगेट दियर पैराडॉक्सेज़[६]'' ''अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र एक अति प्राचीन ग्रन्थ है। इस सूत्र में कहा गया है कि सभी सत्त्व मायोपम हैं, सभी धर्म, अर्हत्, प्रत्येक बुद्ध, प्रत्येक बुद्धत्व, सम्यक्सम्बुद्ध और सम्यक्सम्बुद्धत्व और निर्वाण भी मायोपम है, स्वप्नोपम है। श्रोताओं में से एक ने पूछा :''

---

१. वज्रच्छेदिका-प्रज्ञापारमिता, अध्याय १३; अध्याय ११-१२ भी द्रष्टव्य हैं।

२. द्र० द्वादशमुखशास्त्र; मध्यमकशास्त्र अध्याय १८; चतुःशतक अध्याय १०, नैरात्म्यपरिपृच्छासूत्र (बौ० सं० ग्र० १७ में सूत्र नं० १७); तथा तत्त्व-संग्रह अध्याय ७ और उस पर पञ्जिका।

३. वज्रच्छे० प्र० अन्तिम गाथा; अ० प्र० अध्याय ९, पृ० १०२; अध्याय ३०, पृ० २२९, द० कॉन्ज, बुद्धिस्ट थॉट, पृ० २१९-२२५ ।

४. द्र० शेरबात्स्की, बुद्धिस्ट लॉजिक, भाग १, पृ० ९०-९३; भाग १, पृ० १२२-१२५; लालमणि जोशी, बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय ८, सेक्शन ५, गोविन्दचन्द्र पाण्डे, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अध्याय १०।

५. धर्म-संग्रह, ४१; लालमणि जोशी, 'सद्धर्म-मुक्तावली'—६६ (धर्मदूत वर्ष २९, पृ० ८६)

6. द्र० बुद्धिस्ट थाट, पृ० २६३, डी० टी० सुजूकी, इग्जिस्टेन्शियलिज्म, प्रेग्मेटिज़्म एण्ड जेन, पृ० २६८-२६९ पर 'कन्ट्रडिक्शन्स' की चर्चा।

"निर्वाणमप्यार्य सुभूते मायोपमं स्वप्नोपमिति वदसि?"

सुभूति ने कहा—"तद्यदि देवपुत्रा निर्वाणादप्यन्य: कश्चिद्धर्मो विशिष्टतर: स्यात्, तमप्यहं मायोपमं स्वप्नोपममिति वदेयम्"।

इस पर सन्तों (देवपुत्रों) ने पूछा—

"केऽस्या आयुष्मन् सुभूते प्रज्ञापारमिताया एवं निर्दिष्यमानाया: प्रत्येषका भविष्यन्ति?"

तब आनन्द बोले—"ते खल्वायुष्मन्तो वेदितव्या अविनिवर्तनीया बोधिसत्त्वा महासत्त्वा:, दृष्टिसम्पन्ना वा पुद्गला:, अर्हन्तो वा क्षीणाश्रवा:, येऽस्या: प्रज्ञापारमिताया एवं निर्दिश्यमानाया: प्रत्येषका भविष्यन्ति।"

इस पर सुभूति आनन्द से बोले — "नहि स्थविरानन्द, नास्या आयुष्मन्त: प्रज्ञापारमिताया एवं निर्दिश्यमानाया: केचित्प्रत्येषका भविष्यन्ति। तत्कस्य हेतो:? तथा हि—अत्र न कश्चिद्धर्म: सूच्यते; न कश्चिद्धर्म: परिदीप्यते, न कश्चिद्धर्म: प्रज्ञप्यते। तथैवास्या: प्रज्ञापारमिताया: एव निर्दिश्यमानाया: न कश्चित्प्रत्येषको भविष्यति"[1]।

किसी धर्म की सत्ता ही नहीं है तो उपदेश किसका ? कोई श्रावक विद्यमान ही नहीं है तो उपदेश किसको? कोई धर्म ही उपदिष्ट नहीं किया जा सकता तो ग्रहण क्या होगा? यह सब प्रपञ्चमात्र है। प्रज्ञापारमिता की दृष्टि से परमार्थत: तथागत अनभिलाप्य है, प्रज्ञापारमिता अनभिलाप्य है, धर्मकाय भी अनभिलाप्य है, अतर्कावचर है; तत्त्व को देखने वाले, प्रज्ञापारमिता के द्रष्टा, आर्यतूष्णींभाव रखते हैं, वाग्युद्ध में पड़कर अथवा कोरे पाडित्य का सहारा लेकर व्यर्थ प्रयास नहीं करते। वज्रच्छेदिका में कहा है कि जो बुद्ध के रूप को, उनकी मूर्ति को, मानव आकार को, निर्माणकाय को, देखते हैं अथवा जो बुद्ध-वचन को, सूत्रों की सूचना को, सद्धर्म-दर्शन के सिद्धान्तों को ही सुनते हैं, वे तथागत को, धर्मकाय को, प्रज्ञापारमिता के वास्तविक रहस्य को, नहीं जानते। धर्मता अथवा तथता द्वारा बुद्ध को समझा जा सकता है। यह धर्मता ज्ञान-विज्ञान का विषय नहीं है—

---

१. अ० प्र० अध्याय २, पृ० २०-२१ अभिसमयालंकारालोकव्याख्या, पृ० २८२।

ये मां रूपेण चाद्राक्षुर्ये मां घोषेण चान्वयुः।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जनाः॥
धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः।
धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम्॥[१]

इस धर्मता का प्रकाशन सम्भव नहीं है। जो इसे जानते हैं इसका वर्णन नहीं करते हैं, जो इसका वर्णन करते हैं वह इसको नहीं जानते। अतएव कहा है-"कथं च संप्रकाशयेत्? यथा न प्रकाशयेत्। तेनोच्यते संप्रकाशयेत्।"[२]

विकल्प अविद्या की उपज है, तथता अथवा तथागत में इसका लेशमात्र भी नहीं होता। कहा है—"सर्वकल्पविकल्प प्रहीणो हि तथागतः"। तथागत ने जो धर्म प्रकाशित किया है वह व्यवहार सत्य का विषय है[३] और उसका पालन पुण्यस्कन्ध को जन्म देता है जो प्रज्ञा की प्राप्ति के लिए प्रस्तावना प्रस्तुत करता है। तथागत ने धर्मों को और सभी संस्कृत पदार्थों को मायोपम और स्वप्नोपम परमार्थ सत्य की दृष्टि से कहा है।[४] सभी धर्मों में अप्रतिष्ठित रहकर बोधिसत्त्व शून्यता में विहार करता है और अरणाविहारी कहलाता है।[५] व्यवहार सत्य से होकर परमार्थ सत्य तक पहुँचते हैं, दानादि पारमितायें प्रज्ञापारमिता तक पहुँचाती हैं। वस्तुतः शून्यताः दृष्टि का भी परित्याग करके ही अरणाविहार अथवा शून्यताविहार सम्भव है। शून्यता में प्रतिष्ठित होना भी संस्कृत में प्रतिष्ठित होने के बराबर है।[६] तथागत सम्यक्सम्बुद्ध को यह विचार नहीं होता कि "मैंने सम्यक्सम्बोधि अधिगत कर ली है।" जिसको ऐसा विचार उत्पन्न हो वह तो असंबुद्ध है, पृथग्जन है। तथागत न कहीं से आता है और न कहीं को जाता है। इसी प्रकार

---

१. वज्रच्छे० प्र० पा०, अध्याय २६।
२. वही, अध्याय ३२।
३. मध्यमक शास्त्र, २४.८, १०; बोधिचर्यावतार, ९.२; चतुःशतक, ८.८
४. अ० प्र० अध्याय १९, पृ० १७६-१७७
५. वज्रच्छे० प्र० पा०, अध्याय ९; अ० प्र०, अध्याय १, पृ० ३-४
६. मध्यमकशास्त्र, १३.८। बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृ० १९७।

धर्मता न कहीं से आती है और न कहीं को जाती है। जो धर्मता है वही तथता है, जो तथता है वही तथागत है। यह सब एक हैं; तथता का द्वय अथवा त्रय में विभाजन नहीं होता है, जो तथता है वही शून्यता है, वही भूतकोटि है, वही तथागत है; मूर्ख प्राणी इसका आना-जाना कल्पित करते हैं—

"अचलिता हि तथता। या च तथता, स तथागतः। ...या च भूतकोटिः स तथागतः। ....या च शून्यता, स तथागतः। ....या च यथावत्ता, स तथागतः। ...यश्च निरोधः स तथागतः। ....यश्च आकाशधातुः, स तथागतः। न हि कुलपुत्र अन्यत्र एभ्यो धर्मेभ्यस्तथागतः। या च कुलपुत्र एषामेव धर्माणां तथताया च सर्वधर्मतथता, या च तथागततथता, एकैवैषा तथता। नास्ति कुलपुत्र तथताया द्वैधीकारः। एकैवैषा तथता कुलपुत्र। तथता न द्वे न तिस्रः। ....ये केचित्तथागतरूपेण वा घोषेण वा अभिनिविष्टाः, ते तथागस्यागमनं च गमनं च कल्पयन्ति। ये च तथागतस्यागमनं च गमनं च कल्पयन्ति, सर्वे ते बालजातीया दुष्प्रज्ञजातीया इति वक्तव्याः। ....तत्कस्य हेतोः ? न हि तथागतो रूपकायतो द्रष्टव्यः। धर्मकायास्तथागताः। न च कुलपुत्र धर्मता आगच्छति वा गच्छति वा। एवमेव कुलपुत्र नास्ति तथागतानामागमनं वा गमनं वा।"[१]

भगवान ने स्वयं कहा है कि बुद्ध धर्मकाय है, भौतिककाय की कल्पना नहीं करनी है। बुद्ध को धर्मकायनिष्पत्ति के माध्यम से देखना चाहिये, यह तथागतकाय भूतकोटि से प्रभावित है जिसे प्रज्ञापारमिता कहते हैं—"धर्मकाया बुद्धा भगवन्तः। मां खलु पुनरिमं भिक्षवः सत्कायं कायं मन्यध्वम्। धर्मकायपरिनिष्पत्तितो मां भिक्षवो द्रक्ष्यथ। एष च तथागतकायो भूतकोटि प्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता।"[२]

प्रज्ञापारमिता शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हरिभद्र अपने आलोकव्याख्या में प्रज्ञापारमिता शब्द की शब्द-विद्या (व्याकरण) एवं दर्शन की दृष्टि से निम्नलिखित सुन्दर व्याख्या करते हैं—

"पारं प्रकर्षपर्यन्तम् एति इति विगृह्य, क्विपि सर्वापहारिलोपे अनित्यमागमशासनमित्यलुकि, तत्पुरुषे, कृति बहुलमिति अलुकि च कर्मविभक्तेः कृते पारमिस्तद्भावः

---

१. अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र; अध्याय ३१, पृ० २५३।

२. वही, अध्याय ४, पृ० ४८।

पारमिता। प्रज्ञाया धर्मप्रविचयलक्षणायाः पारमिता प्रज्ञापारमिता मुख्या। बुद्धो भगवान् मायोपमं ज्ञानमद्वयम्। तत्प्राप्त्यनुकूलत्वेन तु पदवाक्यसमूहो ग्रन्थो दर्शनादिलक्षणो मार्गश्च गौणी प्रज्ञापारमिता।''[१]

भाष्यकार ने इस व्याख्या को और अधिक बलवती बनाने की दृष्टि से आचार्य दिङ्नाग के प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ की प्रथम कारिका उद्धृत की है जिसे हम पहले लिख चुके हैं। प्रज्ञापारमिता ऐसी पारमिता अथवा उपलब्धि अथवा पूर्णता है जिसका आवश्यक गुण व कार्य धर्मप्रविचय करना है; धर्मों के स्वभाव का परीक्षण, निरीक्षण और अन्वेषण करना है। धर्मप्रविचय की इस प्रक्रिया की पूर्णता तब होती है जब सर्व धर्म शून्यवत और निःस्वभाव समझ लिये जाते हैं। यह तत्त्व-ज्ञान की पराकाष्ठा है और प्रपंच का उपशम है। जैसा कि आचार्य भावविवेक ने कहा है—

''सर्वधर्माणां प्रपञ्चानुत्थानं द्वयनिमित्तविविक्तता इयं प्रज्ञापारमिता।''[२] द्वयनिमित्त यथा 'अस्ति' और 'नास्ति' अथवा 'ग्राहक' और 'ग्राह्य' भेद के जो निमित्त हैं वे सब प्रपंचपूर्ण और विपर्यास के परिणामस्वरूप हैं। परन्तु प्रज्ञापारमिता आवरणरहित, प्रपंचविहीन, निर्लेप, आकाश की भाँति है, जो इसे समझते हैं वे तथागत को यथावत् समझते हैं—

आकाशमिव निर्लेपां निष्प्रपञ्चां निरक्षराम्।
यस्त्वां पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम्॥[३]

प्रज्ञापारमिता दर्शन की इस संक्षिप्त चर्चा का उपसंहार हम ''प्रज्ञापारमिताहृदय'' के दिग्दर्शन द्वारा करना चाहते हैं!

''एक समय बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर गम्भीर प्रज्ञापारमिता की चर्या की चरमावस्था में थे। उन्होंने अवलोकन किया और पंचस्कन्धों को देखा और इन्हें

---

१. अभिसमयालंकारालोकव्याख्या (अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता-टीका), पृ० २८२।

२. करतलरत्नशास्त्र (महायानकरतलरत्नशास्त्र), पृ० ९९।

३. प्रज्ञापारमितास्तुति (नागार्जुनकृत) कारिका २।

स्वभावशून्य पाया। शारिपुत्र, रूप शून्यता है, यह शून्यता ही रूप है, शून्यता रूप से अभिन्न है, और रूप शून्यता से अभिन्न है, जो रूप है वह शून्यता है, जो शून्यता है वह रूप है। यही स्थिति वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान की भी है।

शारिपुत्र, शून्यता सभी धर्मों का लक्षण हैं, वह न उत्पन्न होते हैं और न निरुद्ध होते हैं, न अमल हैं न विमल हैं, न अपूर्ण हैं और न परिपूर्ण हैं। अतएव, हे शारिपुत्र, शून्यता में न रूप है, न वेदना है, न संज्ञा है, न संस्कार है, और न विज्ञान है, न चक्षु है, न श्रोत्र, न घ्राण, न जिह्वा, न काय, न मन है, न रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य, अथवा धर्म है, न चक्षुर्धातु (आदि से लेकर) मनोधातु (तक के धातु) ही हैं, (इसमें) न विद्या है, न अविद्या, न विद्याक्षय, न अविद्याक्षय (आदि से लेकर आगे के अंग ही) न जरामरण, न जरामरणक्षय, न दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग हैं, न ज्ञान है और न प्राप्ति है। अतएव, हे शारिपुत्र! बोधिसत्त्व प्रज्ञापारमिता के आश्रित होकर (अप्रतिष्ठित रहकर) चित्तावरण रहित हो विचरण करता है। चित्तावरणों की अनुपस्थिति में वह त्रस्त अथवा भयभीत नहीं होता है। विपर्यासों (विपरीत उपकरणों) का वह अतिक्रमण कर चुका है और निर्वाण-निष्ठ हो गया है। वे सभी, जो तीनों कालों (अतीत, वर्तमान, अनागत) में बुद्धों के रूप में प्रकट होते हैं, प्रज्ञापारमिता के आश्रित होकर ही अनुत्तर सम्यक्संबोधि से अभिसंबुद्ध होते हैं।

अतएव प्रज्ञापारमिता को महामन्त्र, महाविद्या का मन्त्र, अनुत्तर मन्त्र, अतुलनीय (असमसम) मन्त्र, सभी दुःखों को शान्त करने वाला मन्त्र समझना चाहिये। यह सत्य है, मिथ्या कैसे हो सकता है? यह मन्त्र प्रज्ञापारमिता द्वारा कहा गया है—

'गते गते पारगते पारसंगते बोधि स्वाहा'।[१]

अन्त में प्रस्तुत लेखक भी आचार्य नागार्जुन के साथ प्रज्ञापारमिता को निम्न शब्दों में नमस्कार करता है—

---

१. यह 'प्रज्ञापारमिता-हृदयसूत्र' (संक्षिप्त मातृका) का स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद है। यह सूत्र महायान-सूत्र-संग्रह, प्रथम खण्ड (पृ० ९७) में संपादित हुआ है। हिन्दी अनुवाद यहाँ पर पहली बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते।
या त्वं सर्वानवद्याङ्गि निरवद्यैर्निरीक्षसे॥[1]

५. प्रज्ञापारमिता साहित्य

प्रज्ञापारमिता साहित्य महायान बौद्ध धर्म–दर्शन का अति प्राचीन, प्रामाणिक एवं पवित्र साहित्य है। इस साहित्य के अन्तर्गत प्रज्ञापारमितासूत्र तथा उन पर लिखे गये भाष्य सम्मिलित हैं। प्रज्ञापारमितासूत्र बुद्धप्रोक्त माने गये हैं, उन पर भाष्य अथवा टीकायें शास्त्रकारों ने लिखी हैं। यह सूत्र 'श्रुति' की कोटि में और भाष्य 'शास्त्र' की कोटि में रखे जाते हैं, प्रत्येक सूत्र 'एवं मया श्रुतम्'। 'ऐसा मैंने सुना।' इस वाक्य से प्रारम्भ होता है। इन सूत्रों में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई गई है; भाषा प्राकृत मिश्रित संस्कृत है जिसे आधुनिक पश्चिमी आलोचकों ने 'बौद्ध संस्कृत' 'गाथा संस्कृत (डायलेक्ट), तथा 'हाइब्रिड संस्कृत' आदि नाम दिये हैं। सूत्रों का उपदेश बोधिसत्त्वों, अर्हतों, भिक्षुओं, उपासक-उपासिकाओं आदि की विशाल परिषदों में गृध्रकूटपर्वत, श्रावस्ती (जेतवन), श्रीपर्वत, अथवा पोतलक पर्वत में तथागत द्वारा होता है। परिषद् में उपस्थित कोई एक बोधिसत्त्व (यथा सुभूति, शारिपुत्र, महामति) प्रश्न करता है और तथागत उत्तर देते हैं। इनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रज्ञापारमिता है अतएव इन्हें प्रज्ञापारमिता सूत्र कहा जाता है।

प्रज्ञापारमिता सूत्रों की रचना सर्वप्रथम कब और कहाँ हुई यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी है। प्रज्ञापारमितासूत्रों की उत्पत्ति का महायान की उत्पत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इन दोनों के विकास से आचार्य नागार्जुन का ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस विषय पर प्रसंगवश अन्यत्र विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है[2]। आचार्य नागार्जुन का आविर्भाव प्रथम शताब्दी ई० पूर्व दक्षिण भारत में आन्ध्रप्रदेश में हुआ था। यद्यपि उन्होंने सम्पूर्ण देश में भ्रमण करके सद्धर्म

---

१. प्रज्ञापारमितास्तुति, कारिका १।

२. देखिये; लालमणि जोशी 'महायान बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास' त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ, वाराणसी १९६५, पृ० ११२–१३० तथा एल०एम० जोशी, 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ दि माध्यमिक फिलॉसफर नागार्जुन' महाबोधि जर्नल, वॉल्यूम ७३, १९६५ कलकत्ता, पृ० १३–२०, ४२–४९।

का प्रचार किया, परन्तु उनका दीर्घकालीन निवास दक्षिण में श्रीपर्वत (नागार्जुन कौण्ड) तथा श्री धान्यकटक (अमरावती) में हुआ। श्वानच्वाङ्, बु-दोन तथा सुमपा-खन-पो आदि लेखकों के अनुसार एक शातवाहन राजा आचार्य नागार्जुन की हत्या का कारण था। तिब्बती परम्परा में आचार्य नागार्जुन को महायान का जन्मदाता और प्रज्ञापारमितासूत्रों का प्रकाशक माना गया है। यह परम्परा सर्वांश में सत्य न होते हुये भी महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत करती है। पालि एवं संस्कृत बौद्ध परम्पराओं में शारिपुत्र का प्रज्ञा के सिद्धान्त से असंदिग्ध सम्बन्ध है। महायान परम्परा में नागार्जुन (ई० पूर्व० ८०-१२० ई०) का प्रज्ञापारमिता के सिद्धान्त से अकाट्य सम्बन्ध है। वह प्रज्ञापारमितासूत्र के सर्वप्रथम भाष्यकार; 'प्रज्ञापारमिता स्तव' और 'महाप्रज्ञा-पारमिताशास्त्र' के प्रणेता हैं। निश्चय ही प्रज्ञापारमिता सूत्रों का प्रकाशन नागार्जुन से पूर्व, १०० ई० पूर्व पहले ही हो चुका था। महायानी संस्कृत ग्रन्थों, चीनी एवं तिब्बती साहित्यिक परम्पराओं में घोषणा की गई है कि स्वयं भगवान् बुद्ध ने गृध्रकूट पर्वत पर महायान अथवा बोधिसत्त्वयान की देशना की थी। नागार्जुन, मैत्रेयनाथ तथा असङ्ग आदि महायान दार्शनिकों का विश्वास था कि महायान और हीनयान दोनों ही बुद्ध द्वारा उपदिष्ट मार्ग है[१]। महायान के विशिष्ट विचारों की दिशा में महासांघिक सम्प्रदाय के बौद्धों ने शक्तिशाली चिन्तन और प्रयत्न किये थे। इन महासांघिकों का उदय चौथी शताब्दी ई० पूर्व (बुद्ध के निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात्) हो चुका था। तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में सम्राट अशोक के प्रयत्नों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म की महायान की दिशा में और भी प्रगति हुई। महासांघिकों के उपनिकायों में से लोकोत्तरवादी और महाशून्यतावादी बौद्धों ने बोधिसत्त्वयान की अभिवृद्धि एवं लोकप्रियता में पर्याप्त सहयोग दिया था। महावस्तु अवदान की मूलरूप में रचना ३००-२०० ई० पूर्व हुई होगी। इस ग्रन्थ में बोधिसत्त्वयान का स्पष्ट रूप निखरता प्रतीत होता है! दूसरी शताब्दी ई० पूर्व में ही प्रज्ञापारमितासूत्रों का प्रकाशन दक्षिण भारत में हुआ था। अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख हुआ है[२] कि पारमितानय अर्थात् महायान के उपदेशों

१. द्र० त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १२०-१२२।

२. अ० प्र० अध्याय १०, पृ० ११२ (दरभंगा संस्करण)।

से युक्त सूत्रों का प्रादुर्भाव दक्षिणापथ में ही हुआ और वहाँ से इनका प्रचार पूर्वी व उत्तरी भारत में हुआ। पहले कहा जा चुका है कि महायान के प्रथम महान आचार्य एवं प्रज्ञापारमिता के प्रथम भाष्यकार नागार्जुन दक्षिण भारतीय थे। गण्डव्यूहसूत्र एवं मञ्जुश्रीमूलकल्पसूत्र से भी दक्षिणापथ में महायान के विकास के संकेत मिलते हैं[१]। प्रज्ञापारमितासूत्रों का प्रकाशन वस्तुतः महायान का प्रकाशन था[२]। यह सम्भव है कि प्राचीनतम प्रज्ञापारमिता ग्रंथ प्राकृत भाषा में निबद्ध किये गये थे और कालान्तर में उनको संस्कृत रूप दिया गया था[३]। इसके पक्ष में एक तिब्बती परम्परा है जिसके अनुसार शैल-सम्प्रदायों ने प्रज्ञा ग्रन्थों को प्राकृत में रचा था। दूसरी ओर बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों की भाषा में प्राकृत का प्रभाव भी स्पष्टरूपेण द्रष्टव्य है[४]। प्रज्ञापारमिता ग्रन्थों की रचनाशैली और उनकी विषयवस्तु सुसंगठित नहीं है[५]।

प्रज्ञापारमिता नाम के अनेक सूत्र हैं। उनमें से शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, पंचविंशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, अष्टादशसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, दशसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता, अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, सार्द्धद्विसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, अष्टशतिकाप्रज्ञापारमिता, सप्तशतिकाप्रज्ञापारमिता, पंचशतिकाप्रज्ञापारमिता, त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिता (वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिता) से लेकर अल्पाक्षरा (स्वल्पाक्षरा) प्रज्ञापारमिता, तथा प्रज्ञापारमिताएकाक्षरी तक की प्रज्ञापारमितायें तिब्बती धार्मिक साहित्य संग्रह के 'कन्जुर' नामक संग्रह के अन्तर्गत शेरफ्यिन भाग में 21 ग्रन्थों में तिब्बती भाषा में अनूदित हैं।

---

१. दे० लेखक की पुस्तक 'बुद्धिस्टिक कल्चर', अध्याय १०।

२. तु० डी० टी० सुजूकी, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु जेन बुद्धिज्म, पृ० ३०।

३. तु० हाजिमे नाकामुरा का लेख, बुलेटिन ऑफ ओकुरॉयामा आरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नं० २, १९५७।

४. द्र० एम० विन्तर्निट्ज, हिस्टरी ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग १, पृ० ३१४ तथा एफ० एडजर्टन, हाइब्रिड बुद्धिस्ट संस्कृत डिक्शनरी।

५. तु० एडवर्ड कॉन्ज का लेख, ईस्ट एण्ड वेस्ट, वाल्यूम ५, १९५४।

डॉ० एडवर्ड कॉन्ज ने अपने ग्रन्थ 'दि प्रज्ञापारमिता लिटरेचर' (दि हेग, १९६०) में लगभग चालीस ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो पारमिता साहित्य के अन्तर्गत हैं। प्रोफेसर र्‌यूशो हिकाटा ने सुविक्रान्तविक्रमीपरिपृच्छाप्रज्ञापारमितासूत्र के संस्करण की भूमिका (फूकोका १९५८) में प्रज्ञापारमिता के २७ ग्रन्थों को गिनाया है। परन्तु ये सभी ग्रन्थ मूल संस्कृत में अनुपलब्ध हैं। 'तैशो त्रिपिटक', टोहोकु बौद्ध ग्रन्थ-सूची तथा नान्जियो की बौद्ध ग्रन्थसूची में प्रज्ञापारमिता साहित्य के अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ भी गिनाये गये हैं जो चीनी या तिब्बती अथवा दोनों भाषाओं में अनूदित और विद्यमान हैं—पंचपारमितानिर्देश, पंचशतिकाप्रज्ञापारमिता, देवराजप्रवर प्रज्ञापारमिता, नागश्री-प्रज्ञापारमिता, प्रज्ञापारमितानामाष्टशतक, चन्द्रगर्भाप्रज्ञापारमिता, सूर्यगर्भाप्रज्ञापारमिता, समन्तभद्राप्रज्ञापारमिता, वज्रपाणि प्रज्ञापारमिता तथा वज्रकेतु प्रज्ञापारमिता इत्यादि।

निम्नलिखित प्रज्ञापारमितासूत्र पूर्णतः अथवा अंशतः मूल संस्कृत में उपलब्ध हैं:

१. स्वल्पाक्षरा प्रज्ञापारमितासूत्र, २-३. प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र (संक्षिप्त तथा विस्तृत संस्करण), ४. कौशिकप्रज्ञापारमितासूत्र, ५. अध्यर्धशतिका प्रज्ञापारमिता सूत्र, ६. (त्रिशतिका नाम) वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, ७. सुविक्रान्तविक्रमीपरिपृच्छा नाम सार्धद्विसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, ८. सप्तशतिका प्रज्ञापारमिता सूत्र (मंजुश्री परिवर्त [१]) ९. अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र[२], १०. दशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र[३], ११. अष्टादशसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता सूत्र[४]। १२. पंचविंशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता सूत्र[५] तथा १३. शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र[६]।

---

१. ये आठों ग्रन्थ बौ०सं०ग्र० १७ में महायान सूत्र-संग्रह भाग १ के अन्तर्गत प० ल० वैद्य द्वारा पुनः सम्पादित एवं दरभंगा से १९६१ में प्रकाशित हैं।

२. प्रकाशित, बौ०सं०ग्र० ४, (१९६५), एडवर्ड कॉन्ज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित।

३. अंशतः प्रकाशित।

४. अंशतः प्रकाशित। स्तेन कोनउ द्वारा सम्पादित, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नं० ६९; गिलगिट पाण्डुलिपि (परिवर्त ५५-७०) कॉन्ज द्वारा सम्पादित, रोम, १९६२।

५. अंशतः प्रकाशित। नलिनाक्ष दत्त द्वारा सम्पादित, कलकत्ता १९३४।

६. अंशतः प्रकाशित। प्रतापचन्द्र घोष द्वारा सम्पादित, बिब्लियोथेका इण्डिका, १९१२।

प्रज्ञापारमितासाहित्य के अन्तर्गत 'रत्नगुणसञ्चयगाथा'[१] का उल्लेख समीचीन है। इसमें अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता की विषयवस्तु का सारांश है। हरिभद्र (८०० ई०) के समय में इस ग्रन्थ के अनेक पाठ थे और उन्होंने इन्हें सुव्यवस्थित किया था। हरिभद्र प्रज्ञापारमिता के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता सूत्र पर एक टीका लिखी है जो उपलब्ध भी है, यह ग्रन्थ 'अभिसमयालंकारालोक'[२] कहलाता है। इसमें अभिसमयालंकार कारिका का भी उपयोग हुआ है। आचार्य नागार्जुन ने 'महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र'[३] नामक महान् ग्रन्थ अष्टसाहस्रिका की टीका के रूप में लिखा था। आचार्य मैत्रेयनाथ ने 'अभिसमयलंकारकारिका'[४] (प्रज्ञापारमितोपदेशशास्त्र) की रचना की थी। यह ग्रन्थ अष्टसाहस्रिका अथवा पंचविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता की संक्षिप्त टीका है। आचार्य असङ्ग ने वज्रच्छेदिका पर 'त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति' नामक टीका लिखी है जो पाठकों के हाथ में है। आचार्य दिङ्नाग ने अष्टसाहस्रिका पर 'प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ' नामक टीका लिखी है[५]। कम्बलपाद ने भी अष्टसाहस्रिका पर नौ श्लोकों की एक टीक लिखी है[६]। प्रज्ञापारमिताओं के टीकाकारों में वसुबन्ध, आर्य विमुक्तिसेन तथा भदन्त विमुक्तिसेन के नाम उल्लेख्य हैं। कुछ अन्य टीकाकारों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

उपर्युक्त प्रज्ञापारमिता सूत्रों में कौन सा सूत्र सर्वप्रथम रचा गया इस प्रश्न का उत्तर विवादग्रस्त है। ऊपर अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र को प्राचीनतम और सर्वप्रथम प्रज्ञापारमितासूत्र माना गया है। यह मत डॉ० विन्तर्निट्ज, डॉ० नलिनाक्षदत्त, डॉ० परशुराम वैद्य आदि का भी है। कुछ विद्वान् पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञा-पारमितासूत्र को प्राचीनतम मानते हैं।[७] ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टसाहस्रिका प्राचीनतम

---

१. बौ० सं० ग्र० १७ में प्रकाशित।

२. बौ० सं० ग्र० ४ में प्रकाशित।

३. ई० लामोत द्वारा चीनी से फ्रेंच में अनूदित ४ भागों में लुवें से प्रकाशित।

४. बौ० सं० ग्र० ४ में प्रकाशित। एडवर्ड कॉन्ज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, रोम में प्रकाशित।

५. प्रकाशित। बौ० सं० ग्र० ४ में तथा जे० आर० ए० एस० १९४८ में।

६. प्रकाशित। मा० बु० टे० भाग १, रोम १९५६।

७. द्र० नलिनाक्षदत्त, एस्पेक्ट्स ऑफ महायान बुद्धिज्म, पृ० ३२४-२५ विन्तर्निट्ज, पू० उ० ग्रन्थ, पृ० ३१६, ६२५-२६; एडवर्ड कॉन्ज का लेख 'दि ओल्डेस्ट प्रज्ञापारमिता', दि मिडिल वे, वाल्यूम ३२, १९५७ तथा परशुराम वैद्य, अ० प्र० की भूमिका, पृ० ३०-३२।

प्रज्ञापारमितासूत्र है और नागार्जुन कृत 'महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र' (महा प्रज्ञापारमिता सूत्रविभाषा) (चीनी 'ता-चिह-तू-लुन') इस सूत्र की प्रथम टीका है। हमारी धारणा है कि अष्टसाहस्रिका की रचना २०० ई० पूर्व में और महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र की रचना प्रथम शताब्दी ई० पूर्व के अन्तिम चरण में हुई होगी। आचार्य नागार्जुन ने 'प्रज्ञापारमितास्तव' नामक २० अनुष्टुप श्लोकों का एक लघु ग्रन्थ भी रचा था जो अष्टसाहस्रिका०, पंचविंशतिसाहस्रिका० तथा सुविक्रान्तविक्रमी परिपृच्छा० की पाण्डुलिपियों के प्रारम्भ में लिखा पाया जाता है।[१] प्रज्ञापारमिता साहित्य के असाधारण विकास क्रम पर प्राचीन व अर्वाचीन विद्वानों में मतभेद है। एक परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम १२५००० (एक लाख पचीस हजार) श्लोकों का प्रज्ञापारमितामहायानसूत्र रचा गया था।[२] कालान्तर में इसी विशाल सूत्र के संक्षिप्त रूप १००,००० (शतसाहस्रिका), २५,००० (पंचविंशति-साहस्रिका), १०,००० (दशसाहस्रिका), तथा ८,००० (अष्टसाहस्रिका), श्लोकों में रचे गये थे। एक अन्य प्राचीन परम्परा के अनुसार ८,००० श्लोकों का सूत्र (अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता) पहला (मूल) प्रज्ञा-ग्रंथ था और आगे चलकर इसी का विस्तार करके अधिक बड़े सूत्रों का और संक्षेप करके लघुत्तर सूत्रों का निर्माण हुआ। राजा राजेन्द्रलाल मित्र, पं० हरप्रसाद शास्त्री; डॉ० विन्तर्निट्ज तथा अन्य विद्वान् इस परम्परा को मानते हैं और अष्टसाहस्रिका को प्रचीनतम प्रज्ञापारमितासूत्र निश्चित करते हैं। मैत्रेयनाथ की अभिसमयालंकारकारिकाओं में कहा गया है कि अष्टसाहस्रिका को पंचविंशतिसाहस्रिका के रूप में परिवर्द्धित किया गया था। चीनी भाषा में अनूदित दशसाहस्रिका और संस्कृत में उपलब्ध अष्टसाहस्रिका की विषयवस्तु में बहुत कम अन्तर देखा गया है। परन्तु अष्टसाहस्रिका के सम्बन्ध में पंचविंशतिसाहस्रिका को 'मध्यमा जिनजननी' और शतसाहस्रिका को 'मूल' प्रज्ञापारमिता कहा गया है। हरिभद्र अपने आलोकव्याख्या

---

१. प्रकाशित। बौ० सं० ग्र० ४, पृ० १-२ पाद-टिप्पणी में। अंग्रेजी में अनूदित एडवर्ड कॉन्ज द्वारा, बुद्धिस्ट स्क्रिप्चर्स में। हिन्दी में अनूदित, लालमणि जोशी द्वारा, धर्मदूत, वर्ष ३० (१९६६) में प्रकाशित।

२. प्रज्ञापारमिता सूत्र गद्य में है। परन्तु परम्परागत रूप से उन्हें ३२ अक्षरों वाले श्लोकों में विभाजित करके उनकी श्लोक संख्या बताई जाती है।

में बड़े और छोटे प्रज्ञापारमिता सूत्रों के उद्देश्यों की चर्चा करता है और इस क्रम में 'आर्यशतसाहस्त्रिका', 'आर्यपंचविंशतिसाहस्त्रिका' तथा 'आर्य अष्टसाहस्त्रिका' का उल्लेख करता है। उसने पंचविंशतिसाहस्त्रिका का प्रयोग अष्टसाहस्त्रिका की व्याख्या में किया है। यह स्पष्ट है कि पाठकों की सुविधा और भक्तों के लिए स्मरण करने की सुविधा को ध्यान में रखकर ही प्रज्ञापारमिता सूत्रों को संक्षिप्त किया गया था और कालान्तर में १००,००० श्लोकों से लेकर १४ श्लोकों तक तथा केवल एक अक्षर वाली (एकाक्षरा) तांत्रिक प्रज्ञापारमिता सूत्रों व धारणियों[१] की रचना हुई।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रज्ञापारमिताओं में अष्टसाहस्त्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि नागार्जुन, मैत्रेयनाथ, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, आर्यविमुक्तिसेन, भदन्तविमुक्तिसेन, हरिभद्र तथा कम्बलाचार्य जैसे महान बौद्ध विचारकों ने अष्टसाहस्त्रिका पर टीकायें लिखीं और उसकी विषय-वस्तु की व्याख्या की थी।

अष्टसाहस्त्रिकाप्रज्ञापारमिता ८,००० श्लोकों वाला ३२ अध्यायों का बड़ा ग्रन्थ है। परन्तु वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिता केवल ३०० श्लोकों का ग्रन्थ है। अतएव यह पाठ करने व स्मरण करने में सरल है। इसकी शैली प्रभावोत्पादक और इसके दार्शनिक विचार पर्याप्त आकर्षक हैं। इन्हीं कारणों से यह ग्रन्थ प्राचीन और आधुनिक बौद्ध विद्वानों का प्रिय प्रज्ञापारमिता सूत्र रहा है।

■

१. द्र० एडवर्ड कॉन्ज का लेख, 'सिनो इण्डियन स्टडीज', वाल्यूम ५, भाग २, पृ० १०० १२२।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्रम्

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र

॥ नमः सर्वज्ञाय॥[1]

[१]

एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथ-पिण्डदस्यारामे महता भिक्षुसंघेन सार्धमर्धत्रयोदशभिर्भिक्षुशतैः संबहुलैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णकालसमये निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं महानगरीं पिण्डाय प्राविक्षत्। अथ खलु भगवान् श्रावस्तीं महानगरीं पिण्डाय चरित्वा कृतभक्तकृत्यः पश्चाद्भक्तपिण्डपातप्रतिक्रान्तः पात्रचीवरं प्रतिशाम्य पादौ प्रक्षाल्य न्यषीदत्प्रज्ञप्त एवासने पर्यङ्कमाभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय प्रतिमुखीं स्मृतिमुपस्थाप्य। अथ खलु संबहुला भिक्षवो येन भगवांस्तेनोपसंक्रामन। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरोभिरभिवन्द्य भगवन्तं त्रिष्प्रदक्षिणीकृत्य एकान्ते न्यषीदन्।

[२]

तेन खलु पुनः समयेनायुष्मान् सुभूतिस्तस्यामेव पर्षदि संनिपतितोऽभूत्संनिषण्णः। अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिरुत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमेतदवोचत्—आश्चर्यं भगवन्, परमाश्चर्य सुगत, यावदेव तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अनुपरिगृहीताः परमेणानुग्रहेण। आश्चर्यं भगवन् यावदेव तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः परीन्दिता परमया परीन्दनया। तत्कथं भगवन् बोधिसत्त्वयान-संप्रस्थितेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा स्थातव्यं कथं प्रतिपत्तव्यं कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ?

---

१. मैक्सम्यूलर, वैद्य तथा कॉन्ज के संस्करणों में 'नमो भगवत्यै (भगवत्या) आर्यप्रज्ञापारमितायै' पाठ है। परन्तु तिब्बती तथा जापानी पाण्डुलिपियों में 'नमः सर्वज्ञाय' पाठ मिलता है जिसे इस संस्करण में अपनाया गया है।

एवमुक्तं[१] भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्—साधु साधु सुभूते, एवमेतत्सुभूते, एवम् तद्यथा वदसि। अनुपरिगृहीतास्तथागतेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः परमेणानुग्रहेण। परीन्दितास्तथागतेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वा परमया परीन्दनया। तेन हि सुभूते शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्येऽहं ते—यथा बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन स्थातव्यं यथा प्रतिपत्तव्यं यथा चित्तं प्रग्रहीतव्यम्। एवं भगवन् इत्यायुष्मान् सुभूतिर्भगवतः प्रत्यश्रौषीत्।

[३]

भगवानस्यैतदवोचत् —इह सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेनैवं चित्तमुत्पादयितव्यम्— यावन्तः सुभूते सत्वाः सत्त्वधातौ सत्त्वसंग्रहेण संगृहीता अण्डजा वा जरायुजा वा संस्वेदजा वा औपपादुका वा रूपिणी वा अरूपिणी वा संज्ञिनो वा असंज्ञिनो वा नैव संज्ञिनो नासंज्ञिनो वा, यावान् कश्चित्सत्त्वधातुः प्रज्ञप्यमानः प्रज्ञप्यते, ते च मया सर्वेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्याः। एवमपरिमाणानपि सत्त्वान् परिनिर्वाप्य न कश्चित्सत्त्वः परिनिर्वापितो भवति। तत्कस्य हेतोः? स चेत्सुभूते बोधिसत्त्वस्य सत्त्वसंज्ञा प्रवर्तेत, न स बोधित्त्व इति वक्तव्यः। तत्कस्य हेतोः? न स सुभूते बोधिसत्त्वो वक्तव्यो यस्य आत्मसंज्ञा[२] प्रवर्तेत सत्त्वसंज्ञा वा जीवसंज्ञा वा पुद्गलसंज्ञा वा प्रवर्तेत।

[४]

अपि तु खलु पुनः सुभूते न बोधिसत्त्वेन वस्तुप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्, न क्वचित्प्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्। न रूपप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्। न शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्यधर्मेषु प्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्। एवं हि सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन दानं दातव्यं यथा न निमित्तसंज्ञायामपि प्रतितिष्ठेत्। तत्कस्य हेतोः ? यः सुभूते बोधिसत्त्वो[३] अप्रतिष्ठितो दानं ददाति, तस्य सुभूते पुण्यस्कन्धस्य न सुकरं प्रमाणमुतग्रहीतुम्। तत्किं मन्यसे सुभूते सुकरं पूर्वस्यां दिशि आकाशस्य प्रमाणमुद्ग्रहीतुम्? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। भगवानाह—एवं दक्षिणपश्चिमोत्तरासु अधऊर्ध्वदिग्विदिक्षु समन्ताद्दशसु दिक्षु सुकर-

---

१. वैद्य संस्करण में 'एवमुक्ते' पाठ है।

२. वैद्य एवं भोट के संस्करण में 'आत्मसंज्ञा' पाठ नहीं है। द्रष्टव्य कॉन्ज का संस्करण, पृ० २९।

३. कॉन्ज, पृ० २९ 'बोधिसत्त्वो' नहीं है।

माकाशस्य प्रमाणमुद्ग्रहीतुम्? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। भगवानाह— एवमेव सुभूते यो बोधिसत्त्वोऽप्रतिष्ठितो दानं ददाति, तस्य सुभूते पुण्यस्कन्धस्य न सुकरं प्रमाणमुद्ग्रहीतुम्। एवं हि सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन दानं दातव्यं यथा न निमित्तसंज्ञायामपि प्रतितिष्ठेत्।

[५]

तत्किं मन्यसे सुभूते लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न लक्षण सम्पदा तथागतो द्रष्टव्यः।[१] तत्कस्य हेतोः? या सा भगवन् लक्षणसंपत्तथागतेन भाषिता सैवालक्षणसंपत्। एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्—यावत्सुभूते लक्षणसंपत् तावन्मृषा, यावदलक्षणसंपत् तावन्न मृषेति हि लक्षणालक्षणस्तथागतो द्रष्टव्यः।

[६]

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्-अस्ति भगवन्। केचित्सत्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेसु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति ? [२]भगवान् आह—मा सुभूते त्वमेवं वोचः। अस्ति केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, य इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति[३]। अपि तु खलु पुनः सुभूते भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि बोधिसत्त्वाः महासत्त्वाः पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने गुणवन्तः शीलवन्तः प्रज्ञावन्तश्च भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति। न खलु पुनस्ते सुभूते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा एकबुद्धपर्युपासिता भविष्यन्ति, नैकबुद्धावरोपितकुशलमूला भविष्यन्ति। अपि तु खलु पुनः सुभूते अनेकबुद्धशतसहस्रपर्युपासिता अनेकबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूलास्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु एकचित्तप्रसादमपि[३] प्रतिलप्स्यन्ते। ज्ञातास्ते सुभूते तथागतेन

---

१. यह वाक्य जोशी पाठ में छूट गया लगता है; जोशी के हिन्दी अनुवाद में यह वाक्य प्राप्त है। भोट पाठ एवं वैद्य संस्करण में प्राप्त है तथा यहाँ इसकी आवश्यकता है।

२. वैद्य के संस्करण में यह पंक्तियां अनुपलब्ध हैं। भोट पाठ में प्राप्त है।

३. द्र० महाकर्मविभंग उपदेश (दरभंगा सं०) पृ० २१२- एकचित्तप्रसादस्य विपाको; द्र० कॉन्ज पृ० ३१, पाद टिप्पणी १, मिलिन्दपञ्हो, सं० वाडेकर, पृ० ८३।

बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते सुभूते तथागतेन। सर्वे ते सुभूते अप्रमेयमसंख्येयं पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति, प्रतिग्रहीष्यन्ति। तत्कस्य हेतो:? न हि सुभूते तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामात्मसंज्ञा प्रवर्तते, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्गलसंज्ञा प्रवर्तते। नापि तेषां सुभूते बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्मसंज्ञा प्रवर्तते, एवं नाधर्मसंज्ञा। नापि तेषां सुभूते संज्ञा नासंज्ञा प्रवर्तते। तत्कस्य हेतो:? स चेत्सुभूते तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्मसंज्ञा प्रवर्तते, स एव तेषामात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राह: पुद्गलग्राहो भवेत्। स चेदधर्मसंज्ञा प्रवर्तते, स एव तेषामात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राह: पुद्गलग्राह इति। तत्कस्य हेतो:? न खलु पुन: सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन धर्म उद्ग्रहीतव्यो नाधर्म: तस्मादियं तथागतेन संधाय वाग्भाषिता—कोलोपमं धर्मपर्यायमाजानद्भिर्धर्मा एव प्रहातव्या: प्रागेवाधर्मा इति।[1]

[७]

पुनरपरं भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्— तत्किं मन्यसे सुभूते, अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिरित्यभिसंबुद्ध:, कश्चिद्वा धर्मस्तथागतेन देशित:? एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्— यथाहं भगवन् भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधि-रित्यभिसंबुद्ध:, नास्ति धर्मो यस्तथागतेन देशित: तत्कस्य हेतो:? योऽसौ तथागतेन धर्मोऽभिसंबुद्धो देशितो वा, अग्राह्य: सोऽनभिलप्य:। न स धर्मो नाधर्म:। तत्कस्य हेतो:? असंस्कृतप्रभाविता ह्यार्यपुद्गला:[2]।

[८]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते य: कश्चित्कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्य: सम्यक्संबुद्धेभ्यो

---

१. मिलाइये मज्झिमनिकाय, नागरी सं० भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, जिल्द १, पृ० १८०: एवमेव खो, भिक्खवे कुल्लूपमो मया धम्मो देसितो नित्थरणत्थाय, नो गहणत्थाय। कुल्लूपमं वो, भिक्खवे धम्मं देसितं आजानन्तेहि धम्मा पि वो पहातब्बा पगेव अधम्मा। तुलनीय अभिधर्मकोशव्याख्या, १-२२, ''सर्वस्य संस्कृतस्य निर्वाणम्'' इति निरुपधिशेषनिर्वाणं। यद्येवं सास्रवस्य तदस्तीति भवति सास्रवस्य सनि: सारत्वयोगो मार्गस्तस्य तु कथं। कोलोपमं धर्मपर्यायमाजानद्भिर्धर्मापि प्रहातव्या: प्रागेवाधर्मा इति, मार्गस्तस्यापि नि:सरणं कल्पता एवेति सर्वं एव संस्कृता सनि:सरणा भवन्ति।

२. तु० अ० प्र० पृ० १८ (दरभंगा संस्करणम्) ।

दानं दद्यात्, अपि नु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततोनिदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? सुभूतिराह—बहु भगवन् , बहु सुगत स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात्। तत्कस्य हेतोः? योऽसौ भगवन् पुण्यस्कन्धस्तथागतेन भाषितः, अस्कन्धः स तथागतेन भाषितः। तस्मात्तथागतो भाषते—पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति। भगवानाह— यश्च खलु पुनः सुभूते कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो विस्तरेण देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्। तत्कस्य हेतोः ? अतो निर्जाता हि सुभूते तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामनुत्तरा सम्यक्संबोधिः, अतो निर्जाताश्च बुद्धा भगवन्तः[1]। तत्कस्य हेतोः ? बुद्धधर्मा बुद्धधर्मा[2] इति सुभूते अबुद्धधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिताः। तेनोच्यन्ते बुद्धधर्मा इति।

[९]

तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु स्रोतआपन्नस्यैवं भवति—मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न स्रोतआपन्नस्यैवं भवति—मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति। तत्कस्य हेतोः? न हि स भगवन् कंचिद्धर्ममापन्न, तेनोच्यते स्रोतआपन्न इति। न रूपमापन्नो न शब्दान् न गन्धान् न रसान् न स्प्रष्टव्यान् धर्मानापन्नः। तेनोच्यते स्रोतआपन्न इति। स चेद् भगवन् स्रोतआपन्नस्यैवं भवेत्—मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति, स एव तस्यात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहो भवेदिति।

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु सकृदागामिन एवं भवति—मया सकृदागामिफलं प्राप्तमिति? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न सकृदागामिन एवं भवति—मया सकृदागामिफलं प्राप्तमिति। तत्कस्य हेतोः ? न हि स कश्चिद्धर्मो यः सकृदागामित्वमापन्नः। तेनोच्यते सकृदागामीति।

भगवानाह— तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु अनागामिन एवं भवति—मयानागामिफलं प्राप्तमिति ? सुभूतिराह— नो हीदं भगवन्। न अनागामिन एवं भवति—मया अनागामिफलं प्राप्तमिति। तत्कस्य हेतोः ? न हि स भगवन् कश्चिद्धर्मो योऽनागामित्वमापन्नः। तेनोच्यते अनागामीति।

---

१. तु० अ० प्र० पृ० २९ तथा २२९।

२. जोशी के पाठ में एक बार है जबकि हिन्दी अनुवाद में 'बुद्धधर्म' दो बार है अतः यहाँ भी दो बार रखा गया है। भोट पाठ एवं वैद्य संस्करण में भी दो बार है।

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु अर्हत एवं भवति—मया अर्हत्त्वं प्राप्तमिति[१]? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। नार्हत एवं भवति—मया अर्हत्त्वं प्राप्तमिति। तत्कस्य हेतोः? न हि स भगवन् कश्चिद्धर्मो योऽर्हन्नाम। तेनोच्यते—अर्हन्निति। स चेद् भगवन् अर्हत् एवं भवेत्—मया अर्हत्त्वं प्राप्तमिति, स एव तस्यात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहो भवेत्। तत्कस्य हेतोः? अहमस्मि भगवंस्तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अरणाविहारिणामग्र्यो निर्दिष्टः[२]। अहमस्मि भगवन् अर्हत् वीतरागः। न च मे भगवन्नेवं भवति—अर्हन्नस्म्यहं वीतराग इति। स चेन्मम भगवन्नेवं भवेत्—मया अर्हत्त्वं प्राप्तमिति, न मां तथागतो व्याकरिष्यद् अरणाविहारिणामग्र्यः सुभूतिः कुलपुत्रो न कचिद्विहरति, तेनोच्यते अरणाविहारी अरणाविहारीति।

[१०]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते—अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सबुद्धस्यान्तिकादुद्गृहीतः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकादुद्-गृहीतः।

भगवानाह—यः कश्चित्सुभूते बोधिसत्त्व एवं वदेत्—अहं क्षेत्रव्यूहान् निष्पाद-यिष्यामीति, स वितथं वदेत्। तत्कस्य हेतोः? क्षेत्रव्यूहाः क्षेत्रव्यूहा इति सुभूते, अव्यूहास्ते तथागतेन भाषिताः। तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहा इति। तस्मात्तर्हि सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन एवमप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यं यन्न क्वचित्प्रतिष्ठितं[३] चित्तमुत्पादयितव्यम्। न रूपप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यं न शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्यधर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्। तद्यथापि नाम सुभूते पुरुषो भवेदुपेतकायो महाकायो यत्तस्यैवं रूप आत्मभावः स्यात् तद्यथापि

---

१. तु० दिव्यावदान, केम्ब्रिज सं०, पृ० ४२४: अथायुष्मतो वीतशोकस्य अर्हत्त्वं प्राप्तस्य विमुक्ति-प्रीती-सुख-संवेदिन एतदभवत् : अस्ति खलु में''''', दरभंगा सं० पृ० २७५।

२. तु० अ० प्र०, पृ० ३; अंगुत्तर नि०, नागरी सं०, जिल्द १, पृ० २४-२५, मज्झिम नि०, ना० सं०, जिल्द ३, पृ० २९।

३. देखिये नीचे असङ्ग की टीका का अनुवाद।

नाम सुमेरु : पर्वतराजः। तत्किं मन्यसे सुभूते अपि नु महान् स आत्मभावो भवेत् ? सुभूतिराह-महान् स भगवन् , महान् सुगत स आत्मभावो भवेत्। तत्कस्य हेतो:? आत्मभाव-आत्मभाव इति भगवन् न भावः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते[१] आत्मभाव इति। न हि भगवन् स भावो नाभावः। तेनोच्यते[१] आत्मभाव इति।

[११]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते—यावत्यो गङ्गायां महानद्यां वालुकास्तावत्य एव गङ्गानद्यो भवेयुः, तासु या वालुकाः, अपि नु ता बहव्यो भवेयुः? सुभूतिराह—ता एव तावद्भगवन् बहव्यो गङ्गानद्यो भवेयुः, प्रागेव यास्तासु गङ्गानदीषु वालुकाः। भगवानाह—आरोचयामि ते सुभूते, प्रतिवेदयामि ते। यावत्यस्तासु गङ्गानदीषु बालुका भवेयुस्तावतो लोकधातून् कश्चिदेव स्त्री वा पुरुषो वा सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् , तत् किं मन्यसे सुभूते—अपि नु सा स्त्री वा पुरुषो वा ततो निदानं बहु पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? सुभूतिराह—बहु भगवन्, बहु सुगत स्त्री वा पुरुषो वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्। भगवानाह— यश्च खलु पुनः सुभूते स्त्री वा पुरुषो वा तावतो लोकधातून् सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् , यश्च कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्।

[१२]

अपि तु खलु पुनः सुभूते यस्मिन् पृथिवी प्रदेशे इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य भाष्येत वा संप्रकाश्येत वा, स पृथिवीप्रदेशश्चैत्यभूत्यभूतो[२] भवेत्[३] सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य कः पुनर्वादो य इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति। परमेण ते सुभूते

---

१. कॉन्ज, तेनोच्यत्। पार्जीटर, तद् उच्यत्।

२. वैद्य एवं तिब्बती पाठ में 'चैत्यभूतो' है।

३. तु० अ० प्र०, पृ० २८ तथा नीचे अध्याय १५।

आश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति। तस्मिंश्च सुभूते पृथिवीप्रदेशे शास्ता विहरत्यन्यतरान्यतरो वा विज्ञगुरुस्थानीयः।

[१३]

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्[१] — को नाम अयं भगवन् धर्मपर्यायः, कथं चैनं धारयामि? एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्—प्रज्ञापारमिता नामायं सुभूते धर्मपर्यायः। एवं चैनं धारय। तत्कस्य हेतोः? यैव सुभूते प्रज्ञापारमिता तथागतेन भाषिता सैव अपारमिता तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते प्रज्ञापारमितेति।

तत्किं मन्यसे सुभूते— अपि नु अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन भाषितः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन भाषितः।

भगवानाह[२]—तत्किं मन्यसे सुभूते—यावत् त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजः कच्चित् तद्बहु भवेत् ? सुभूतिराह—बहु भगवन् , बहु सुगत पृथिवीरजो भवेत्। तत्कस्य हेतोः? यत्तद्भगवन् पृथिवीरजस्तथागतेन भाषितम् , अरजस्तद्-भगवंस्तथागतेन भाषितम्। तेनोच्यते पृथिवीरज इति। योऽप्यसौ लोकधातुस्तथागतेन भाषितः, अधातुः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते लोकधातुरिति।

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते द्वात्रिंशन्म[३]हापुरुषलक्षणैस्त[४]थागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो द्रष्टव्यः ? सुभूतिराह — नो हीदं भगवन्। न[४] द्वात्रिंशन्महापुरुष-लक्षणैस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धो द्रष्टव्यः।[५] तत्कस्य हेतोः? यानि हि तानि भगवन् द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानि तथागतेन भाषितानि, अलक्षणानि तानि भगवंस्तथागतेन भाषितानि। तेनोच्यन्ते द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानीति।

---

१. द्र० कॉन्ज, पृ० ३७ पाद टिप्पणी २।

२. श्री एन० पी० चक्रवर्ती द्वारा प्रस्तुत गिलगिट पाण्डुलिपि (मा० बु० टे० १ में डॉ० तुची द्वारा प्रकाशित) का प्रारम्भ 'तः भगवानाह·····' वाक्य से फोलियो ५ अ से हुआ है। इसमें यहाँ पर 'तत्किं मन्यसे सुभूते' अनुपलब्ध है।

३. गिलगिट पाण्डुलिपि 'द्वात्रिंशतम०'

४. द्र० दीघनिकाय, महापदानसुत्तं तथा लक्खणसुत्तं।

५. गिलगिट पाण्डुलिपि में यह वाक्य अनुपलब्ध है।

भगवानाह—यश्च खलु पुनः सुभूते स्त्री वा पुरुषो वा दिने दिने गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत् , एवं परित्यजन् गङ्गानदीवालुकासमान् कल्पांस्तानात्मभावान् परित्यजेत्, यश्च इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्‌गृह्य परेभ्यो देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्।

[१४]

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिर्धर्मवेगेनाश्रूणि प्रामुञ्चत्। सोऽश्रुणि प्रमृज्य भगवन्तमेतदवोचत्— आश्चर्यं भगवन् , परमाश्चर्यं सुगत, यावदयं धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितोऽग्रयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय, श्रेष्ठयानसंप्रस्थितानामर्थाय, यतो मे भगवन् ज्ञानमुत्पन्नम्। न मया भगवन् जात्वेवंरूपो धर्मपर्यायः श्रुतपूर्वः। परमेण ते भगवन् आश्चर्येण समन्वागता बोधिसत्त्वा भविष्यन्ति, ये इह सूत्रे भाष्यमाणे श्रुत्वा भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति। तत्कस्य हेतोः ? या चैषा भगवन् भूतसंज्ञा, सैव अभूतसंज्ञा। तस्मात्तथागतो भाषते भूतसंज्ञा भूतसंज्ञेति।

न मम भगवन् दुष्करं[1] यदहमिमं धर्मपर्यायं भाष्यमाणमवकल्पयामि अधिमुच्ये। येऽपि ते भगवन् सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, ये इमं भगवन् धर्मपर्यायमुद्‌ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ते परमाश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति। अपि तु खलु पुनर्भगवन् न तेषामात्मसंज्ञा प्रवर्तिष्यते, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्‌गलसंज्ञा प्रवर्तिष्यते, नापि तेषां काचित्संज्ञा नासंज्ञा प्रवर्तते। तत्कस्य हेतोः? या सा भगवन् चात्मसंज्ञा, सैवासंज्ञा। या सत्त्वसंज्ञा जीवसंज्ञा पुद्‌गलसंज्ञा, सैवासंज्ञा। तत्कस्य हेतोः? सर्वसंज्ञापगता हि बुद्धा भगवन्तः।[2]

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेदवोचत्— एवमेतत्। सुभूते, एवमेतत्। परमाश्चर्यसमन्वागतास्ते सत्त्वा भविष्यन्ति, ये इह सुभूते सूत्रे भाष्यमाणे नो त्रसिष्यन्ति

---

१. गिलगिट पाण्डुलिपि, मैक्सम्यूलर एवं वैद्य के संस्करणों में 'आश्चर्यं' परन्तु पार्जीटर के संस्करण (देखिये नीचे सहायक ग्रन्थ-सूची) में और डॉ० कॉन्ज के अनुसार कुमारजीव के चीनी अनुवाद में 'दुष्कर' है। तिब्बती पाठ में भी 'आश्चर्य' है।

२. देखिये नीचे इस अध्याय के अनुवाद में प्रथम पादटिप्पणी।

न संत्रसिष्यन्ति न संत्रासमापत्स्यन्ते। तत्कस्य हेतोः? परमपारमितेयं सुभूते तथागतेन भाषिता यदुतापारमिता। यां च सुभूते तथागतः परमपारमितां भाषते, तामपरिमाणा अपि बुद्धा भगवन्तो भाषन्ते। तेनोच्यते परमपारमितेति।

अपि तु खलु पुनः सुभूते या तथागतस्य क्षान्तिपारमिता, सैव अपारमिता। तत्कस्य हेतोः? यदा मे सुभूते कलिंगराजा[१] अङ्गप्रत्यङ्गमांसान्यच्छेत्सीत्, नासीन्मे तस्मिन् समये आत्मसंज्ञा वा सत्त्वसंज्ञा वा जीवसंज्ञा वा पुद्गलसंज्ञा वा, नापि मे काचित्संज्ञा वा असंज्ञा वा बभूव। तत्कस्य हेतोः? स चेन्मे सुभूते तस्मिन् समये आत्मसंज्ञा अभविष्यत्, व्यापादसंज्ञापि मे तस्मिन् समयेऽभविष्यत्। स चेत्सत्त्वसंज्ञा जीवसंज्ञा पुद्गलसंज्ञाभविष्यत् , व्यापादसंज्ञापि मे तस्मिन् समयेऽभविष्यत्। तत्कस्य हेतोः? अभिजानाम्यहं सुभूते, अतीतेऽध्वनि पञ्चजातिशतानि यदहं क्षान्तिवादी[२] ऋषिरभूवम्। तत्रापि मे नात्मसंज्ञा बभूव न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्गलसंज्ञा बभूव। तस्मात्तर्हि सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन सर्वसंज्ञा विवर्जयित्वा अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादयितव्यम्। न रूपप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्, न शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्य-धर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम् , न धर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्, नाधर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम् , न क्वचित्प्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्। तत्कस्य हेतोः? यत्प्रतिष्ठितं तदेवाप्रतिष्ठितम्। तस्मादेव तथागतो भाषते—अप्रतिष्ठितेन बोधिसत्त्वेन दानं दातव्यम्। न रूपशब्दगन्धरसस्पर्शधर्मप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्।

अपि तु खलु पुनः सुभूते बोधिसत्त्वेन एवंरूपो दानपरित्यागः कर्त्तव्यः सर्वसत्त्वानामर्थाय। तत्कस्य हेतोः ? या चैषा सुभूते सत्त्वसंज्ञा, सैव असंज्ञा। य एवं ते

---

१. मैक्सम्यूलर व कॉन्ज के संस्करणों के अनुसार। तिब्बती अनुवाद में ''क-लिं-क'' और चीनी अनुवाद में 'कलि' है। चक्रवर्ती तथा वैद्य के संस्करणों में 'कलिराजा' पाठ है।

२. द्र० कॉन्ज पृ० ४१ पादटिप्पणी ३; साक्ष्यों के लिये द्र० ई० लामोत, ल त्रेते दे ला ग्रेन्द विर्तु दे साजेस दे नागार्जुन, भाग १, लुवें, १९४४, पृ० २६४-६५। द्र० खन्तिवादीजातक, खुद्दक निकाय, जिल्द ३, भाग १ में।

सर्वसत्त्वास्तथागतेन भाषितास्त एव असत्त्वाः। तत्कस्य हेतोः ? भूतवादी सुभूते तथागतः, सत्यवादी तथावादी अनन्यथावादी तथागतः[१], न वितथवादी तथागतः।

अपि तु खलु पुनः सुभूते यस्तथागतेन धर्मोऽभिसंबुद्धो देशितो निध्यातो, न तत्र सत्यं न मृषा। तद्यथापि नाम सुभूते पुरुषोऽन्धकारप्रविष्टो न किंचिदपि पश्येत् , एवं वस्तुपतितो बोधिसत्त्वो द्रष्टव्यो यो वस्तुपतितो दानं परित्यजति। तद्यथापि नाम सुभूते चक्षुष्मान् पुरुषः प्रभातायां रात्रौ सूर्येऽभ्युद्गते नानाविधानि रूपाणि पश्येत् , एवमवस्तुपतितो बोधिसत्त्वो द्रष्टव्यो योऽवस्तुपतितो दानं परित्यजति।

अपि तु खलु पुनः सुभूते ये कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा इमं धर्मपर्यायमुद्ग्रहीयन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ज्ञातास्ते सुभूते तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते तथागतेन। सर्वे ते सुभूते सत्त्वा अप्रमेयमसंख्येयं पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति प्रतिग्रहीष्यन्ति।

[१५]

यश्च खलु पुनः सुभूते स्त्री वा पुरुषो वा पूर्वाह्णकालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, एवं मध्याह्नकालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत् , सायाह्नकालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत् , अनेन पर्यायेण बहूनि कल्पकोटिनियुतशतसहस्राण्यात्मभावान् परित्यजेत्, यश्चेमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न प्रतिक्षिपेत् , अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयसंख्येयम्, कः पुनर्वादो यो लिखित्वा उद्गृहणीयाद्धारयेद्वाचयेत्पर्यवाप्नुयात्, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयेत्।

अपि तु खलु सुभूते अचिन्त्योऽतुल्योऽयं धर्मपर्यायः। अयं च सुभूते धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितोऽग्रयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय, श्रेष्ठयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय। ये इमं धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ज्ञातास्ते सुभूते तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते तथागतेन। सर्वे ते सुभूते सत्त्वा अप्रमेयेण पुण्यस्कन्धेन समन्वागता भविष्यन्ति।

---

१. तु० दीघनिकाय, जिल्द ३, पृ० १०४। देखिये नीचे अनुवाद की पादटिप्पणियाँ।

अचिन्त्येनातुल्येनामाप्येनापरिमाणेन पुण्यस्कन्धेन समन्वागता भविष्यन्ति। सर्वे ते सुभूते सत्त्वाः समांशेन बोधिं धारयिष्यन्ति। तत्कस्य हेतोः? न हि शक्यं सुभूते अयं धर्मपर्यायो हीनाधिमुक्तिकैः सत्त्वैः श्रोतुम् , नात्मदृष्टिकैर्न सत्त्वदृष्टिकैर्न जीवदृष्टिकैर्न पुद्‌गलदृष्टिकैः। नाबोधिसत्त्वप्रतिज्ञैः सत्त्वैः शक्यमयं धर्मपर्यायः श्रोतुं वा उद्‌ग्रहीतुं वा धारयितुं वा वाचयितुं वा पर्यवाप्तुं वा। नेदं स्थानं विद्यते।

अपि तु खलु पुनः सुभूते यत्र पृथ्वीप्रदेशे इदं सूत्रं प्रकाशयिष्यते, पूजनीयः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य वन्दनीयः प्रदक्षिणीयश्च स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति, चैत्यभूतः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति।[१]

[१६]

अपि तु ये ते सुभूते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्‌ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, योनिशश्च मनसि करिष्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ते परिभूता भविष्यन्ति, सुपरिभूताश्च भविष्यन्ति। तत्कस्य हेतोः? यानि च तेषां सुभूते सत्वानां पौर्वजन्मिकान्यशुभानि कर्माणि कृतान्यपायसंवर्तनीयानि, दृष्ट एव धर्मे तया पारिभूततया तानि पौर्वजन्मिकान्यशुभानि कर्माणि क्षपयिष्यन्ति, बुद्धबोधि चानुप्राप्स्यन्ति। तत्कस्य हेतोः?[२] अभिजानाम्यहं सुभूते अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य परेण परतरेण चतुरशीतिबुद्धकोटिनियुतशतसहस्राण्यभूवन् ये मयारागिताः, आराग्या न विरागिताः।[३] यच्च मया सुभूते ते बुद्धा भगवन्त आरागिताः, आराग्या न विरागिताः, यच्च पश्चिमे[४] काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्‌ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, अस्य खलु पुनः सुभूते पुण्यस्कन्धस्यान्तिकादसौ पौर्वकः पुण्यस्कन्धः शततमीमपि कलां नोपैति, सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटितमीमपि कोटिशत-

---

१. देखिये ऊपर अध्याय १२।

२. वैद्य संस्करण एवं तिब्बती पाठ में 'तत्कस्य हेतोः ?' पाठ नहीं है।

३. तु० अ० प्र० पृ० १०६; द्र० कान्ज, पृ ४५ पादटिप्पणी।

४. गि० पाण्डुलिपि (चक्रवर्ती सं०) वरिमे।

तमीमपि कोटिशतसहस्रतमीमपि कोटिनियुतशतसहस्रतमीमपि। संख्यामपि कलामपि गणनामपि उपमामपि उपनिषदमपि यावदौपम्यमपि न क्षमते।[1]

स चेत्पुनः सुभूते तेषां कुलपुत्राणां कुलदुहितृणां वा अहं पुण्यस्कन्धं भाषेयम्, यावत्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा तस्मिन् समये पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति, प्रतिग्रहीष्यन्ति, उन्मादं सत्त्वा अनुप्राप्नुयुश्चित्तविक्षेपं वा गच्छेयुः।[2] अपि तु खलु पुनः सुभूते अचिन्त्योऽयं धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितः। अस्य अचिन्त्य एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यः[3]।

[१७]

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्—कथं भगवन् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन स्थातव्यम्, कथं प्रतिपत्तव्यम् , कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ?[4] भगवानाह—इह सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन एवं चित्तमुत्पादयितव्यम्—सर्वे सत्त्वा मया अनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्याः। एवं च सत्त्वान् परिनिर्वाप्य न कश्चित्सत्त्वः परिनिर्वापितो भवति। तत्कस्य हेतोः? सचेत्सुभूते बोधिसत्त्वस्य सत्त्वसंज्ञा प्रवर्तेत; न स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः। तत्कस्य हेतोः ? नास्ति सुभूते स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितो नाम।

तत्किं मन्यसे सुभूते अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यान्तिकादनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः? एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोंचत्— यथाहं भगवन् भगवतो भाषितस्यार्थमजानामि, नास्ति स भगवन् कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकादनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः। एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्— एवमेतत्सुभूते, एवमेतत्।

---

१. तु० अ० प्र०, पृ० ३६ तथा ८०।

२. तु० अंगुत्तर नि०, जिल्द २, पृ० ८४।

३. तु० महावंसो, १७, ५६, ३१, १२५।

४. देखिये ऊपर अध्याय २ व ३।

नास्ति सुभूते स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्ध-स्यान्तिकादनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः। सचेत्पुनः सुभूते कश्चिद्धर्मस्तथा-गतेनाभिसंबुद्धोऽभविष्यत्, न मां दीपंकरस्तथागतो व्याकरिष्यत्—भविष्यसि त्वं माणव अनागतेऽध्वनि शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति। यस्मात्तर्हि सुभूते तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन नास्ति स कश्चिद्धर्मो योऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः तस्मादहं दीपंकरेण तथागतेन व्याकृतः —भविष्यसि त्वं माणव अनागतेऽध्वनि शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। तत्कस्य हेतोः ? तथागत इति सुभूते भूततथताया एतदधिवचनम्।[१] यः कश्चित्सुभूते एवं वदेत्—तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धेति, स वितथं वदेत्। अभ्याचक्षीत मां स सुभूते असतोद्-गृहीतेन।[२] तत्कस्य हेतोः? नास्ति सुभूते स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन अनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिमभिसंबुद्धः। यश्च सुभूते तथागतेन धर्मोऽभिसम्बुद्धो देशितो वा तत्र न सत्यं न मृषा। तस्मात्तथागतो भाषते-सर्वधर्मा बुद्धधर्मा इति। तत्कस्य हेतोः? सर्वधर्मा इति सुभूते अधर्मास्तथागतेन भाषिताः तस्मादुच्यन्ते सर्वधर्मा बुद्धधर्मा इति।

तद्यथापि नाम सुभूते पुरुषो भवेदुपेतकायो महाकायः? आयुष्मान् सुभूतिराह योऽसौ भगवंस्तथागतेन पुरुषो भाषित उपेतकायो महाकाय इति, अकायः स भगवंस्तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते उपेतकायो महाकाय इति।

भगवानाह— एवमेतत्सुभूते यो बोधिसत्त्व एवं वदेत्— अहं सत्त्वान् परिनिर्वापयिष्यामीति, न स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः। तत्कस्य हेतोः? अस्ति सुभूते स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वो नाम? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। नास्ति स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वो नाम। भगवानाह-सत्त्वाः सत्त्वा इति सुभूते असत्त्वास्ते तथागतेन

---

१. निम्नांकित पाठ चक्रवर्ती के संस्करण, कुमारजीव के चीनी अनुवाद, तिब्बती अनुवाद एवं पार्जीटर के संस्करण में नहीं मिलता। जैसा कि डॉ० कॉन्ज ने सुझाया है यह प्रज्ञापारमिता के सिद्धान्त की परम्परानुरूप नहीं है। यह पाठ मैक्सम्यूलर व वैद्य के संस्करणों में इस प्रकार है— 'तथागत इति सुभूते अनुत्पादधर्मताया एतदधिवचनम्। तथागत इति सुभूते धर्मोच्छेद-स्येतदधिवचनम्। तथागत इति सुभूते अत्यन्तानुत्पन्नस्येतदधिवचनम्। तत्कस्य हेतोः? एष सुभूते अनुत्पादो यः परमार्थः।'

२. यह वाक्य तिब्बती पाठ में नहीं है।

भाषिता:, तेनोच्यन्ते सत्त्वा इति। तस्मात्तथागतो भाषते—निरात्मान: सर्वधर्मा नि:सत्त्वा: निर्जीवा[१] निष्पुद्गला: सर्वधर्मा इति।

य: सुभूते बोधिसत्त्व एवं वदेत्— अहं क्षेत्रव्यूहान्निष्पादयिष्यामीति, सोऽपि तथैव वक्तव्य:।[२] तत्कस्य हेतो:? क्षेत्रव्यूहा: क्षेत्रव्यूहा इति सुभूते अव्यूहास्ते तथागतेन भाषिता:। तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहा इति।

य: सुभूते बोधिसत्त्वो निरात्मानो धर्मा निरात्मानो धर्मा इत्यधिमुच्यते स तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वो महासत्त्व[३] इत्याख्यात:।[४]

[१८]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते—संविद्यते तथागतस्य मांसचक्षु:? सुभूतिराह—एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य मांसचक्षु:। भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते संविद्यते तथागतस्य दिव्यं चक्षु: ? सुभूतिराह— एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य दिव्यं चक्षु:। भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते संविद्यते तथागतस्य प्रज्ञाचक्षु:। सुभूतिराह—एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य प्रज्ञाचक्षु:। भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते संविद्यते तथागतस्य धर्मचक्षु:? सुभूतिराह—एवमेतद्भगवन् , संविद्यते तथागतस्य धर्मचक्षु:। भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते संविद्यते तथागतस्य बुद्धचक्षु:? सुभूतिराह—एवमेतद्भगवन् , संविद्यते तथागतस्य बुद्धचक्षु:।

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते यावन्त्यो गंगायां महानद्यां वालुका:, अपि नु ता वालुकास्तथागतेन भाषिता:? सुभूतिराह— एवमेतद्भगवन् , एवमेतत् सुगत। भाषितास्तथागतेन वालुका:। भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते यावत्यो गङ्गायां महानद्यां वालुका:, तावत्य एव गङ्गानद्यो भवेयु:, तासु या वालुका:, तावन्तश्च लोकधातवो भवेयु:, कच्चिद्बहवस्ते लोकधातवो भवेयु:? सुभूतिराह—एवमेतद्भगवन्, एवमेतत्

---

१. मैक्सम्यूलर तथा वैद्य के संस्करणों मे निर्जीवा के पश्चात् निष्पोषा पाठ भी है।

२. मैक्सम्यूलर तथा वैद्य, स वितथं वदेत् , हमारा पाठ जापानी पाण्डुलिपि, गिलगिट पाण्डुलिपि एवं कॉन्ज के अनुरूप है। तिब्बती पाठ के अनुसार भी उपरोक्त जोशी पाठ सही है।

३. तिब्बती पाठ में 'बोधिसत्त्वो बोधिसत्त्व' ऐसा पाठ है।

४. पार्जीटर, वक्तव्य:।

सुगत, बहवस्ते लोकधातवो भवेयुः। भगवानाह— यावन्तः सुभूते तेषु लोकधातुषु सत्त्वाः, तेषामहं नानाभावां चित्तधारां प्रजानामि। तत्कस्य हेतोः? चित्तधारा[१] चित्तधारेति सुभूते अधारैषा तथागतेन भाषिता, तेनोच्यते चित्तधारेति। तत्कस्य हेतोः? अतीतं सुभूते चित्तं नोपलभ्यते। अनागतं चित्तं नोपलभ्यते। प्रत्युत्पन्नं चित्तं नोपलभ्यते।[२]

[१९]

तत्किं मन्यसे सुभूते यः कश्चित्कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् , अपि तु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहु पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात्? सुभूतिराह— बहु भगवन् , बहु सुगत। भगवानाह—एवमेतत् सुभूते, एवमेतत्। बहु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्।[३] तत्कस्य हेतोः? पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति सुभूते अस्कन्धः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते पुण्यस्कन्ध इति।[४] सचेत् सुभूते पुण्यस्कन्धोऽभविष्यत् , न तथागतोऽभाषिष्यत् पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति।

[२०]

तत्किं मन्यसे सुभूते रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः। तत्कस्य हेतोः? रूपकायपरिनिष्पत्तिः रूपकायपरिनिष्पत्तिरिति भगवन् अपरिनिष्पत्तिरेषां तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते रूपकायपरिनिष्पत्तिरिति।[५]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः। तत्कस्य हेतोः? यैषा भगवन् लक्षणसंपत्तथागतेन भाषिता, अलक्षणसंपदेषा तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते लक्षणसंपदिति।

---

१. तिब्बती पाठ में 'चित्तधारा' पाठ एक ही बार है।

२. तु० अ० प्र०, पृ० १३२, चित्तं हि सुभूते तथागतेन न अतीतं उपलब्धं, न अनागतं न प्रत्युत्पन्नं उपलब्धं असत्त्वाच्चित्तस्य।

३. कॉन्ज तथा चक्रवर्ती के संस्करणों में अनुपलब्ध।

४. तिब्बती पाठ में 'तत्कस्य हेतोः ? .... इति।' पर्यन्त पाठ उपलब्ध नहीं है।

५. द्र० अ० प्र०, पृ० २५३-२५४ समाधिराजसूत्र (दरभंगा संस्करणम्) अध्याय २२ : तथागतकायनिर्देशपरिवर्तः।

[२१]

भगवानाह—तत्किं मन्यसे सुभूते अपि नु तथागतस्यैवं भवति—मया धर्मो देशित इति? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। न तथागतस्यैवं भवति—मया धर्मो देशित इति। भगवानाह—यः सुभूते एवं वदेत्—तथागतेन धर्मो देशित इति, स वितथं वदेत्। अभ्याचक्षीत मां स सुभूते असतोद्गृहीतेन। तत्कस्य हेतोः ? धर्मदेशना धर्मदेशनेति सुभूते नास्ति स कश्चिद्धर्मो यो धर्मदेशना नामोपलभ्यते।

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्— अस्ति भगवन् केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, य इमानेवंरूपान् धर्मान् श्रुत्वा अभिश्रद्धास्यन्ति? भगवानाह— न ते सुभूते सत्त्वा नासत्त्वाः। तत्कस्य हेतोः? सत्त्वाः सत्त्वा[1] इति सुभूते[2] असत्वास्तथागतेन भाषिताः। तेनोच्यन्ते सत्त्वा इति।

[२२]

तत्कि मन्यसे सुभूते— अपि नु अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः? आयुष्मान् सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्[3]। नास्ति स भगवन् कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः। भगवानाह—एवमेतत्सुभूते, एवमेतत्। अणुरपि तत्र धर्मो न संविद्यते नोपलभ्यते। तेनोच्यते अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति।

[२३]

अपि तु खलु पुनः सुभूते समः स धर्मो न तत्र किंचिद्विषमम्[4]। तेनोच्यते अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति। निरात्मत्वेन निःसत्वत्वेन निर्जीवत्वेन[5] निष्पुद्गलत्वेन समा सा अनुत्तरा सम्यक्संबोधिः सर्वैः कुशलैर्धर्मैरभिसंबुध्यते। तत्कस्य हेतोः? कुशला धर्माः कुशला धर्मा इति सुभूते अधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिताः। तेनोच्यन्ते कुशला धर्मा इति।

---

१. तिब्बती में 'सत्त्वा' पाठ एक बार है।
२. वैद्य एवं तिब्बती में 'सुभूते सर्वे ते' ऐसा पाठ प्राप्त है।
३. तिब्बती में 'नो हीदं भगवन्' पाठ नहीं है।
४. मैक्सम्यूलर एवं वैद्य, कश्चिद्विषमः, चक्रवर्ती, किंचिद्विषमस्। हमारा पाठ पार्जीटर एवं कॉन्ज के अनुसार है।
५. चक्रवर्ती (गिलगिट) निःसत्त्वत्वेन।

[२४]

यश्च खलुः पुनः सुभूते[1] स्त्री वा पुरुषो[1] वा यावन्तस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ सुमेरवः पर्वतराजानः, तावतो राशीन् सप्तानां रत्नानामभिसंहृत्य[2] तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो[3] दानं दद्यात्, यश्च कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इतः प्रज्ञापारमिताया धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत्, अस्य सुभूते पुण्यस्कन्धस्य असौ पौर्वकः पुण्यस्कन्धः शततमीमपि कलां नोपैति, यावदुपनिषदमपि न क्षमते।

[२५]

तत्किं मन्यसे सुभूते—अपि नु तथागतस्यैवं भवति—मया सत्त्वाः परिमोचिता इति? न खलु पुनः सुभूते एव द्रष्टव्यम्। तत्कस्य हेतोः? नास्ति सुभूते कश्चित्सत्त्वो यस्तथागतेन परिमोचितः। यदि पुनः सुभूते कश्चित्सत्त्वोऽभविष्यद्यस्तथागतेन परिमोचितः स्यात् , स एव तथागतस्यात्मग्राहोऽभविष्यत् सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहोऽभविष्यत्। आत्मग्राह इति सुभूते अग्राह एष तथागतेन भाषितः। स च बालपृथग्जनैरुद्गृहीतः। बालपृथग्जना इति सुभूते अजना एव ते तथागतेन भाषिताः। तेनोच्यन्ते बालपृथग्जना इति।

[२६]

तत्किं मन्यसे सुभूते—लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह—नो हीदं भगवन्। यथाहं भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, न लक्षणसंपदा तथगतो द्रष्टव्यः। भगवानाह—साधु साधु सुभूते, एवमेतत्सुभूते, एवमेतद्यथा वदसि। न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः। तत्कस्य हेतोः? सचेत्पुनः सुभूते लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्योऽभविष्यत्, राजापि चक्रवर्ती तथागतोऽभविष्यत्। तस्मान्न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः। आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्— यथाह भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, न लक्षणसंपदा तथागता द्रष्टव्यः।

१-१. चक्रवर्ती, अनुपलब्ध।

२. चक्रवर्ती, अभिसंहर्त्य, पार्जीटर, अभिसंहरित्वा।

३. चक्रवर्ती, अनुपलब्ध।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमे गाथे अभाषत—

ये मां रूपेण चाद्राक्षुर्ये मां घोषेण चावन्यु:[१]।

मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जना:॥ १॥

धर्मतो बुद्धा[२] द्रष्टव्या[२] धर्मकाया हि नायका:[३]।

धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम्[३]॥ २॥[४]

[२७]

तत्किं मन्यसे सुभूते लक्षणसंपदा तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा? न खलु पुनस्ते सुभूते एवं द्रष्टव्यम्। तत्कस्य हेतो:? न हि सुभूते लक्षणसंपदा तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा स्यात्। न खलु पुनस्ते सुभूते कश्चिदेवं वदेत्—बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितै: कस्यचिद्धर्मस्य विनाश: प्रज्ञप्त उच्छेदो वेति[५]। न खलु पुनस्ते सुभूते एवं द्रष्टव्यम्। तत्कस्य हेतो:? न बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितै: कस्यचिद्धर्मस्य विनाश: प्रज्ञप्तो नोच्छेद:।

---

१. मैक्सम्यूलर एवं वैद्य, चान्वगु:, चक्रवर्ती, पार्जीटर, कॉन्ज, चान्वयु:।

२-२. मैक्सम्यूलर एवं वैद्य, बुद्धो दृष्टव्यो।

३-३. चक्रवर्ती (गिलगिट) में यह पंक्तियां इस प्रकार हैं :

"दृष्टव्यो धर्मतो बुद्धो धर्मकायस्तथागत:।
धर्मतो चास्य विज्ञेया न स शक्यं विजानितुं॥"

४. तु० थेरगाथा, (ना० सं० खुद्दक० जिल्द २) ४६९:

"ये मं रूपेन पामिंसु, ये च घोसेन अन्वगू।
छन्दरागवसूपेता, न मं जानन्ति ते जना॥"

समाधिराजसूत्रम् (दरभंगा संस्करणम् १९६१) २२.२२ :

धर्मकायो महावीरो धर्मेण कायनिर्जितो।
न जातु रूपकायेण शक्यं प्रज्ञापितुं जिनो॥ अ० प्र० पृ० ४८, २५३; कॉन्ज, पृ० ५७।

५. अ०प्र०पृ० ५७: प्रज्ञापारमिता प्रतिवर्णिका: ''''रूपविनाशो रूपअनित्यता इति; पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्र० (नलिनाक्ष दत्त सं०), पृ० १८५ — तत्र रूपं रूपेण शून्यमकूटस्थाविनाशितामुपादाय, पृ० २५२ : अनित्या: सर्वधर्मा न कस्यचिद्विगमेन। ''''अकूटस्था अविनाशिन: सर्वधर्मा:।

[२८]

यश्च खलु पुनः सुभूते कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा गङ्गानदीवालुका समांल्लोकधातून् सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् , यश्च बोधिसत्त्वो निरात्मकेष्वनुत्पत्तिकेषु धर्मेषु क्षान्तिं प्रतिलभेत, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसवेदप्रमेयमसंख्येयम्। न खलु पुनः सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन पुण्यस्कन्धः परिग्रहीतव्यः। आयुष्मान् सुभूतिराह–ननु भगवन् बोधिसत्त्वेन पुण्यस्कन्धः परिग्रहीतव्यः। भगवानाह—परिग्रहीतव्यः सुभूते नोदग्रहीतव्यः[१]। तेनोच्यते परिग्रहीतव्य इति।

[२९]

अपि तु खलु पुनः सुभूते यः कश्चिदेवं वदेत्—तथागतो गच्छति वा आगच्छति वा तिष्ठति वा निषीदति वा, शय्यां वा कल्पयति, न मे सुभूते स भाषितस्यार्थमाजानाति। तत्कस्य हेतोः? तथागत इति सुभूते उच्यते न क्वचिद्गतो न कुतश्चिदागतः[२]। तेनोच्यते तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति।

[३०]

यश्च खलु पुनः सुभूते कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यावन्ति त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजांसि, तावतां लोकधातूनामेवंरूपं मषिं कुर्यात् यावदेवमसंख्येयेन वीर्येण तद्यथापि नाम परमाणुसंचयः[३], तत्किं मन्यसे सुभूते—अपि नु बहुः स परमाणुसंचयो भवेत्? सुभूतिराह—एवमेतद् भगवन् , एवमेतत्सुगत। बहुः स परमाणुसंचयो भवेत्। तत्कस्य हेतोः? सचेद् भगवन् बहुः परमाणुसंचयोऽभविष्यत् , न भगवानवक्ष्यत्—परमाणुसंचय इति। तत्कस्य हेतोः? योऽसौ भगवन् परमाणुसंचयस्तथागतेन भाषितः, असंचयः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते परमाणुसंचय इति। यश्च तथागतेन[४] भाषितस्त्रि-

१. मैक्सम्यूलर व वैद्य, नो ग्रहीतव्यः।

२. द्र० अ० प्र०, पृ० २५३-२५४।

३. तु० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम् (दरभंगा संस्करणम् १९६०), सप्तमोध्यायः।

४. चक्रवर्ती (गिलगिट), तथागतो भाषति।

साहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरिति, अधातुः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते त्रिसाहस्र-महासाहस्रो लोकधातुरिति। तत्कस्य हेतोः? सचेद्भगवन् लोकधातुरभविष्यत्, स एव पिण्डग्राहोऽभविष्यत्। यश्चैव पिण्डग्राहस्तथागतेन भाषितः, अग्राहः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते पिण्डग्राह इति। भगवानाह—पिण्डग्राहश्चैव सुभूते अव्यवहारोऽन-भिलाप्यः। न स धर्मो नाधर्मः स च बालपृथग्जनैरुद्गृहीतः।

[३१]

तत्कस्य हेतोः? यो हि कश्चित्सुभूते[१] एवं वदेत्—आत्मदृष्टिस्तथागतेन भाषिता, सत्त्वदृष्टिर्जीवदृष्टिः पुद्गलदृष्टिस्तथागतेन भाषिता, अपि नु स सुभूते सम्यग्वदमानो वदेत्? सुभूतिराह— नो हीदं भगवन्, नो हीदं सुगत, न सम्यग्वदमानो वदेत्। तत्कस्य हेतोः? या सा भगवन् आत्मदृष्टिस्तथागतेन भाषिता, अदृष्टिः सा तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते[२] आत्मदृष्टिरिति।

भगवानाह—एवं हि सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन सर्वधर्मा ज्ञातव्या द्रष्टव्या अधिमोक्तव्याः। तथा च ज्ञातव्या द्रष्टव्या अधिमोक्तव्याः, यथा न धर्मसंज्ञा प्रत्युपस्थामहे[३]। तत्कस्य हेतोः? धर्मसंज्ञा धर्मसंज्ञेति सुभूते असंज्ञैषा तथागतेन भाषिता। तेनोच्यते धर्मसंज्ञेति।

[३२]

यश्च खलु पुनः सुभूते बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽप्रमेयानसंख्येयांल्लोकधातून् ससरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इतः प्रज्ञापारमिताया धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य धारयेद्देशयेद्वाचयेत् पर्यवाप्नुयात्, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं

---

१. कॉन्ज, सुभूत (सम्भवतः मुद्रण-त्रुटि)।

२. कान्ज, तेनोच्यत; पार्जीटर, तदुच्यते।

३. पार्जीटर व कॉन्ज का पाठ। चक्रवर्ती : द्र० मा० बु० टे०, पृ० १०२। मैक्सम्यूलर व वैद्य : यथा न धर्मसंज्ञायामपि प्रत्युपतिष्ठे न नाधर्मसंज्ञायाम्। किन्तु तिब्बती पाठ में 'तथा च अधिमोक्तव्याः, यथा न धर्मसंज्ञा प्रत्युपस्थामहे' ऐसा पाठ है।

बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्। कथं च संप्रकाशयेत्[१] ? यथा न प्रकाशयेत्। तेनोच्यते संप्रकाशयेत् इति।

तारका तिमिरं दीपो मायावश्याय बुद्बुदम् ।
स्वप्नं च[२] विद्युदभ्रं[३] च एवं द्रष्टव्यसंस्कृतम् ॥[४]

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनाः स्थविरसुभूतिस्ते च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकास्ते च बोधिसत्त्वाः सदेवमानुषासुरगन्धर्वश्च लोको भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति।

॥ आर्यवज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्रम् समाप्तम्[५] ॥

■

---

१. यह वाक्य (द्र० डॉ० कॉन्ज, पृ० ६१-६२ पाद टिप्पणी २) अनेक प्राचीन संस्करणों में उपलब्ध है, यथा गिलगिट पाण्डुलिपि, जापानी पाण्डुलिपि, तिब्बती अनुवाद, मध्यएशिया से प्राप्त पार्जीटर के संस्करण, कुमारजीव के चीनी अनुवाद, तथा स्टेन कौनौ के अनुसार खोतानी भाषानुवाद में। परन्तु मैक्सम्यूलर एवं वैद्य के संस्करणों में यह नहीं छपा है। इन अन्तिम दो संस्करणों में केवल 'तद्यथाकाशे' के पश्चात् गाथा छपी है।

२. चक्रवर्ती व कॉन्ज के संस्करणों एवं जापानी पाण्डुलिपि में 'सुपिनं'।

३. तु० शिक्षासमुच्चय (बेन्डाल सं० पृ० २३४; वैद्य सं० पृ० १२६) में रत्नचूड सूत्र से उद्धृत यह वाक्य : चित्तं हि काश्यप विद्युत्सदृशं क्षणभङ्गानवस्थितम्।

४. जापानी पाण्डुलिपि में यह अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है :

पश्येत् एवं हि संस्कृत इति।

५. मैक्सम्यूलर एवं वैद्य के संस्करणों में : आर्यवज्रच्छेदिका भगवती प्रज्ञापारमिता समाप्ता। कॉन्ज (पृ० ६२, पाद टिप्पणी ३) के अनुसार तिब्बती रूपान्तर में : नमो भगवते। प्रज्ञापारमितायै। 'ओं न तद् ति त। इ लि शि। इ लि शि।…' आदि धारणी दी गई है और अन्त में सुविदित श्लोक 'य धर्माः हेतुप्रभवा…' आदि लिखा है। हमारे संस्करण का अन्तिम वाक्य जापानी पाण्डुलिपि के अनुसार है। गिलगिट पाण्डुलिपि में 'वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिता समाप्ता' है।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र
हिन्दी अनुवाद

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र

सर्वज्ञ[1] को नमस्कार

[१]

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती[2] के जेतवन स्थित अनाथपिण्डद के आराम[3] में १२५० भिक्षुओं की महती मण्डली और बहुत से बोधिसत्त्वों-महासत्त्वों के साथ विहार करते थे। (एक दिन) पूर्वाह्णकाल के समय भगवान् निवृत्त होकर, चीवर और पात्र लेकर महानगरी श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए प्रवृष्ट हुए। महानगरी श्रावस्ती में भिक्षाटन करके भोजन किया और लौटकर पात्र-चीवर रख दिया। पैर धोकर अपने आसन पर पद्मासन में शरीर को ऋजु करके बैठ गये और स्मृति-स्थापना में लगे। उस समय बहुत से भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, निकट आकर अपने मस्तकों को उनके चरणों में झुकाकर उन्हें प्रणाम कर, तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर, एक ओर बैठ गये।

---

१. बुद्ध की सर्वज्ञता पर द्र० तत्त्वसंग्रह तथा तत्त्वसंग्रह-पंजिका, गायकवाड़ आरियन्टल सेरीज—३०-३१, बड़ौदा १९२६, अध्याय २६; लालमणि जोशी, बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय ८, परिच्छेद ५; एस० मुकर्जी, ''दि आम्निश्यिन्ट एज दि फाउण्डर आफ ए रिलीजन'', नवनालन्दामहाविहार रिसर्च, जिल्द २, १९६०, पृ० १-४४; तथा ई०ए० सोलोमन, ''दि प्राब्लम ऑफ सर्वज्ञत्त्व'', ब्रह्मविद्या, वर्ष २६, १९६२, पृ० ३६।

२. आधुनिक सहेठ-सहेठ, गोंडा व बहराइच जिलों की सीमा पर स्थित। यह प्राचीन कोशल की राजधानी थी, बुद्ध ने यहाँ २५ वर्ष वास किया और सर्वाधिक उपदेश यहीं दिये थे। श्रावस्ती में सुविख्यात धनी बौद्ध दानपति अनाथपिण्डद ने भगवान् तथा उनके शिष्यों के लिए प्रशस्त विहार बनवाये थे।

३. इस अनुवाद में तथा इस सम्पूर्ण पुस्तक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या के लिए देखिये पुस्तक के अन्त में शब्द-कोश।

[२]

उसी समय आयुष्मान् सुभूति[१] उस सभा में आये और एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान् सुभूति ने अपने स्थान के उठकर, उत्तरीय को कन्धे पर सम्भाल कर, अपने घुटने को पृथ्वी पर टेक कर, अपने अंजलिबद्ध हाथों को भगवान् की ओर करके उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर सुभूति ने कहा—''आश्चर्य है भगवन् , परमाश्चर्य है सुगत, जो यह बोधिसत्त्व महासत्त्व तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के परमानुग्रह से अनुगृहीत हुए हैं। यह आश्चर्यमय है भगवन् , कि बोधिसत्त्व महासत्त्व तथागत अर्हत् सम्यक्संम्बुद्ध के परमपरीन्दन से परीन्दित हुए हैं। हे भगवन्! किस प्रकार कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र, जो बोधिसत्त्वयान में आरूढ़ हैं, स्थिर रहते हैं, अग्रसर होते हैं, तथा अपने चित्त को कार्य (बोधिचर्या) में लगाते हैं? सुभूति के ऐसा कहने पर भगवान् ने कहा—''साधु-साधु सुभूति, ऐसा ही है सुभूति, ऐसा ही है जैसा कि तुम कहते हो, बोधिसत्त्व महासत्त्व तथागत के परमानुग्रह से अनुगृहीत हुए हैं, और वे परीन्दित भी हुए हैं तथागत के परमपरीन्दन से। सुभूति! सुनो, भली प्रकार ध्यानपूर्वक श्रवण करो; मैं तुम्हें बताऊंगा कि किस प्रकार बोधिसत्त्वयान में आरूढ़ कोई (व्यक्ति) स्थिर रहता है, अग्रसर होता है और चित्त का आयोग करता है''। ''अच्छा भगवन्'', आयुष्मान् सुभूति ने प्रत्युत्तर में कहा।

[३]

भगवान् बोले : ''सुभूति, जो बोधिसत्त्वयान का पथिक है उसे इस प्रकार का चित्तोत्पाद करना चाहिए : ''सत्त्व-धातु (सत्त्व-लोक) में जितने भी सत्त्व हैं और सत्त्व शब्द से ज्ञात होते हैं—यथा, अण्डज, जरायुज, स्वेदज, औपपादुक; रूपयुक्त

---

१. महायान सूत्रों में सुभूति अति प्रसिद्ध प्रश्नकर्ता हैं। द्र० अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता (अ० प्र०) बौ० सं० प्र०—४, पृ० २; सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र बौ० सं० ग्र०—६, अध्याय १ व ४। थेरगाथा (खुद्दकनिकाय पालि जि० २) में प्रथम गाथा अर्हत् सुभूति की है। वह अनाथपिण्डद के भतीजे कहे गये हैं। नेपाली बौद्ध परम्परा में सुभूति श्रावस्ती के एक ब्राह्मण के पुत्र कहे गये हैं, (राजेन्द्रलाल मित्र, संस्कृत बुद्धिस्ट लिटरेचर आफ नेपाल, पृ० २९६); महावस्तु (जे० जे० जोन्स कृत आंग्लानुवाद, जिल्द १, पृ० ३०१ तथा जि० २, पृ० १६) के अनुसार सुभूति देवदह के एक शाक्य-राज (गणराज्य के सदस्य) थे। श्वान-च्वाङ् (वाटर्स कृत आंग्लानुवाद, जिल्द १, पृ० ३३४) के अनुसार सुभूति एक अर्हत् थे। सम्भवत: एक से अधिक व्यक्ति का नाम सुभूति था।

अथवा रूपहीन, संज्ञावान अथवा संज्ञाहीन अथवा न संज्ञावान न संज्ञाहीन—जो कोई भी कल्पनीय सत्त्वलोक कल्पित हैं: इन सभी प्राणियों को मुझे निर्वाण तक ले जाना है, उस निर्वाण धातु की प्राप्ति करानी है जिसमें कुछ भी उपधि शेष नहीं रहती। अर्थात् सभी प्राणियों को निरूपधिशेष निर्वाण की उपलब्धि करानी है। और यद्यपि असंख्य प्राणी इस प्रकार निर्वाण तक पहुँचाये गये हैं कोई एक भी प्राणी निर्वाण तक नहीं पहुंचाया गया है''। ऐसा किस कारण? (वास्तव में) सुभूति, यदि किसी बोधिसत्त्व को सत्त्व-संज्ञा होती है तो वह बोधिसत्त्व नहीं कहा जा सकता[1]। ऐसा किस कारण? सुभूति, उसे बोधिसत्त्व नहीं कहना चाहिए जिसे सत्त्व-संज्ञा होती है अथवा जिसे जीव-संज्ञा या पुद्गल-संज्ञा होती है।

[४]

पुनः सुभूति, किसी वस्तु में प्रतिष्ठित बोधिसत्त्व द्वारा दान नहीं दिया जाना चाहिए, जो किसी भी प्रकार से किसी में प्रतिष्ठित हो, उसके द्वारा दान नहीं दिया जाना

---

१. प्रज्ञापारमिता सूत्रों में इसी प्रकार की प्रज्ञापूर्ण परिभाषायें देखने में आयेंगी। प्रज्ञा(पालि पञ्ञा) के बारे में मज्झिमनिकाय, ना० सं० जिल्द १, पृ० ३६० में कहा है: (सारिपुत्तो) ''पजानाति पजानाति ति खो, आवुसो, स तस्मा पञ्ञवाति वुच्चति''। थेरगाथा में 'पञ्ञापारमित्तं पत्तो महाबुद्धि महामति' वाक्य शारिपुत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, थेरगाथा (खुद्दक निकाय जिल्द २) ना० सं०, पृ० ३६८। बोधिसत्त्वयान अथवा महायान पर द्र० हरदयाल, बोधिसत्त्व डाक्ट्रिन, वाली पुसें का 'बोधिसत्त्व' नामक लेख, ई०, रि० ई० जिल्द २; लालमणि जोशी 'महायान बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास', सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ, वाराणसी १९६५। बोधिसत्त्व महायान का आदर्श पुरुष और सन्त है। वह ऐसा व्यक्ति है जिसने प्राणियों के हित के लिए बोधिलाभ करने का निर्णय कर लिया है। पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्र०, पृ० १७९ में कहा गया है :''एवम् बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महासन्नाहसन्नद्धस्तेनोच्यते बोधिसत्त्वो महासत्त्व इति''। शास्त्रकार प्रज्ञाकरमति ने लिखा है प्रज्ञाकरमति, पृ० २००—''तत्र बोधिः सत्त्वमभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्त्व''। अन्य परिभाषाओं के लिये देखिये अ० प्र० अनु० पृ० ६-७; महायान सूत्रालंकार, १९७६; महायान का अनुयायी बोधिसत्त्वयान का पथिक कहलाता है। वह दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एवं प्रज्ञा आदि पारमिताओं का अभ्यास करता है। शास्त्रकार ने उद्धृत किया है:''ये सद् पारमितासु चरन्ती ते प्रतिपत्र इहो महयाने''। शिक्षासमुच्चय (बेन्डाल का संस्करण, पृ० ४) में रत्नोल्काधारणी से। हमारा सुझाव है कि इस पंक्ति में 'सद्' के स्थान पर 'षट्' पढ़ना चाहिए।

चाहिये और न उसके ही द्वारा जो शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुओं अथवा धर्मों में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार, सुभूति, बोधिसत्त्व महासत्त्व को उसकी भांति दान करना चाहिए जो निमित्त-संज्ञा में भी अप्रतिष्ठित है। ऐसा किस कारण? वह अप्रतिष्ठित बोधिसत्त्व जो दान करता है, उसके पुण्य का ढेर, हे सुभूति, मापना सरल नहीं है। तुम क्या समझते हो, सुभूति, क्या पूर्व दिशा में आकाश का विस्तार मापना सरल है?

सुभूति : नहीं भगवन्।

भगवान् : ऐसे ही, क्या आकाश का दक्षिण में, पश्चिम में, अथवा उत्तर में, नीचे को, ऊपर को, अथवा मध्य में या सभी ओर दशो दिशाओं में, विस्तार मापना सरल है?

सुभूति : नहीं भगवन्।

भगवान् : इसी प्रकार, सुभूति, अप्रतिष्ठित बोधिसत्त्व जो दान करता है उसके पुण्य-समूह का माप करना कठिन है। अतएव, सुभूति बोधिसत्त्वयान के पथिक को निमित्त संज्ञा में भी अप्रतिष्ठित रह कर दान करना चाहिए।

[५]

क्या तुम यह समझते हो, सुभूति, कि तथागत अपनी लक्षणसम्पदा[१] के द्वारा दिखाई देते हैं?

सुभूति : नहीं, भगवन् अपनी लक्षणसम्पदा के द्वारा तथागत नहीं दिखाई देते हैं। ऐसा किस कारण? जिसे तथागत ने लक्षणसम्पदा कहा है वह वास्तव में अलक्षण-सम्पदा ही है।

भगवान् : जहाँ कही भी, सुभूति, लक्षणसम्पदा है वहाँ मृषा है; जहाँ कहीं भी अलक्षणसम्पदा है वहां मृषा नहीं है। अतः तथागत अलक्षणालक्षण से द्रष्टव्य है; अर्थात् अलक्षणरूप लक्षणों से तथागत दिखाई देते हैं।

---

१. लक्षणसम्पदा से तात्पर्य आध्यात्मिक नैतिक सम्पत्ति से भी है, यथा शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति। परन्तु यहां पर लक्षणसम्पदा से अर्थ महापुरुष के ३२ लक्षणों से है। देखिए लालमणि जोशी, 'सद्धर्म मुक्तावली', धर्मदूत, भाग-२९, १९६५, पृ० ८७। इस प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि बुद्ध का प्रत्येक लक्षण एक सौ कुशल कर्मों या पुण्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है (अभिधर्मकोश, ४.११०); द्र० प्रज्ञाकरमति, पृ० १९९; एफ० एडजर्टन, बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत डिक्शनरी (१९५३), 'लक्षण'।

[६]

सुभूति : भगवन्, क्या भविष्य काल में, अन्तिम युग में, पश्चात् समय में, अन्तिम ५०० वर्षों में, सद्धर्म के लोप के समय में, कोई ऐसे प्राणी होंगे जो इस सूत्र (=वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता) की देशना किये जाने पर यथावत् ज्ञान (भूत-संज्ञा) प्राप्त करेंगे ?

भगवान् : ऐसा मत कहो, सुभूति। हाँ, भविष्यकाल में, अन्तिम युग में, पश्चात् समय में, अन्तिम ५०० वर्षों में, सद्धर्म के प्रलोप के समय में, ऐसे प्राणी होंगे जो इस सूत्र की देशना किये जाने पर भूत-संज्ञा प्राप्त करेंगे। और पुनः भी सुभूति उस समय बोधिसत्त्व होंगे, महासत्त्व होंगे, भविष्य काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम युग में, पश्चात् समय में, अन्तिम ५०० वर्षों में, सद्धर्म के प्रलोप के समय, जो गुणवान, शीलवान, प्रज्ञावान होंगे और जो सूत्र के इन पदों की देशना होने पर सत्यज्ञान (भूतसंज्ञा) प्राप्त करेंगे। यही नहीं सुभूति, ये बोधिसत्त्व महासत्त्व वैसे नहीं होंगे जैसे केवल एक बुद्ध की उपासना करने वाले हैं, और न वैसे होंगे जैसे कि केवल एक बुद्ध के शिष्यत्त्व में अपने कुशलमूलों को रोपने वाले हैं। अपितु सुभूति, वे बोधिसत्व और वे महासत्त्व, जब इस सूत्र ये पद कहे जायेंगे तो एक श्रद्धापूर्ण विचार अथवा चित्तप्रसाद प्राप्त करेंगे, और ऐसे होंगे जो अनेक शतसहस्त्र बुद्धों की उपासना करेंगे और अनेक शतसहस्त्र बुद्धों के नेतृत्व में कुशलमूलावरोपण करेंगे।

सुभूति, तथागत बुद्धज्ञान द्वारा उन्हें जानते हैं, तथागत ने बुद्धचक्षु द्वारा उन्हें देखा है, तथागत उन्हें भली प्रकार जानते हैं, और वे सभी, सुभूति, अप्रमेय और असंख्य पुण्यस्कन्धों को जन्म देंगे और प्राप्त करेंगे, ऐसा किस कारण? क्योंकि इन बोधिसत्त्वों महासत्त्वों में आत्मसंज्ञा नहीं होती न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा और न पुद्‌गलसंज्ञा ही होती हैं। अर्थात् महाप्राण बोधिसत्त्व (शून्यताबोध के कारण, प्रज्ञापारमिता ज्ञान के कारण) आत्मा, सत्त्व, जीव, पुद्‌गल आदि की सत्ता नहीं मानता।[१] इन बोधिसत्त्वों

---

१. द्र० बोधिचर्यावतार, अध्याय ९; तत्त्वसंग्रह, अध्याय ७-८; यद्यपि वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता में 'शून्यता' शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है, परन्तु शून्यता ही इसका मौलिक और केन्द्रीय उपदेश है। आत्मा, जीव सत्त्व, पुद्‌गल आदि सभी धर्मों को ''सर्व धर्माः शून्याः'' कहा जाता है। द्र० नागार्जुन कृत द्वादशमुखशास्त्र, विश्वभारती एनल्स भाग ६ में प्रकाशित, १९५४।

महासत्त्वों में, सुभूति, इसी प्रकार न धर्मसंज्ञा होती है न अधर्मसंज्ञा ही और न उनमें संज्ञा होती है न असंज्ञा ही। ऐसा किस कारण? यदि, सुभूति, इन बोधिसत्त्वों महासत्त्वों में धर्मसंज्ञा हो तो वह आत्मग्राह, सत्त्वग्राह, जीवग्राह और पुद्गलग्राह ही होगा। ऐसा किस कारण? क्योंकि किसी बोधिसत्त्व महासत्त्व को, सुभूति, न धर्म पकड़ना है और न अधर्म ही पकड़ना है। इसीलिए तथागत ने निम्नलिखित उपदेश को सन्धाभाषा[१] में प्रकाशित किया है : ''उन सभी को धर्मों और अधर्मों का परित्याग करना चाहिए जो (उस) उपदेश को जानते हैं (जिसमें) धर्म को बेड़े के समान कहा गया है।''[२]

[७]

भगवान् ने पुनः कहा : तुम क्या सोचते हो, सुभूति, क्या कोई ऐसा धर्म है जिसे तथागत ने अनुत्तर सम्यक्संम्बोधि की तरह जाना है, अथवा कोई ऐसा धर्म है जिसे तथागत ने उपदेशित किया है?

आयुष्मान् सुभूति ने भगवान् से कहा : नहीं, जैसा कि मैं भगवान् के उपदेश को जानता हूं, कोई ऐसा धर्म नहीं जिसे तथागत ने अनुत्तर सम्यक्संम्बोधि की तरह जाना है, और न कोई ऐसा धर्म है जिसे तथागत ने उपदेशित किया है। ऐसा किस कारण? यह धर्म जो कि तथागत ने अनुत्तर सम्यक्संम्बोधि की तरह जाना है और उपदेशित किया है उसे पकड़ना नहीं है, उसकी चर्चा भी नहीं करनी है (अग्राह्यः सोऽनभिलप्यः)[३]; वह न धर्म है और न अधर्म है। ऐसा किस कारण? क्योंकि आर्यजन (अर्हत्, बुद्ध, सम्भवतः बोधिसत्त्व भी) असंस्कृत से प्रकाशित व प्रभावित होने से प्रपञ्चोपशम होते हैं।[४]

---

१. सन्धाभाषा=गूढ़भाषा, जिसका व्यक्त अर्थ गुह्य अर्थ से भिन्न हो।

२. मज्झिमनिकाय के 'अलगद्दूपमसुत्त' की ओर संकेत है। द्र० राहुल सांस्कृत्यायन तथा भिक्षुधर्मरक्षित कृत हिन्दी अनुवाद, सारनाथ से बुद्धाब्द २५०८ में प्रकाशित, पृ० ८७ : ''भिक्षुओं ! मैं बेड़े (=कुल्ल) की भांति निस्तरण (=निस्तार,=पार जाने) के लिए तुम्हें धर्म को उपदेशता हूँ, पकड़ रखने के लिये नहीं.......।''

३. द्र० महावग्ग (ना० सं०), पृ० ६-९; प्रज्ञाकरमति, पृ० १७५-१७७।

४. द्र० मध्यमकशास्त्र १.१२, उदान (ना० सं०) ८.१.२ (खुद्दक निकाय, जिल्द १), पृ० ११२। प्रस्तुत पुस्तक में भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित नालन्दा से प्रकाशित पालि त्रिपिटक प्रयुक्त हुआ है।

[८]

भगवान् बोले : तुम क्या मानते हो, सुभूति, यदि कोई कुलपुत्र (बौद्ध भिक्षु अथवा उपासक अथवा बोधिसत्त्व) अथवा कुलपुत्री (बोद्ध भिक्षुणी अथवा उपासिका अथवा स्त्री बोधिसत्त्व)[१] तीन सहस्र महासाहस्र (अगणित पौराणिक संख्या) लोकधातुओं को सात प्रकार के रत्नों[२] से परिपूर्ण करके उन्हें तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध को दान कर दे तो क्या वह कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री इसके बल पर बहुत बड़ी पुण्यराशि प्राप्त कर सकेगी?

सुभूति ने कहा : बहुत, भगवन् बहुत बड़ी पुण्यराशि सुगत, उस कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री को (उसके दान के बल पर) प्राप्त होगी। क्योंकि जिसे तथागत ने पुण्यस्कन्ध (पुण्यराशि) कहा है उसे तथागत ने अस्कन्ध कहा है। इसीलिये तथागत्त उपदेशते हैं : 'पुण्यस्कन्ध, पुण्यस्कन्ध'।

भगवान् : पुन: सुभूति, यदि एक कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री असंख्य लोकधातुओं को सप्तरत्नों से परिपूर्ण करके उन्हें तथागतों अर्हतों तथा सम्यक्संम्बुद्धों को दान कर दे, और इसके विपरीत, अन्य कोई व्यक्ति इस धर्मपर्याय (इस सूत्र) से चार पंक्तियों का एक पाद (एक गाथा) श्रोताओं को सुनाये और विस्तारपूर्वक प्रकाशित कर दे तो वह (ऐसा करने वाला अन्य कोई व्यक्ति) इस कार्य के बल पर बहुतर महत्तर असंख्य और अप्रमेय पुण्यस्कन्ध प्राप्त करेगा। ऐसा किस कारण? क्योंकि इसी (धर्मपर्याय, सूत्र) से तथागतों अर्हतों तथा सम्यक्संम्बुद्धो की अनुत्तर सम्यक्संम्बोधि प्रस्फुटित हुई है, इसी से बुद्ध और भगवन्त हुए हैं।[३] क्योंकि, 'बुद्ध-धर्म' बुद्ध-धर्म, सुभूति, जिन्हें तथागत ने उपदेशा है वे अबुद्ध-धर्म ही है। इसीलिये वे बुद्ध धर्म कहलाते हैं।

---

१. कुल से अर्थ सौगत कुटुम्ब, शाक्य परिवार से है; वे सभी इस परिवार के सदस्य हैं जो बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण गये हैं। कुलपुत्र व कुलपुत्री के अन्तर्गत बोधिसत्त्व, भिक्षु, श्रामणेर, उपासक तथा भिक्षुणी, श्रामणेरी और उपासिका सभी सम्मिलित हैं। क्या स्त्रियां भी बोधिसत्त्व हो सकती हैं? द्र० लालमणि जोशी, बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय ५। बोधिचर्यावतर अ० १०।

२. सात रत्न हैं : चक्ररत्न, अश्व०, हस्ति०, मणि०, स्त्री०, खंग०, परिणायक०।

३. नागार्जुनकृत प्रज्ञापारमितास्तुति में तथा कम्बलाचार्यकृत नवश्लोकी में प्रज्ञापारमिता को बुद्धों की जननी कहा गया है।

[९]

तुम क्या मानते हो, सुभूति, कि श्रोतापन्न सोचता है कि "मैंने श्रोतापत्तिफल अधिगत कर लिया है"?

सुभूति : नहीं भगवन्। श्रोतापन्न (व्यक्ति) यह नहीं सोचता है कि "मैंने श्रोतापत्ति फल अधिगत कर लिया है।" क्योंकि, हे भगवन्, उसने कोई धर्म प्राप्त नहीं किया है। इसी कारण वह श्रोतापन्न कहलाता है। न रूप प्राप्त किया है, न शब्द, न गन्ध, न रस, न स्प्रष्टव्य और न कोई धर्म ही प्राप्त किया है। इसी कारण वह श्रोतापन्न कहलाता है। हे भगवन्, यदि श्रोतापन्न को यह हो कि "मैंने श्रोतापत्ति-फल प्राप्त कर लिया है", तब तो उसमें आत्मग्राह (आत्म-भावना, अहंभाव) होगा, सत्त्वग्राह, जीवग्राह, और पुद्‌गलग्राह हो जायगा।

भगवान् : सुभूति, क्या तुम यह समझते हो कि सकृदागामी[१] को यह विचार होता है कि "मैंने सकृदागामी होने का फल प्राप्त कर लिया है?"

सुभूति : नहीं भगवन्। "मैंने सकृदागामी होने का फल प्राप्त कर लिया है," ऐसा विचार सकृदागामी को नहीं होता। क्योंकि कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसने सकृदागामित्व प्राप्त किया हो। इसीलिये वह सकृदागामी कहा जाता है।

भगवान् : सुभूति, क्या तुम यह समझते हो कि अनागामी को यह विचार होता है कि "मैंने अनागामी का फल प्राप्त कर लिया है?"

सुभूति : नहीं भगवन्। "मैंने अनागामी का फल प्राप्त कर लिया है", ऐसा विचार अनागामी को नहीं होता। क्योंकि कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसने अनागामित्व प्राप्त किया हो, इसी कारण वह अनागामी कहलाता है।

भगवान् : सुभूति, क्या तुम यह समझते हो कि अर्हत् यह सोचता है कि "मैने अर्हत्पद प्राप्त कर लिया है?"

---

१. श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा उन अन्य पारिभाषिक शब्दों, जो इस अनुवाद में प्रयुक्त हुए हैं या मूल सूत्र में आये हैं, के लिये ग्रन्थ के अन्त में 'पारिभाषिक शब्दकोश' देखिये।

सुभूति : नहीं भगवन् , अर्हत् यह नहीं समझता है कि "मैंने अर्हत्-पद प्राप्तकर लिया है।" क्योंकि ऐसा कोई धर्म नहीं है जो अर्हत् कहा जा सकता है; इसी कारण वह अर्हत् कहा जाता है। हे भगवन्, यदि कोई अर्हत् यह सोचने लगे कि "मैंने अर्हत्-पद पा लिया है" तब तो उसे आत्मग्राह हो जायगा, सत्त्वग्राह जीवग्राह और पुद्गलग्राह हो जायगा। क्योंकि, हे भगवन्, तथागत, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने मुझे उन व्यक्तियों में अग्रणी निर्दिष्ट किया है जो अरणाविहारी (शान्तिविहार करने वाले) हैं। भगवन् मैं अर्हत् वीतराग हूँ। किन्तु फिर भी मुझमें यह विचार नहीं आता कि मैं अर्हत् वीतराग हूँ।" भगवन्, मेरे में यदि ऐसी धारणा होती कि "मैंने अर्हत्-पद प्राप्त कर लिया है" तो तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध मुझे "अरणाविहारियों में अग्रगण्य, कुलपुत्र सुभूति, कहीं विहार नहीं करता, इसीलिये वह अरणाविहारी है, अरणाविहारी कहलाता है", नहीं घोषित करते।

[१०]

भगवान् : क्या तुम समझते हो, सुभूति, कि कोई ऐसा धर्म है जिसे तथागत ने तथागत अर्हत् सम्यक्संम्बुद्ध दीपंकर की उपस्थिति में ग्रहण कर लिया था?

सुभूति : नहीं भगवन्। ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे तथागत ने, जब वह तथागत अर्हत् सम्यक्संम्बुद्ध दीपंकर के समक्ष थे, ग्रहण किया हो।

भगवान् : यदि कोई बोधिसत्त्व इस प्रकार कहे : "मैं बुद्धक्षेत्रव्यूह बनाऊँगा", तो वह मिथ्या भाषण करेगा। क्योंकि, "बुद्ध-क्षेत्र-व्यूह", बुद्ध-क्षेत्र-व्यूह सुभूति, तथागत द्वारा अक्षेत्रव्यूह कहे गये हैं; इसी कारण वह 'बुद्ध-क्षेत्र-व्यूह' कहलाते हैं। अतएव, सुभूति, बोधिसत्त्व महासत्त्व को ऐसा अप्रतिष्ठित (राग रहित) चित्त विकसित करना चाहिये जो कहीं भी प्रतिष्ठित (आसक्त, लिप्त) न हो। उसे ऐसा चित्तोत्पाद करना चाहिये जो न रूप में आश्रित हो, न शब्द में, न गन्ध में, न रस में, न स्पर्शनीय में और न मन द्वारा ग्राह्य वस्तुओं (धर्मों) में ही आश्रित हो। कल्पना करो, सुभूति, एक ऐसे मनुष्य की जिसकी देह हो, एक विशाल महाकाय हो, ताकि उसका आत्मभाव पर्वतराज सुमेरू की भांति का हो। तुम क्या समझते हो, सुभूति, क्या उस मनुष्य का यह महान् आत्मभाव होगा?

सुभूति : हाँ, महान्, भगवन्, महान्, सुगत, उसका आत्मभाव होगा। क्योंकि 'आत्मभाव, आत्मभाव' (आत्म-सत्ता) को तथागत ने अनात्मभाव (आत्मा का अभाव) बताया है। क्योंकि, भगवन्, वह भाव अभाव (असत्) ही है, इसीलिये वह आत्मभाव कहलाता है[१]।

[११]

भगवान् : क्या समझते हो तुम, सुभूति, यदि (संसार में) उतनी ही गंगायें हों जितनी संख्या में महानदी गंगा में बालु-कण हैं तो क्या उनके बालु-कण बहुत होंगे?

सुभूति : वे गंगा नदियाँ अवश्य ही बहुत होंगी और उनके बालु-कण और भी बहुत होंगे, भगवन्।

भगवान् : यही मैं तुमसे कहता हूँ, सुभूति, यही मैं तुमको बताता हूँ—यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष सप्तरत्नों से इतने लोकधातुओं को परिपूर्ण कर दे जितने कि उन गंगा नदियों में बालु-कण हों, और तब उन्हें तथागतों, अर्हतों, सम्यक्संम्बुद्धों को प्रदान कर दे—तो तुम क्या समझते हो, सुभूति, क्या वह स्त्री अथवा पुरुष उस (दान) के बल पर बहुत (बड़ी) पुण्यराशि प्राप्त करेगा?

सुभूति : महान् , भगवन् , महान् , सुगत, वह पुण्यराशि होगी, असंख्य और अप्रमेय, जिसे वह स्त्री अथवा पुरुष इस प्रकार प्राप्त करेगा।

भगवान् : यदि, सुभूति, एक ओर तो कोई स्त्री या पुरुष उन असंख्य धातुलोकों को सप्तरत्नों से परिपूर्ण करके तथागतों, अर्हतों, सम्यक्सम्बुद्धों को दान दे दे, और दूसरी ओर, यदि कोई कुलपुत्र या कुलदुहिता इस धर्मोपदेश (इस सूत्र) की एक

---

१. यह महायान का केन्द्रीय और 'क्लासिकल' विचार है। इसी को अनात्मवाद, नैरात्म्यवाद, शून्यवाद अथवा प्रज्ञापारमिता का सिद्धान्त कहते हैं। यही माध्यमिक 'डायलेक्टिक' की आधारशिला है। नागार्जुन ने लिखा :

''अस्तित्त्वं ये तु पश्यन्ति नास्तित्त्वं चाल्पबुद्धयः।
भावानां ते न पश्यन्ति दृष्टव्योपशमं शिवम्''॥ —मध्यमकशास्त्र ५/८।

द्र० मध्यमकशास्त्र, १८वाँ प्रकरण; चतुःशतक, १०वाँ अध्याय।

चतुष्पाद गाथा को दूसरों के (हित के) लिये कहे और प्रकाशित करे, तो यह दूसरी कोटि के व्यक्ति, इस कार्य के परिणामस्वरूप, महत्तर, असंख्य और अप्रमेय पुण्यराशि अर्जित करेंगे।

[१२]

सुभूति : जिस भू-भाग पर किसी व्यक्ति ने इस सूत्र की चार पंक्तियों की एक गाथा उपदेशी हो प्रकाशित की हो, वह भू-भाग भी देवताओं, मनुष्यों एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक के लिए एक चैत्य (मन्दिर) की तरह (पवित्र) हो जाता है। तब उन व्यक्तियों के विषय में हम क्या कहें जो इस सम्पूर्ण धर्मोपदेश को मन में धारण करेंगे, जो इसको क़हेंगे, पढ़ेंगे, और दूसरों के लिये इसे प्रकाशित करेंगे? सुभूति, ऐसे लोग परम आश्चर्यमय शुभगति (सौभाग्य) को प्राप्त होंगे, और उस पवित्र भू-भाग पर या तो शास्ता (बुद्ध) स्वयं निवास करते हैं अथवा उनका प्रतिनिधिस्वरूप कोई मनीषी निवास करता है।

[१३]

भगवान् के उक्त वाक्य सुनकर सुभूति ने भगवान् से पूछा : भगवान् यह धर्मपर्याय (धर्मोपदेश,. सूत्र) कौन-सा है, और इसे मैं किस प्रकार (मन में) धारण करूं?

भगवान् बोले : सुभूति, इस धर्मपर्याय को प्रज्ञापारमिता[१] कहते हैं, इसे इसी रूप में (मन में) धारण करना चाहिये। ऐसा किस कारण? जिसे तथागत ने प्रज्ञापारमिता (ज्ञान की पंराकाष्ठा) कहा है उसे तथागत ने अपारमिता कहा है। इसीलिए इसे प्रज्ञा-पारमिता कहा जाता है।

---

१. प्रज्ञापारमिता से तात्पर्य है परमार्थज्ञान से, सम्यक्सम्बोधि से, निर्वाण से। महायान सूत्रों और शास्त्रों में शून्यता, धर्मता, तथता, भूतकोटि, प्रतीत्यसमुत्पादज्ञान, क्लेशावरण और ज्ञेयावरण से मुक्ति, आदि शब्द प्रज्ञापारमिता के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। प्रज्ञापारमिता एक पारमिता (पूर्णता) का नाम भी है। प्रज्ञापारमिता को नमस्कार किया गया है मानो वह एक देवी हो। तान्त्रिक युग में प्रज्ञा का शक्ति अथवा देवी रूप भी सुविदित है। प्रज्ञापारमिता साहित्य में प्रज्ञापारमिता विलक्षण, गम्भीर, अतर्कावचर, अकथनीय प्रज्ञा है। वह पूर्ण और अद्वैत है।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या कोई ऐसा धर्म है जिसे तथागत ने उपदेशा है?

सुभूति : नहीं भगवन्; कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसे तथागत ने उपेशा हो।

भगवान् : तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या त्रिसाहस्त्रमहासाहस्त्र लोकधातुओं के रज-कण बहुत अधिक होंगे?

सुभूति : बहुत, भगवन् , बहुत अधिक, सुगत, वह रज-कण होंगे। ऐसा किस कारण? क्योंकि, भगवन् , तथागत ने जिन्हें रज-कण कहा है उन्हें तथागत ने अरज कहा है। इसीलिए उन्हें रज-कण कहा जाता है और जिसे तथागत् ने लोकधातु कहा है उसे तथागत ने अधातु कहा है। इसीलिए उसे लोकधातु कहते हैं।

भगवान् : तुम क्या समझते हो, सुभूति, क्या तथागत-अर्हत-सम्यक्सम्बुद्ध को महापुरुष के ३२ लक्षणों के माध्यम से देखा जा सकता है?

सुभूति : नहीं, भगवन्। तथागत-अर्हत-सम्यक्सम्बुद्ध को महापुरुष के ३२ लक्षणों के माध्यम से नहीं देखा जा सकता है। ऐसा किस कारण? महापुरुष के जो ३२ लक्षण तथागत ने बताये हैं, उन्हें तथागत ने अ-लक्षण बताया है। इसीलिये उन्हें महापुरुष के बत्तीस लक्षण कहा जाता है।

भगवान् : सुभूति, यदि एक ओर, कोई स्त्री अथवा पुरूष दिन-प्रतिदिन आत्मभाव और अपनापन का उतनी बार परित्याग करता है जितनी कि गंगा नदी के बालुकणों की संख्या है, और वह (स्त्री या पुरूष) अपना आत्मभाव और अपनापन उतने कल्पों के लिये त्याग देता है, जितनी कि गंगा नदी के बालुकणों की संख्या है, और दूसरी ओर, कोई अन्य व्यक्ति इस धर्मपर्याय की चार पंक्तियों की एक गाथा को भी व्यक्त करके दूसरों के समक्ष प्रकाशित करता है, तो इस व्यक्ति को इसके इस कार्य के बल पर बहुतर, अप्रमेय और असंख्य पुण्यराशि का लाभ होगा।

[१४]

(यह उपदेश सुनकर) धर्म के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण आयुष्मान् सुभूति को आँसू आ गये। आँसू पोंछने के पश्चात् सुभूति ने कहा : यह आश्चर्य है, भगवन् यह परमाश्चर्य है, सुगत; जो यह धर्मपर्याय (धर्मोपदेश, सूत्र) तथागत ने भली

प्रकार उन प्राणियों के हित के लिए उपदेशा है जो अग्रयान (=महायान) में अग्रसर हैं तथा जो श्रेष्ठयान (बोधिसत्त्वयान, महायान) में आरूढ़ हैं। इस (उपदेश) से मुझे ज्ञान उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार का धर्मोपदेश मैंने पहले कभी नहीं सुना था। वे बोधिसत्त्वगण जो इस धर्मोपदेश को सुनकर भूतसंज्ञा (सम्यक ज्ञान) का लाभ करेंगे वे परमाश्चर्यपूर्ण सुगति को प्राप्त होंगे। ऐसा किस कारण? क्योंकि जो भूतसंज्ञा है वह अ-भूतसंज्ञा ही है। इसीलिये तथागत उपदेशते हैं, 'भूतसंज्ञा, भूतसंज्ञा'।

भगवन्, मेरे लिये यह कठिन नहीं है कि, जब यह धर्मपर्याय उपदेशा जा रहा हो, मैं इसे स्वीकार करूँ और इस पर विश्वास करूँ। परन्तु ऐसे प्राणी जो भविष्य काल में, अन्तिम युग में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में, सद्धर्म के लोप होने के समय में (विद्यमान) होंगे, और जो (उस काल में) इस धर्मपर्याय को ग्रहण करेंगे, धारण करेंगे, इसका उद्वाचन करेंगे, अध्ययन करेंगे तथा दूसरों के लिए इसे विस्तारपूर्वक प्रकाशित करेंगे, निश्चय ही वे परमाश्चर्यमय सुगति (सम्यक् गति) को प्राप्त होंगे। उनमें आत्मसंज्ञा नहीं होगी, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, और न पुद्गलसंज्ञा ही होगी। उनमें न संज्ञा होगी और न असंज्ञा होगी। ऐसा किस कारण? जो यह, भगवन्, आत्मसंज्ञा है वह असंज्ञा है। जो सत्वसंज्ञा, जीवसंज्ञा, और पुद्गलसंज्ञा है(भी) असंज्ञा (ही) है। ऐसा किस कारण? क्योंकि बुद्धगण (भगवन्त, तथागत) सभी संज्ञाओं का परित्याग कर चुके होते हैं[१]।

भगवान् ने कहा : ऐसा ही है, सुभूति, ऐसा ही है। वे प्राणी परमाश्चर्यपूर्ण सुगति को प्राप्त होंगे जो इस सूत्र (धर्मोपदेश) के कहे जाने पर न त्रसित होंगे, न भयभीत होंगे और न संत्रस्त होंगे। ऐसा किस कारण? क्योंकि, सुभूति, तथागत ने उस परम पारमिता (परम पूर्णता, सम्यक् सम्पूर्णता) अर्थात् असंज्ञाभाव (शून्यताभाव, प्रज्ञातत्व)

---

१. अ० प्र० में कहा गया है: 'सर्वकल्पविकल्प प्रहीणो हि तथागतः'। चन्द्रकीर्ति ने एक महायानसूत्र से प्रसन्नपदा में निम्न वाक्य उद्धृत किया है:—''सर्वकल्पविकल्पजालवासनाप्रपञ्चविगतो हि तथागतः''। दिङ्नाग के प्रज्ञपारमितापिण्डार्थ के प्रारम्भ में लिखा है: —'प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वयं सा तथागतः' । भावविवेक ने करतलरत्नशास्त्र के अन्तिम अध्याय में लिखा है:—''सर्वधर्माणां प्रपञ्चानुत्थानं द्वयनिमित्तविविक्तता इयं प्रज्ञापारमिता''।

का उपदेश किया है जो पारमिता नाम से ज्ञात है। जिसे, सुभूति, तथागत परमपारमिता कहते है उसे ही बुद्ध अपरिमाणा (जो असंख्य हो) कहते हैं। इसीलिये यह परमपारमिता नाम से ज्ञात है।

यही नहीं सुभूति, जो तथागत की क्षान्तिपारमिता है वही अपारमिता है। ऐसा किस कारण? क्योंकि, सुभूति, जब कलिंग-राजा ने मेरा मांस मेरे प्रत्येक अंग से काटा था, उस समय मुझ में आत्मभाव (अपनापन) नहीं था, न सत्त्वसंज्ञा थी, न जीवसंज्ञा थी, न पुद्गलसंज्ञा थी, और न संज्ञा अथवा असंज्ञा ही थी। ऐसा किस कारण? सुभूति, यदि उस समय मुझमें आत्मभाव होता तो मुझ में व्यापादसंज्ञा भी होती, यदि उस समय मुझमें जीवसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा और पुद्गलसंज्ञा हो गई होती तो मुझमें उस समय व्यापादसंज्ञा भी हो गई होती। ऐसा किस कारण? क्योंकि मैं अपने (अनुत्तर, लोकोत्तर) ज्ञान से पिछले भूतकाल के ५०० जन्मों को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि मैं क्षान्तिवादी (तितिक्षा के सिद्धान्त का प्रतिपादक) ऋषि था। उस समय भी मुझमें आत्मसंज्ञा, जीवसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा व पुद्गलसंज्ञा नहीं थी। अतएव, सुभूति, बोधिसत्त्व महासत्त्व को सर्वप्रकार की संज्ञाओं का परित्याग करके अनुत्तर-सम्यक् संम्बोधि का विचार उत्पन्न करना चाहिये।[१] इस प्रकार का (बोधि) चित्तोत्पाद किसी भी रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य आदि पर प्रतिष्ठित (=आधारित, अवलम्बित) नहीं होना चाहिये। बोधिचित्त का उत्पाद धर्म अथवा अधर्म पर भी अवलम्बित नहीं होना चाहिए। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) जो प्रतिष्ठित है वह वस्तुतः अप्रतिष्ठित ही है। इसीलिए तथागत ने कहा है : बोधिसत्त्व को अप्रतिष्ठित (=अनिश्रित, अनालीन) रहकर दान देना चाहिये; जो रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श, अथवा 'धर्मों पर प्रतिष्ठित (=आश्रित, आधृत) रहता है उसे दान नहीं देना चाहिये। यही नहीं सुभूति, बोधिसत्त्व को इसी प्रकार (अप्रतिष्ठित रहकर) सभी प्राणियों (सत्त्वों) के हित के लिये दान का परित्याग करना चाहिये। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) जो सत्त्वसंज्ञा है वह असंज्ञा ही है। वे सभी सत्त्व, जिनके बारे में तथागत ने कहा है, वास्तव में असत्त्व हैं। ऐसा किस कारण?

---

१. बोधिचित्तोत्पाद पर द्र० वसुबन्धु कृत बोधिचित्तोत्पादसूत्रशास्त्र, विश्वभारती एनल्स २; बोधिचर्यावतार, शिक्षासमुच्चय, भावनाक्रम; लालमणि जोशी, 'ए सर्वे आफ दि कन्सेप्शन ऑफ बोधिचित्त' जर्नल आफ रिलीजियस स्टडीज, १९७१ (पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला)।

(क्योंकि) तथागत वास्तविकता (अथवा परमार्थ) के अनुरूप कहते हैं। तथागत सत्यवादी हैं, जो कुछ जैसा है उसको वैसा बताते हैं, अन्यथा नहीं बताते हैं। तथागत मिथ्याभाषण नहीं करते हैं[१]।

परन्तु, फिर भी, सुभूति, जो धर्म (=सत्य, परमार्थ, निर्वाण) तथागत द्वारा अभिसम्बुद्ध है[२] (= ज्ञात हुआ है, अधिगत हुआ है), जिसे तथागत ने उपदेशा है और जिस पर मनन (= ध्यान) किया है, उसके कारण वहाँ न सत्य है और न मृषा। एक पुरुष, जो अन्धकार में पड़ा है, कुछ नहीं देखता। ठीक इसी प्रकार की स्थिति उस बोधिसत्त्व की भी है जो वस्तुपतित है(वस्तुओं में पड़ा है, अथवा 'धर्मो' में लीन है) और वस्तुपतित होकर दान का परित्याग करता है। एक पुरुष, जो चक्षुमान् है, रात्रि के प्रभातमय हो जाने और सूर्य के उदय हो जाने पर अनेक प्रकार के रूपों को देखता है। ठीक यही स्थिति उस बोधिसत्त्व की है जो वस्तुपतित नहीं है और वस्तुपतित हुए बिना दान का परित्याग करता है।

सुभूति, जो कुलपुत्र और कुलपुत्रियाँ इस धर्मपर्याय को ग्रहण करेंगी, इसे धारण करेंगी, इसका उद्वाचन और अध्ययन करेंगी, और इसे दूसरों के लिए पूर्ण रूप से प्रकाशित करेंगी, उन्हें तथागत अपने बुद्ध-ज्ञान द्वारा जानते हैं, तथागत ने उन्हें अपने बुद्ध-चक्षु से देखा है[३]; तथागत उन्हे भली प्रकार जानते हैं। ये सभी प्राणी (सत्त्व) अप्रमेय और असंख्य पुण्यस्कन्ध उत्पन्न और प्राप्त करेंगे।

[१५]

पुनः सुभूति यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष (प्रतिदिन) प्रातःकाल के समय गंगा नदी के बालुकणों (की संख्या) के समान अपना और अपने सर्वस्व का परित्याग करते

---

१. तु० दीघनिकाय, जिल्द ३, पृ० १०४ — 'तथागतो कालवादी सच्चवादी भूतवादी अत्थवादी, धम्मवादी, विनयवादी, तस्मा तथागतो ति बुच्चति'। अर्थात् तथागत कालोचित वक्ता, सत्यवक्ता, यथावत् वक्ता, अर्थवक्ता, धर्मवक्ता, और विनयवक्ता है, अतएव वह तथागत कहलाते हैं।

२. तु० महावग्ग, ना० सं०, पृ० ६—'अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो'।

३. तु० महावग्ग, पृ० ९ 'अद्दसा खो भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे.....।'

रहें, यदि वे मध्याह्न के समय भी इसी प्रकार अपना और अपने सर्वस्व का परित्याग करते रहें और यदि वे सायंकाल के समय भी इसी प्रकार अपना और अपने सर्वस्व का परित्याग करते रहें, और इसी प्रकार यदि वे अपने आप का और अपने सर्वस्व का अनेक शत-सहस्र कोटि कल्पों तक (=सैकड़ों हजार करोड़ कल्पों तक) परित्याग करते रहें, और एक कोई अन्य व्यक्ति इस धर्मपर्याय (=धर्मोपदेश) को सुनता है, सुनकर इसे तिरस्कृत नहीं करता है तो यह (कोई अन्य) व्यक्ति, अपने इस कार्य के बल पर, बहुतर अप्रमेय और असंख्य पुण्यराशि का लाभ करता है। (जब सुनने और स्वागत करने का यह महत्फल होता है) तब उस व्यक्ति के (पुण्य के विषय में) क्या कहना जो इस (धर्मपर्याय) को लिखकर इसे ग्रहण करता है, हृदयंगम करता है, उद्वाचित करता है, पढ़ता है, और दूसरों के (हित) के लिये इसे भली प्रकार प्रकाशता है[१]?

उपर्युक्त के अतिरिक्त, सुभूति, यह (प्रज्ञापारमिता) धर्मोपदेश अचिन्त्य और अतुलनीय है; यह धर्मोपदेश तथागत ने उन प्राणियों के हित के लिये उपदेशा है जो अग्रयान (=महायान, प्रज्ञापारमितायान) और श्रेष्ठयान (=वही अर्थ जो अग्रयान का है, इसे एकयान, बुद्धयान, बोधिसत्त्वयान आदि भी कहते हैं[२]) में प्रारूढ़ हैं, अर्थात् जो महायान के पथिक हैं। जो इस धर्मपर्याय को ग्रहण करेंगे, इसका उद्वाचन और अध्ययन करेंगे तथा दूसरों के लिये इसे भली प्रकार प्रकाशित करेंगे, उनको तथागत बुद्धज्ञान द्वारा जानते हैं, सुभूति, उन्हें तथागत ने बुद्धचक्षु द्वारा देख लिया है, और वे तथागत को भली प्रकार विदित हैं। ये सभी प्राणी, सुभूति, अप्रमेय पुण्यराशि से लाभान्वित होंगे; ये सभी प्राणी अचिन्त्य, अतुल्य, असीमित और अपरिमित पुण्यराशि से लाभान्वित होंगे। सुभूति, ये सभी प्राणी समान अंशों में बोधि धारण करेंगे। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) ऐसा सुभूति, सम्भव नहीं है कि हीन अधिमुक्ति (दरिद्र आशय वाले, जिनका प्रणिधिचित्त अथवा प्रस्थानचित्त दुर्बल हो या जो बोधिचर्या में प्रमाद करते हों) व्यक्ति इस धर्मपर्याय को सुन सकें, और न उनके लिये इसका श्रवण शक्य

---

१. तु० अ० प्र० अध्याय २८, पृ० २३३-३४ (दरभंगा संस्करण)

२. द्र० लालमणि जोशी, 'महायान बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास', सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ वाराणसी १९६५, पृ० ११२-१३०।

है जिनकी दृष्टि में आत्मा, जीव, सत्त्व और पुद्गल है, और न ऐसे प्राणी ही इसे सुनते हैं, ग्रहण करते हैं, धारण करते हैं, उद्वाचित करते हैं अथवा पढ़ते हैं जिन्होंने बोधिसत्त्व का प्रण (बोधिचित्तोत्पाद करते समय संवर अथवा सभी प्राणियों के हित के लिये बोधि प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय) नहीं किया है[१]। ऐसा सम्भव नहीं है। पुनः सुभूति, जिस भू-भाग पर यह (वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता) सूत्र उपदेशा जाता है, वह भू-भाग सम्पूर्ण लोक में देवताओं, मनुष्यों और असुरों के लिये पूजनीय हो जाता है, वह भू-भाग वन्दनीय और प्रदक्षिणा करने योग्य हो जाता है; वह भू-भाग एक चैत्य[२] (मन्दिर) की भांति (पवित्र) हो जाता है।

[१६]

और भी सुनो सुभूति, जो कुलपुत्रियां अथवा कुलपुत्र इन्हीं सूत्रों को लेकर मन में धारण करेंगे, इनका उच्चारण व अध्ययन करेंगे, ध्यानपूर्वक बुद्धिमानी के साथ इन पर विचार करेंगे और दूसरों के लिये इन्हें प्रकाशित करेंगे, वे परिभूत होंगे। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) जो अशुभ कर्म इन प्राणियों ने अपने पूर्व जन्मों में किये हैं, जो इनको दुःखपूर्ण गतियों को ले जाने वाले हैं—वे प्राणी इसी जीवन में, उपर्युक्त रूप से परिभूत (=पराजित, शान्त, दान्त) होने के कारण, अपने उन पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों को दबा देंगे (=ढक देंगे, प्रभावहीन कर देंगे) और बुद्ध-बोधि को प्राप्त होंगे। ऐसा किस कारण[३]? सुभूति, मैं (अपने असाधारण ज्ञान के द्वारा) जानता हूँ कि

---

१. बोधिसत्त्व, बोधिचित्त एवं बोधिचर्या सम्बन्धी विषयों पर अत्युत्तम मौलिक ग्रन्थ है:— मैत्रेय-असंग कृत योगाचारभूमि का १५ वाँ अध्याय (बोधिसत्त्वभूमि), वसुबन्धुकृत बोधिचित्तोत्पाद-सूत्रशास्त्र, आर्यशूरकृत जातकमाला, शान्तिदेव कृत शिक्षासमुच्चय तथा बोधिचर्यावतार एवं कमलशील कृत (प्रथम) भावनाक्रम। आधुनिक ग्रन्थों में उल्लेख्य हैं—डॉ० डी०टी० सुजुकी कृत आउट लाइन्स आफ महायान बुद्धिज्म, डा० दत्त कृत एस्पेक्ट्स आफ महायान बुद्धिज्म, डॉ० हरदयाल कृत्त बोधिसत्त्व डाक्ट्रिन तथा लालमणि जोशी कृत स्टडीज इन दि बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय ५, द्र० ग्रन्थ सूची।

२. चैत्य के अर्थ व महत्त्व पर द्र० लालमणि जोशी, प्राचीन भारतीय कला की ऐतिहासिक समीक्षा, अध्याय ४।

३. द्र० शिक्षासमुच्चय, सं० बेन्डाल, पृ० १७१।

भूतकाल में, अगणित असंख्य कल्पों में, ८४,००० कोटि शतसहस्त्र बुद्ध हुये हैं, उन तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध दीपंकर से बहुत दूर (=पहले) जिन्हें मैंने (अपनी सेवा से) सन्तुष्ट किया था और सन्तुष्ट करके भी मैं जिनसे विरत (अलग) नहीं हुआ था। परन्तु सुभूति, यदि एक ओर मेरे द्वारा इन भगवन्त बुद्धों को सन्तुष्ट करके भी उनसे विच्छिन्न नहीं होना, और दूसरी ओर, अन्तिम युग में, पश्चात् समय में, अन्तिम पांच सौ वर्षों में, सद्धर्म के प्रलोप के समय में कुछ व्यक्तियों द्वारा इस सूत्रान्त का ग्रहण किया जाना, धारण किया जाना, उद्वाचन होना, अध्ययन होना और दूसरों के लिये भली प्रकार प्रकाशित किया जाना—यदि ये दोनों कार्य पुण्य की दृष्टि से मापे जायं तो, सुभूति, इस पहले कार्य (मेरे द्वारा किये गये बुद्ध-सेवाकार्य) का पुण्य इस दूसरे कार्य (सूत्रान्त के ग्रहण, धारण, प्रकाशन सम्बन्धी कार्य) के पुण्य के सामने नगण्य है—पहले कार्य का पुण्य दूसरे कार्य के पुण्य का सौवां भाग भी नहीं है, हजारवां भाग भी नहीं, सौ हजारवां भाग भी नहीं, करोड़वा भाग भी नहीं, सौ करोड़वा भाग भी नहीं, शतसहस्त्र करोड़वा भाग भी नहीं है। उसकी कोई संख्या नहीं है, (वह इतना लघु और अल्प है) कोई अंश, गणना, उपमा, समानता अथवा तुलना नहीं हो सकती[१]।

यही नहीं, सुभूति। यदि मैं इन कुलपुत्रों अथवा कुलपुत्रियों के उन पुण्यस्कन्धों का वर्णन करूं जो इन्हें उस समय प्राप्त होंगे तो (सुनने वाले) प्राणी उन्माद और चित्तविक्षेप का अनुभव करने लगेंगे[२]। अतएव, सुभूति, जिस प्रकार तथागत ने इस धर्मपर्याय को अचिन्त्य कहा है उसी प्रकार इससे उत्पन्न होने वाले कर्मफल को भी अचिन्त्य समझना चाहिये[३]।

---

१. अ० प्र० (दरभंगा सं०), पृ० ३६ में कहा गया है कि प्रज्ञापारमिता की भक्ति के परिणाम (पुण्य) अप्रमेय, असंख्य, कल्पनातीत, अतुलनीय और असीमित होते हैं।

२. अंगुत्तरनिकाय, जिल्द २, पृ० ८४-८५ में कहा गया है कि चार अचिन्त्य हैं—बुद्धों का विषय, ध्यानी का विषय, कर्मविपाक तथा लोकचिन्ता। जो इनके बारे में चिन्तन करता है वह उन्माद और विघात का भागी होता है।

३. महावंश १७.५६ तथा ३१.१२५, तथा थेरापदान, १.१.८२ में कहा गया है —

एवं अचिन्तिया बुद्धा, बुद्धधम्मा अचिन्तिया।
अचिन्तिये पसन्नानं विपाको होति अचिन्तिया॥

[१७]

आयुष्मान् सुभूति ने पूछा : भगवन्! बोधिसत्त्वयान का पथिक किस प्रकार (अपने पथ पर) स्थित रहता है, किस प्रकार अग्रसर होता है, और किस प्रकार चित्त का आयोग करता है?

भगवान् ने कहा : सुभूति, बोधिसत्त्वयान के पथिक (=बोधिसत्त्व) को इस प्रकार का चित्तोत्पाद करना चाहिये—''मुझे सभी प्राणियों को निरुपधिशेष निर्वाणधातु की उपलब्धि करवाकर उन्हें मुक्त करना है। इस प्रकार प्राणियों के निर्वाण प्राप्त करने पर भी कोई प्राणी निवृत्त (पालि निब्बूत) नहीं होता है।'' ऐसा किस कारण? यदि बोधिसत्त्व को (महायान के पथिक को) सत्त्वसंज्ञा हो जाय तो उसको 'बोधिसत्त्व' नहीं कहा जा सकता, यदि (उसे) जीवसंज्ञा अथवा पुद्गलसंज्ञा हो जाय तो (भी) उसे 'बोधिसत्त्व' नहीं कहा जा सकता। ऐसा किस कारण? जो बोधिसत्त्वयान में आरूढ़ हो गया है वह कोई धर्म नहीं है (वह 'धर्मों में से एक नहीं है)। क्या तुम यह मानते हो, सुभूति, कि कोई ऐसा 'धर्म' विद्यमान है जिसके द्वारा तथागत को दीपंकर की उपस्थिति में अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि का लाभ हुआ था?

सुभूति : जैसा अर्थ भगवान् के कहने का मैं जानता हूँ, कोई ऐसा 'धर्म' नहीं है, जिसके द्वारा तथागत को तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध दीपंकर की उपस्थिति में अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि का लाभ हुआ था।

भगवान् : ऐसा ही है, सुभूति, ऐसा ही है। कोई भी ऐसा 'धर्म' नहीं है जिसके कारण तथागत को तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध की उपस्थिति में अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि का लाभ हुआ था। सुभूति, यदि कोई 'धर्म' तथागत को ज्ञात होता तो दीपंकर तथागत मेरे विषय में यह भविष्यवाणी नहीं करते[१].....''तुम माणव (=युवक ब्रह्मचारी)

---

१. गौनम बुद्ध की जीवनी से सम्बन्धित यह पुरा कथा कि पूर्वप्रादुर्भूत बुद्ध दीपंकर ने उनके बुद्ध होने की भविष्यवाणी की थी, बौद्ध वाङ्मय में सुविदित है। द्र० बुद्धवंस (पालि खुद्दक निकाय, जिल्द ७), दिव्यावदान, अपदान (पालि खुद्दक निकाय, जिल्द ७), महावस्तु, ललितविस्तर आदि। पूर्वप्रादुर्भूत ६ बुद्धों की ऐतिहासिकता पर द्र० लालमणि जोशी, 'शाक्यमुनि के पूर्ववर्ती छः बुद्धों की ऐतिहासिक सत्ता और महत्ता', धर्मदूत, वर्ष २९, १९६५, पृ० २०३-२११।

भविष्यकाल में शाक्यमुनि नाम के तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होवोगे।'' क्योंकि, सुभूति, ऐसा कोई 'धर्म' नहीं है जिसके द्वारा तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि का ज्ञान हुआ था, इसी कारण तथागत दीपंकर ने भविष्यवाणी की थी कि—''तुम माणव भविष्य काल में शाक्यमुनि नाम के तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बनोगे।'' ऐसा किस कारण? क्योंकि सुभूति, ''तथागत'' भूततथता का समानार्थक है।[१] जो कोई यह कहता है—''तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को पूर्णरूपेण जान लिया है''—वह मिथ्या (झूठ) कहता है, वह असत् को ग्रहण करके मेरा त्रुटिपूर्ण प्रतिनिधित्त्व करता है (=मेरे सिद्धांत का विकृत रूप प्रकट करता है)। ऐसा किस कारण? क्योंकि कोई ऐसा, 'धर्म' है ही नहीं जिसके द्वारा तथागत को अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि प्राप्त हुई हो। वह धर्म जिसे तथागत ने जाना है और उपदेशा है उसके कारण वहाँ न सत्य है और न मृषा है। इसीलिए तथागत उपदेशते हैं : ''सभी धर्म बुद्ध-धर्म ही हैं।'' ऐसा किस कारण? क्योंकि सुभूति, सभी धर्मों को तथागत ने अधर्म कहा है। इसीलिये 'सभी धर्म बुद्ध-धर्म' कहे गये हैं। अच्छा, सुभूति, कल्पना करो एक ऐसे व्यक्ति की जिसकी देह विशालकाय (=महाकाय) हो। सुभूति ने कहा: जिसे तथागत ने काययुक्त और महाकाय पुरुष कहा है उसे तथागत ने अकाय कहा है। इसीलिये उसे काययुक्त और महाकाय कहा है। भगवान् बोले : ऐसा ही है (=ठीक है) सुभूति। वह बोधिसत्त्व जो यह कहता है : ''मैं प्राणियों को निर्वाण तक ले जाऊँगा'', उसे 'बोधिसत्त्व' नहीं कहना चाहिए। ऐसा किस कारण? (वास्तव में) क्या कोई ऐसा 'धर्म' है जिसे 'बोधिसत्त्व' की संज्ञा दी जाय? सुभूति ने कहा : नहीं, भगवन्। बोधिसत्त्व नाम का कोई 'धर्म' नहीं है। भगवान् बोले : ''प्राणी, प्राणी'',

---

१. तु० दिङ्नाग का वाक्य—'प्रज्ञापारमिताज्ञान ही तथागत है जो अद्वैत है'। (प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ)। प्रज्ञाकरमति ने लिखा है—'सर्व धर्मों की निःस्वभावता, शून्यता, तथता, भूतकोटि, धर्मधातु आदि पर्यायवाची शब्द हैं। वज्रच्छेदिका के कुछ संस्करणों में (देखिये ऊपर) 'अनुत्पादधर्मता', 'परमार्थ' आदि भी इसी कोटि के पर्याय माने गये हैं। परन्तु विशुद्ध प्रज्ञापारमिता की परम्परा निषेधात्मक व डायलेक्टिकल है अतएव 'परमार्थ' शब्द वज्रच्छेदिका के केन्द्रीय तर्काधार के अनुकूल नहीं प्रतीत होता है।

सुभूति, तथागत द्वारा अ-प्राणी कहे गये हैं (=सत्त्व तथागत द्वारा असत्त्व कहे गये हैं)। इसीलिये वे प्राणी (सत्त्व) कहे जाते हैं। इसी के कारण तथागत उपदेशते हैं : ''सभी धर्म निरात्मन् हैं, निःसत्त्व हैं, जीवरहित हैं, सभी धर्म पुद्गलरहित हैं''।[1] यदि कोई बोधिसत्त्व कहे कि : 'मैं बुद्ध-क्षेत्रों के व्यूहों का सृजन करूँगा'', तो वह भी उसी प्रकार बोधिसत्त्व न कहलाने योग्य है। (मैक्सम्यूलर एवं वैद्य के संस्करणों के पाठानुसार, 'वह झूठ कहता है'—स वितथं वदेत्)। ऐसा किस कारण? क्योंकि '(बुद्धों के) क्षेत्र-व्यूह, (बुद्धों के) क्षेत्रव्यूह', सुभूति, तथागत द्वारा अव्यूह कहे गये हैं। [क्षेत्रव्यूह से तात्पर्य है बुद्धों के लोकों (क्षेत्रों) के सुव्यवस्थित आनन्दमय संस्थान से] सुभूति, जो बोधिसत्त्व यह मानता है कि ''धर्म निरात्मन् हैं, धर्म निरात्मन् हैं'', उसको तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने बोधिसत्त्व और महासत्त्व कहा है।

[१८]

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत का मांसचक्षु विद्यमान है?

सुभूति : हां ऐसा है, भगवन्। तथागत का मांसचक्षु विद्यमान है।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत का दिव्यचक्षु विद्यमान है?

सुभूति : हां ऐसा है, भगवन्। तथागत का दिव्यचक्षु विद्यमान है।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत का प्रज्ञाचक्षु विद्यमान है?

सुभूति : हां ऐसा है, भगवन्। तथागत का प्रज्ञाचक्षु विद्यमान है।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत का धर्मचक्षु विद्यमान है?

सुभूति : हां ऐसा है, भगवन्। तथागत का धर्मचक्षु विद्यमान है।

---

१. द्र० महावग्ग, पृ० १६-१८, अनत्तपरियायो; नागार्जुन कृत द्वादशमुखशास्त्र, अध्याय ८ स्वभावपरीक्षामुख; आर्यवेद कृत चतुःशतक, अध्याय १० आत्मप्रतिषेधभावनासन्दर्शन; शान्तिदेव कृत बोधिचर्यावतार, ९. ५७-८८; शान्तिरक्षित कृत तत्त्वसंग्रह अध्याय ७ का अन्तिम अंश। नैरात्मवाद अथवा अनात्मवाद का सिद्धान्त बौद्ध दर्शन का अतिप्रसिद्ध परन्तु विवादास्पद सिद्धान्त है। वात्सिपुत्रीय बौद्ध पुद्गल की सत्ता मानते थे। इसके कारण शान्तिरक्षित और कमलशील उन्हें अबौद्ध घोषित करने में नहीं चूके।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत का बुद्धचक्षु विद्यमान है[१]?

सुभूति : हां ऐसा है, भगवन्। तथागत का बुद्धचक्षु विद्यमान है।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, क्या तथागत ने उन सभी बालुकणों का वर्णन किया है जो बालुकण महानदी गंगा में हैं?

सुभूति : हां भगवन् , हां सुगत। तथागत ने उन कणों का वर्णन किया है जो बालुकण महानदी गंगा में हैं।

भगवान् : तुम क्या मानते हो, सुभूति, यदि इतनी गंगायें हों जितनी कि महानदी गंगा के बालुकणों की संख्या है, और इतने लोकधातु हों जितने कि ये (उपर्युक्त नदियों में बालुकण हैं, तो क्या वह लोकधातु बहुत होंगे?

सुभूति : हां भगवन् , हां सुगत। वह लोकधातु बहुत (असंख्य) होंगे।

भगवान् : जितने प्राणी इन सभी लोकधातुओं में रहते हैं, सुभूति मैं (अपने ज्ञान से) उनके नाना भावों और चित्त-धाराओं को जानता हूँ। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) ''चित्त-धारायें, चित्तधारायें'' सुभूति, तथागत ने अधारायें कही हैं। इसीलिए वह चित्तधारायें कहलाती हैं। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) सुभूति, अतीत (व्यतीत) चित्त अनुपलब्ध है, अनागत (आनेवाला) चित्त अनुपलब्ध है और प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) चित्त भी अनुपलब्ध है।

[१९]

तुम क्या मानते हो सुभूति, यदि कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु समूह को सप्तरत्नों से परिपूर्ण करके उनको तथागतों-अर्हतों सम्यक्सम्बुद्धों को दान में दे दे, तो क्या वह कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र उस दान से बहुत (बड़ी) पुण्यराशि अर्जित करेगा?

सुभूति : बहुत भगवन् , बहुत (बड़ी पुण्यराशि) सुगत।

भगवान् : ठीक है, सुभूति, ठीक ऐसा ही है। अपने उस कार्य के बल पर वह कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र महान, अप्रमेय और असंख्य पुण्यराशि (पुण्यस्कन्ध) प्राप्त

---

१. द्र० धर्मसंग्रह, ६६।

करेगा। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) ''पुण्यस्कन्ध, पुण्यस्कन्ध'', जो है उसे तथागत ने अस्कन्ध उपदेशा है। इसीलिये वह 'पुण्यस्कन्ध' कहलाता है। यदि (कोई) पुण्यस्कन्ध होता तो तथागत 'पुण्यस्कन्ध, पुण्यस्कन्ध', नहीं कहते।

[२०]

भगवान् बोले : तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत अपने रूपकाय की परिनिष्पत्ति (पूर्णता) के द्वारा देखे जा सकते हैं?

सुभूति : नहीं भगवन्। तथागत को उनके रूपकाय की परिनिष्पत्ति के द्वारा नहीं देखा जा सकता। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) भगवन् 'रूपकाय परिनिष्पत्तिं, रूपकाय परिनिष्पत्ति' को तथागत ने अपरिनिष्पत्ति कहा है। इसलिये इसे रूपकाय परिनिष्पत्ति' कहते हैं।

भगवान् : तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत अपनी लक्षणसम्पदा के द्वारा देखे जा सकते हैं?

सुभूति : नहीं भगवन्। तथागत को उनकी लक्षणसम्पदा के द्वारा नहीं देखा जा सकता। ऐसा किस कारण? क्योंकि जो यह लक्षणसम्पदा है उसको तथागत ने अलक्षणसम्पदा कहा है इसीलिए इसे 'लक्षणसम्पदा' कहते हैं।

[२१]

भगवान् : तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत को ऐसा विचार होता है कि ''मैंने धर्म उपदेशा है''?

सुभूति : नहीं भगवन्। तथागत को ऐसा विचार नहीं होता है कि ''मैंने धर्म उपदेशा है''।

भगवान् : जो कोई यह कहता है कि ''तथागत ने धर्म उपदेशा है'' वह असत्य भाषण करता है, वह असत्यग्रहण करके मेरा त्रुटिपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा किस कारण? ''धर्मोपदेश, धर्मोपदेश'', सुभूति, ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसको धर्मोपदेश कहा जा सके।

सुभूति : भगवन् , क्या ऐसे कोई सत्व (प्राणी) अनागत समय में, अन्तिम काल में, अन्तिम युग में, अन्त के ५०० वर्षों में, सद्धर्म के प्रलोप के समय में, होवेंगे जो इन धर्मों (उपदेशों) को सुनकर (उनमें) विश्वास (श्रद्धा) रखेंगे?

भगवान् : सुभूति, वे न सत्त्व हैं और न असत्त्व हैं। ऐसा किस कारण? ''सत्त्व, सत्त्व'', सुभूति, तथागत द्वारा असत्त्व कहे गये हैं। इसीलिये वे सत्त्व कहलाते हैं।

[२२]

भगवान् : तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या ऐसा कोई धर्म है जिसके द्वारा तथागत ने अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि को जाना है? आयुष्मान सुभूति ने कहा—नहीं भगवन्, कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसके द्वारा तथागत को अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि ज्ञात हुई है।

भगवान् : ऐसा ही है, सुभूति, ऐसा ही है। अणु मात्र धर्म भी विद्यमान नहीं है, अनुपलब्ध है: इसीलिये यह 'अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि' नाम से विदित है।

[२३]

इसके अतिरिक्त, सुभूति, यह धर्म सम है, इसमें कुछ भी विषम नहीं है। इसी कारण यह 'अनुत्तर-सम्यक्-सम्-बोधि' नाम से विदित है। निरात्मत्व, निःसत्त्वत्व, निर्जीवत्व और निष्पुद्गलत्व होने से (यह धर्म) सम है, और सभी कुशल धर्मों (पुण्य धर्मों) के द्वारा इसका सम्यग्ज्ञान होता है। ऐसा किस कारण? ''कुशल धर्म, कुशल धर्म'' सुभूति, तथागत द्वारा अधर्म कहे गये हैं। इसी कारण वे ''कुशल धर्म' नाम से विदित हैं।

[२४]

और पुनः, सुभूति, यदि एक ओर कोई स्त्री अथवा पूरुष त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातुओं में सप्तरत्नों का इतना (ऊँचा) ढेर लगा दे जितना (ऊँचा) पर्वतराज सुमेरू है, और इसे तथागतों, अर्हतों, सम्यक्सम्बुद्धों को दान में दे दे, और यदि दूसरी ओर कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र इस प्रज्ञापारमिता के इस धर्मोपदेश से चार पंक्तियों

की केवल एक गाथा लेकर दूसरों के लिए प्रकाशित (उपदिष्ट) कर दे, तो इन दोनों प्रकार के (पुण्य) कार्यों में दूसरे कार्य के परिणामस्वरूप होने वाले पुण्यों की तुलना में पहले कार्य के परिणामस्वरूप होने वाले पुण्य नगण्य हैं, दोनों में कोई तुलना नहीं हो सकती (देखिये ऊपर अध्याय १६)।

[२५]

तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत के मन में यह विचार उठता है कि "मैंने प्राणियों को मुक्त किया है"? सुभूति, किसी (मनुष्य) को (इसे) ऐसा नहीं समझना चाहिये। ऐसा किस कारण? यदि कोई ऐसा प्राणी होता जिसको तथागत मुक्त करते, तब तो तथागत को आत्मग्राह, सत्त्वग्राह, जीवग्राह और पुद्गलग्राह हो गया होता। 'आत्मग्राह', सुभूति तथागत द्वारा अग्राह कहा गया है। परन्तु मूर्खों ने इसे (आत्मा को) पकड़ रखा है, बालपृथग्जनों ने इसे पकड़ रखा हैं। "बाल पृथग्जन", सुभूति, तथागत द्वारा अ-जन कहे गये हैं। इसी कारण वे "बाल पृथग्जन" कहलाते हैं।

[२६]

तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत को उनकी लक्षणसम्पदा के द्वारा देखा जा सकता है?

सुभूति : नहीं भगवन् , भगवान् के उपदेश का अर्थ मैं जानता हूँ, तथागत को उनकी लक्षणसम्पदा के द्वारा नहीं देखा जा सकता है।

भगवान् : साधु साधु, सुभूति, ऐसा ही है सुभूति, ऐसा ही है, जैसा तुम कहते हो। तथागत को लक्षणसम्पदा के द्वारा नहीं देखा जा सकता है। ऐसा किस कारण? (क्योंकि) यदि तथागत ऐसा हो जिसको कि लक्षणों के द्वारा देखा जा सके, तब तो चक्रवर्ती राजा भी तथागत कहा जायगा। इस कारण लक्षणों वाला होने मात्र से तथागत को नहीं देखा जा सकता[१]।

---

१. तथागत महापुरुष है और चक्रवर्ती राजा भी महापुरुष होता है। परन्तु चक्रवर्ती राजा तथागत नहीं होता जबकि तथागत चक्रवर्ती धर्मराज होता है। चक्रवर्ती राजा लक्षणों से दृष्टव्य है परन्तु तथागत नहीं।

सुभूति : भगवन् , भगवान् के उपदेश का अर्थ मैं जानता हूँ, लक्षणसम्पदा के द्वारा तथागत को नहीं देखा जा सकता।

इस अवसर पर भगवान ने निम्नलिखित उपदेश गाथा में उपदेशा—

रूप से मुझको जो देखते हैं,
मेरे शब्दों का अनुगमन जो करते हैं,
मिथ्या प्रयास वे सब करते हैं;
ऐसे प्राणी मुझे नहीं देख सकते हैं[1] ॥ १ ॥
धर्म से बुद्ध को देखना चाहिये,
धर्मकाय का अनुगमन करना चाहिये,[2]
(परन्तु) धर्मता-ज्ञान की चेष्टा व्यर्थ हैं;
(क्योंकि) इसका जानना सम्भव नहीं है ॥ २ ॥

[२७]

तुम क्या मानते हो सुभूति, क्या तथागत अपनी लक्षणसम्पदा के द्वारा अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि को प्राप्त हुये हैं? सुभूति, तुम्हें ऐसा नहीं मानना चाहिये। ऐसा किस

---

१. मिलाइये थेरगाथा, ४६९ (डा० धर्मरत्न कृत हिन्दी अनुवाद, सारनाथ, पृ० १३४)—'जो मेरे रूप की अवहेलना करते हैं और मेरी आवाज के पीछे हैं, छन्दराग के वश में पड़े वे लोग मुझे नहीं पहचानते'।

२. तु० संयुत्तनिकाय, जिल्द २, पृ० ३४०-३४१, यो खो, वक्कलि, धम्मं पंस्सति सो मं पस्सति, यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति। हे वक्कलि! जो धर्म को देखता है वह मुझको देखता है और जो मुझको देखता है वह धर्म को देखता है। द्र० मज्झिमनिकाय, जिल्द १, पृ० २४१। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र (बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली-४) देखिये अध्याय ४, पृ० ४८, धर्मकाया बुद्धा भगवन्तः। मा खलु पुनरिमं भिक्षवः सत्कायं कायं मन्यध्वम्। धर्मकायपरिनिष्पत्तितो मां भिक्षवो द्रक्ष्यथ। एष च तथागतकायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता''। तथा अध्याय ३१, पृ० २५३, 'न हि तथागतो रूपकायतो द्रष्टव्यः। धर्मकायस्तथागतः'। महायान के त्रिकाय सिद्धान्त पर द्र० समाधिराजसूत्र का २२वाँ अध्याय, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र का १५वाँ अध्याय, सद्धर्मलंकावतारसूत्र का २ अध्याय, (डा० डी०टी० सुजुकी का अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ५१), तथा महायानसूत्रालंकार का ९वां अध्याय। द्र० डा० गोविन्दचन्द्र पाण्डे,'बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ १९६३, पृ० ३४१-३५४।

कारण? क्योंकि निश्चय ही तथागत अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि को अपनी लक्षणसम्पदा के द्वारा नहीं प्राप्त हुये हैं। तुम्हें सुभूति, किसी को भी ऐसा नहीं कहना चाहिये : 'जो बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित हैं उन्होंने किसी धर्म का विनाश अथवा उसका उच्छेद सोचा है।' सुभूति, तुम्हें ऐसा नहीं मानना चाहिये। ऐसा किस कारण? क्योंकि जो बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित हैं (आरूढ़ हैं) उन्होंने किसी धर्म का विनाश अथवा उच्छेद नहीं सोचा है।[१]

[२८]

सुभूति, यदि कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र सप्तविध रत्नों से परिपूर्ण गंगा नदी के बालुकणों की संख्या के समान लोकधातुओं को तथागतों, अर्हतों, सम्यक्सम्बुद्धों को दान में देता है, और दूसरी ओर यदि कोई बोधिसत्त्व अनुत्पत्तिक (जो उत्पन्न नहीं हो सकते) और निरात्मन् (जो अपने आप कुछ नहीं है, जिनका अपनापन या स्वभाव नहीं है) धर्मों में क्षान्ति लाभ करता है, तो (उस कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र की अपेक्षा) यह बोधिसत्त्व अपने इस कार्य के बल पर महत्तर, अप्रमेय और असंख्य पुण्यार्जन करता है। परन्तु सुभूति, महासत्त्व बोधिसत्त्व को पुण्यस्कन्ध का परिग्रहण नहीं करना चाहिये।[२]

सुभूति : भगवन्, क्या बोधिसत्त्व महासत्त्व को (वास्तव में) पुण्यस्कन्ध का परिग्रह (अर्जन) करना चाहिये?

भगवान् : ''परिग्रह करना चाहिये'', सुभूति, ग्रहण नहीं करना चाहिये (अर्थात् बोधिसत्त्व को पुण्यस्कन्ध का, पुण्यराशि का, पुण्यराशि का संग्रह, परिग्रह करना चाहिये परन्तु उसको पुण्यस्कन्धग्राह, पुण्यों से मोह, पुण्यों में अपनापन का भाव नहीं होना चाहिये।) इसीलिये इसको 'परिग्रहीतव्य' कहा गया है।

---

१. पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २५२ में तो कहा है कि 'सभी धर्म अनित्य और अविनाशी हैं'। तु० अ० प्र० पृ० ५७—प्रज्ञापरिहीण व्यक्ति कहते हैं कि 'रूप की अनित्यता रूप का विनाश है।'

२. बोधिसत्त्व अपने पुण्यों का तब तक दूसरों के हित के लिये दान करता रहता है जब तक कि एक भी सत्त्व निर्वाण से वंचित रहता है।

[२९]

जो कोई (व्यक्ति) ऐसा कहता है—''तथागत जाता है, आता है, अथवा खड़ा होता है, बैठता है, अथवा शय्या पर सोता है''—वग (मूर्ख) मेरे उपदेश का अर्थ नहीं जानता है। ऐसा किस कारण? क्योंकि 'तथागत' वह है जो कहीं गया नहीं है, कहीं से आया नहीं है; इसीलिये वह 'तथागत, अर्हत् , सम्यक्सम्बुद्ध कहलाता है।'[१]

[३०]

सुभूति, यदि कोई कुलपुत्र अथवा कुलदुहिता इन त्रिसाहस्र-महासाहस्र लोकधातुओं में विद्यमान रजकणों की संख्या के समान लोकधातुओं को असंख्य शक्ति (वीर्य) के प्रयोग से इतनी सूक्ष्मता से पीस दे ताकि एक परमाणु संचय हो जाय, तो तुम क्या समझते हो सुभूति, क्या वह बहुत बड़ा परमाणुसंचय होगा?

सुभूति : हां भगवन् , हां सुगत, वह परमाणुसंचय बहुत बड़ा होगा। ऐसा किस कारण? यदि, भगवन् , (वास्तव में) वह एक बहुत बड़ा परमाणुसंचय होता तो भगवान् उसे ''बहुत बड़ा परमाणुसंचय'' नहीं कहते। ऐसा किस कारण? क्योंकि जो ''बहुत बड़ा परमाणु-संचय'' है उसको तथागत ने अ-संचय कहा है। इसीलिये यह 'परमाणु-संचय' कहा गया है। और जो 'त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु' हैं उनको तथागत ने अ-धातु कहा है। इसीलिए वह 'त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु कहलाते हैं''। ऐसा किस कारण? भगवन्, यदि कोई लोकधातु होता तो यह एक पिण्ड-ग्राह का उदाहरण हो जाता, और जो 'पिण्ड-ग्राह' कहा गया है उसको तथागत ने अ-ग्राह कहा है। इसीलिये यह 'पिण्ड-ग्राह' कहलाता है।

---

१. तु० अ० प्र०, पृ० २५३—न च कुलपुत्र धर्मता आगच्छति वा गच्छति वा। एवमेव कुलपुत्र नास्ति तथागतानामागमनं वा गमनं वा।

द्र० मज्झिमनिकाय जिल्द २, पृ० १८१-१८२—विञ्ञाणसङ्खारविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेयो दुप्परियोगाहो—सेय्यथापि महासमुद्दो। बोधिचर्यावतार, ९. १५०—अजातम-निरुद्धं च तस्मात्सर्वमिदं जगत्। तथा प्रज्ञाकरमति, पृ० २७६।

भगवान् : सुभूति, यह 'पिण्ड-ग्राह' भी अकथनीय (अव्यवहारो) और अनभिलाप्य है। यह न धर्म है और न अ-धर्म ही है। किन्तु (ऐसा होने पर भी) सामान्य मूर्ख जनों ने इसे पकड़ रखा है।

[३१]

ऐसा किस कारण? सुभूति, जो कोई भी यह कहे कि तथागत ने आत्मदृष्टि का उपदेश दिया हैं, सत्त्वदृष्टि का, जीवदृष्टि का और पुद्गलदृष्टि का (उपदेश दिया है), क्या वह ठीक कहेगा?

सुभूति : नहीं भगवन्, नहीं सुगत, वह ठीक (उचित) कहने वाला नहीं कहा जा सकता। ऐसा किस कारण? क्योंकि भगवन्, जो आत्मदृष्टि कही गई है उसे तथागत ने अ-दृष्टि कहा है। इसीलिए वह 'आत्मदृष्टि' कहलाती है।

भगवान् : सुभूति, जो बोधिसत्त्वयान का पथिक है उसको इसी प्रकार से सभी धर्मों को जानना, देखना और तत्परतापूर्वक करना चाहिये। और उसे इस प्रकार से (धर्मों को) जानना और करना चाहिये जिससे वह कोई धर्म-संज्ञा की स्थापना नहीं करने पावे। ऐसा किस कारण? 'धर्म-संज्ञा', 'धर्मसंज्ञा' सुभूति, तथागत द्वारा असंज्ञा कही गई है। इसीलिए यह 'धर्मसंज्ञा' कहलाती है।

[३२]

भगवान् ने अन्तिम बार फिर कहा : सुभूति! यदि कोई बोधिसत्त्व महासत्त्व अप्रमेय और असंख्य लोकधातुओं को सप्तविध रत्नों से परिपूर्ण करके उन्हें तथागतों, अर्हतों, सम्यक्सम्बुद्धों को दान करता है, और दूसरी ओर, यदि कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र इस प्रज्ञापारमिता से, इस धर्मपर्याय से, चार पंक्तियों की केवल एक गाथा लेकर मन में धारण करता है, (उसकी) देशना करता है, (उसको) कहता है, पढ़ता है, तथा विस्तारपूर्वक दूसरों के लिये प्रकाशित करता है, तो वह (कुलपुत्र) इस कार्य के बल पर महत्तर पुण्यस्कन्ध प्राप्त करता है जो अप्रमेय और असंख्य होता है। परन्तु किस प्रकार वह इसको 'प्रकाशित करेगा'?[१] जिस प्रकार कि इसका प्रकाशन न हो। इसीलिये कहा गया है कि 'वह प्रकाशित करेगा।'[१]

१-१. यह वाक्य अति कठिन हैं। कुमारजीव के चीनी अनुवाद के अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार है—"जब उसको (श्रोता को अथवा प्रकाशित करने वाले को?) निमित्त-ग्राह नहीं होता तो

गिरता हुआ तारा या अन्धकार
टिमटिमाता दीप या माया-प्रसार,
ओस-बिन्दु या जल-पुञ्ज-व्यापार
स्वप्न-प्रिया या चमकती बिजली सा
जानो यह कल्पित-निर्मित संसार ।

ऐसा भगवान् ने उपदेशा। सुनकर स्थविर सुभूति अत्यन्त आनन्दित हुये, और भिक्षुओं, भिक्षुणियों, श्रद्धालु उपासकों, उपासिकाओं, बोधिसत्त्वों, तथा देवताओं, मनुष्यों, असुरों एवं गन्धर्वों सहित सम्पूर्ण लोक ने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया।

।। वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र समाप्त हुआ ।।

■

तथता अचल रहती है।'' डॉ० कॉन्ज, पूर्वउद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६२ पाद टिप्पणी३। तथता=प्रज्ञापारमिता; अचल=(प्रज्ञापारमिता) न प्रकाशित और न अप्रकाशित ही है। डॉ० स्तेन कोनउ द्वारा प्रस्तुत खोतानी अनुवाद के अनुसार—''इसकी (प्रज्ञापारमिता की) व्याख्या इस प्रकार करनी चाहिये ताकि श्रोताओं का उत्कृष्ट मत लुप्त न हो और वे इसका आदर करें और इसे पूर्ण रूप से समझ सकें। इस प्रकार इसकी व्याख्या (इसका प्रकाशन) करणीय है, ऐसा कहा जाता है।'' डॉ० कॉन्ज, पू० उ०, पृ० ६२, पाद टिप्पणी ४।

आचार्य असंगकृत
त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति

त्रिशतिकायाः प्रज्ञापारमितायाः कारिकासप्ततिः[1]

परमोऽनुग्रहो ज्ञेयः शारीरः सपरिग्रहः।
प्राप्ताप्राप्ताविहानौ च परमा स्यात् परीन्दना॥ १॥
विपुलः परमोऽत्यन्तोऽविपर्यस्त (श्च) चेतसि।
उपकाराशयः स्थानं यानेऽस्मिन् गुणपूरितः॥ २॥
दानं पारमिताषट्कम् आमिषाभयधर्मतः।
एकद्वयत्रयेणेह प्रतिपत् साऽप्रतिष्ठिता॥ ३॥
आत्मभावे प्रतिकृतौ विपाके चाप्यसक्तता।
अप्रवृत्तितदन्यार्थप्रवृत्तिपरिवर्जने ॥ ४॥
प्रग्रहो मण्डले त्रेधा निमित्ताच्चित्तवारणम्।
उत्तरोत्तरसन्देहजन्मतश्च निवारणा॥ ५॥
संस्कृतत्वेन संकल्प्य सम्पत् प्राप्तौ निवार्यते।
त्रैलक्षण्यान्यथाभावात्तद्भावात्तथागतः ॥ ६॥
सहेतुफलगाम्भीर्यदेशनास्मिन्युगाधमे ।
न निष्फला यतः सन्ति बोधिसत्त्वास्त्रयान्विताः॥ ७॥
शिक्षयोपासनात्पूर्वं कुशलस्यावरोपणात्।
शीलवन्तोऽन्यबुद्धेषु गुणवन्तश्च कीर्तिताः॥ ८॥

---

१. इस ग्रन्थ का पाठ वही है जो प्रोफेसर जी० तुची ने मा०बु०टे० भाग १ (से० आ० रो० ९) में रोम से १९५६ ई० में प्रकाशित किया था। कोष्ठान्तर्गत शब्द पाण्डुलिपि में लुप्त थे। उन्हें प्रो० तुची ने पूरा किया है। प्रो० तुची का संस्करण रोमन लिपि में है। देवनागरी संस्करण यहाँ पर प्रथम बार प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के अपूर्ण एवं त्रुटित श्लोकों का पुनः भोटपाठ से संस्कृत में पुनरुद्धार कर ग्रन्थ को पूर्ण किया गया है। पुनरुद्धार अंश को [ ] के भीतर रखा गया है।

सपुद्गलेषु धर्मेषु संज्ञाया विप्रहाणतः।
प्रज्ञावन्तश्च संज्ञाया अष्टधाष्टार्थभेदतः॥ ९॥
पृथग्भावेन सन्तत्या वृत्तेराजीवितस्थितेः।
पुनश्च गतिलीनत्वादात्मसंज्ञा चतुर्विधा॥ १०॥
सर्वाभावादभावस्य सद्भावान्नाभिलाप्यतः।
अभिलापप्रयोगाच्च धर्मसंज्ञा चतुर्विधा॥ ११॥
अधिमुक्तिवशात्तेषां भूतसंज्ञा प्रसादतः।
यथारुताग्रहात्सम्यग्देशिततत्वस्य चोद्ग्रहात्॥ १२॥
फलतो न मिता बुद्धैः प्रणिधिज्ञानलक्षिताः।
लाभसत्कारकामानां तद्वादविनिवृत्तये॥ १३॥
अस्थानादानुकूल्याच्च धर्मेष्वधिगमस्य हि।
कोलस्येव परित्यागो धर्मे सन्धिस्ततो मतः॥ १४॥
नैर्माणिकेन नो बुद्धो धर्मो नापि च देशितः।
देशितस्तु द्वयाग्राह्योऽवाच्योऽवाक्पथलक्षणात्॥ १५॥
ग्रहणदेशना चास्य नापार्था पु(ण्य) संग्रहात्।
पुण्यं बोध्यनुपस्तम्भाद् (उपस्[1]) तम्भाद् (द्वयस्य च)॥ १६॥
स्वाभाविकाप्तिहेतुत्वात्तदन्यस्य च जन्मनः[2]।
कैवल्याद्बुद्धधर्माणां अग्र्यत्वं पुण्य (साधनम्)॥ १७॥
अग्राह्यानभिलाप्यत्वं स्वफलानामनुद्ग्रहात्।
द्वयावरणनिर्मोक्षात्सुभूताव् अरणाद्वयम्॥ १८॥

---

१. मूल पाण्डुलिपि में पाठ 'द्वयस्तम्भाद्' है।

२. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'जन्मिनः'।

बुद्धदीपङ्कराग्राहाद्वाक्येनाधिगमस्य हि।
ततश्चाधिगमे सिद्धा अग्राह्यानभिलाप्यता॥ १९॥
ज्ञाननिष्यन्दविज्ञप्तिमात्रत्वात्क्षेत्रनोद्ग्रहः ।
अविग्रहत्वादग्रत्वादव्यूहं व्यूहता मता[1]॥ २०॥
सुमेरोरिव राजत्वे सम्भोग[2] नास्ति चोद्ग्रहः।
सास्रवत्वेन चाभावात्संस्कृतत्वेन चास्य हि॥ २१॥
बहुत्वभेदख्यात्यर्थं विशेषस्य च सिद्धये।
पौर्वापर्येण पुण्यस्य पुनर्दृष्टान्तदेशना॥ २२॥
द्वयस्य पात्रीकरणन्निष्यन्दत्वमहत्त्वतः।
संक्लेशस्य[3] हेतुत्वादधीनाभिभवनादपि॥ २३॥
तत्फलश्रेष्ठदुखत्वाद्दुर्लभार्थोत्तमार्थतः ।
ज्ञेयापारमितत्वाच्च परासाधारणत्वतः॥ २४॥
गाढगम्भीरभावाच्च परसूत्रविशिष्टतः।
महाशुद्धान्वयत्वाच्च पुण्यात्पुण्यं विशिष्यते॥ २५॥
सहिष्णुता च चर्यायां दुष्करायां शुभायतः।
तद्गुणापरिमाणत्वादग्रार्थेन निरुच्यते॥ २६॥
आत्मव्यापादसंज्ञाया अभावाद्दुःखता न च।
ससुखा करुणाभावाच्चर्याऽदुःखफला[4] ततः॥ २७॥

१. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'अव्यूहव्यहतात्मता'।
२. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'सम्भोग्ये'।
३. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'असत्क्लेशस्य'। जोशी पाठ- 'असंक्लेशस्य'। किन्तु ऊपर भोट पाठानुसार रखा गया है।
४. भोट पाठ में 'दुःखफला' है।

[1]चित्तात्यागाभिनिर्हारे यत्नः कार्यो दृढो[2] यतः।
क्षान्तिपारमिताप्राप्तौ[3] तत्प्रायोगिकेव च॥ २८॥
प्रतिपत्तिश्च सत्त्वार्था विज्ञेया हेतुभावतः।
सत्त्ववस्तुनिमित्तात्तु विज्ञेया परिवर्जिता॥ २९॥
नामस्कन्धाश्च तद्वस्तु तत्संज्ञापगमाज्जिने।
तदभावो हि बुद्धानां तत्त्वदर्शनयोगतः॥ ३०॥
फलाप्रतिष्ठितो मार्गस्तत्फलस्यापि कारणम्।
बुद्धानां भूतवादित्वात्तच्च ज्ञेयं चतुर्विधम्॥ ३१॥
प्रतिज्ञा हीनयानस्य महायानस्य देशना।
सर्वव्याकरणानां च न विसंवादिनी यतः॥ ३२॥
अप्राप्तेरानुकूल्याच्च न सत्या न मृषा मता।
यथारुतनिवेशस्य प्रतिपक्षेण देशना॥ ३३॥
[सदा सर्वत्र तथता तथाप्यस्या] अलाभता[4]।
अज्ञानात्सप्रतिष्ठेन ज्ञानादन्येन लाभता॥ ३४॥
तमः प्रकाशम् अज्ञानम् ज्ञानमालोकवन्मतम्[5]।
प्रतिपक्षविपक्षस्य लाभहान्यामुखत्वतः॥ ३५॥

---

१. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'चिन्तन्त्या'।

२. भोट पाठ में देशना अथवा सेवन है।

३. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'प्राप्ते'।

४. मूल पाण्डुलिपि में अनेक कारिकाओं के कुछ अंश लुप्त हैं। इसी कारण पाठ अपूर्ण और गुण चिह्न से अंकित है।

५. मूल पाण्डुलिपि में पाठ 'मतः' है।

यादृश्या प्रतिप(त्त्या) [च यादृशं लभते शुभम्।]
यत्कर्मिका च धर्मे[1] प्रतिपत्तिस्तदुच्यते॥ ३६॥
व्यञ्जने त्रिविधा धर्मधरत्वे श्रुतविस्तरे।
अर्थस्य परतोऽध्यात्ममाप्तौ श्रवणचिन्तनात्॥ ३७॥
[अनया त्वात्मपाचनसत्त्वान्तर] (परि)पाचने।
वस्तुकालमहत्त्वेन पुण्यात्पुण्यं विशिष्यते॥ ३८॥
अगोचरत्वं कैवल्यं महात्माश्रितता तथा।
दुर्लभश्रवता चैव धातुपुष्टिर् अनु (त्तरा)॥ ३९॥
[सद्धर्मधारणं चैव(पात्रा)पादम] (पात्र) ताश्रये।
शोधनावरणानां च क्षिप्राभिज्ञात्वमेव च॥ ४०॥
विचित्रलोकसम्पत्तिविपाकः सुमहान्नपि।
कर्माणि एतानि धर्मे प्रतिपत्तेर्मता (नि)[2]॥ ४१॥
[प्रतिपत्तिषु प्रत्यात्मं] (बोधिसत्)त्वकल्पना।
चित्तावरणमाख्यातं[3] यच्चित्तं अप्रतिष्ठिम्॥ ४२॥
पश्चाद्व्याकरणान्नो च चर्या दीपङ्करे परा।
बोधिस्तच्चर्यया तुल्या न स[त्यं कृतलक्ष्मतः]॥ ४३॥
[अनिमित्तस्वभावेन] न मृषा परिदीपिता।
धर्मास्ततो बुद्धधर्माः सर्वेऽभावस्वलक्षणाः[4]॥ ४४॥

---

१. मूल पाण्डुलिपि में पाठ 'धर्म्ये' है।

२. प्रोफेसर तुची का सुझाव है कि 'मतानि' के पश्चात् 'बै', 'च' अथवा ऐसा कोई शब्द जोड़ना जो उचित प्रतीत होता है।

३. भोट पाठ में 'चित्तप्रतिपत्तिमाख्यातं'।

४. भोट पाठ में सुलक्षणाः।

धर्मकायेन बुद्धस्तु मतः (सः) पुरुषोपमः।
निरावरणतः [कायः सर्वत्र खलु गच्छति]॥ ४५॥
(गुणमहा)त्म्यतश्चापि महाकायः स एव हि।
अभावकायभावाच्च अकायोऽसौ निरुच्यते॥ ४६॥
धर्मधातावकुशलः सत्वनिर्वापणे मतिः।
क्षेत्राणां शोधने चैव [ह्येते चित्तविपर्ययाः]॥ ४७॥
(सत्त्वानां बोधिसत्त्वा) नां धर्मात् यश्च(नैरात्मकान्)।
बुद्धयाऽधिमुच्यतेऽनार्यार्यो धीमान स कथ्यते॥ ४८॥
नोपलम्भेऽपि धर्माणां चक्षुर्न हि न विद्यते।
बुद्धानां पञ्चधा त (च्च वितथार्थस्य दर्शनात्)॥ ४९॥
(नानावितथवि)[१] ज्ञप्तेः स्मृत्युपस्थानवर्जनात्।
निराधारप्रबन्धोऽस्या वितथाऽतो निरुच्यते॥ ५०॥
ज्ञानस्याधारतो ज्ञेया पुण्ये वितथता न च।
ततः पुण्यनिमित्तं हि पुन (र्दृष्टान्तकीर्तनम्)॥ ५१॥
(न धर्मकायनिष्पत्तिर् अनु) व्यञ्जनमुच्यते।
न च लक्षणसम्पत्तिस्तदकायत्वतो मता॥ ५२॥
धर्मकायाविनिर्भागान्न द्वयं न तथागतः।
सम्पत्तिरुच्यते भूयो द्वयं नास्त्यस्तिता ततः॥ ५३॥
[बुद्धवद् देशनाऽसत्त्वात् देशनाभ्यां प्र] (क)ल्पिता।
धर्मकायाविनिर्भागाद्देशनाप्यस्वलक्षणा ॥ ५४॥

१. प्रोफेसर तुची के रोमन संस्करण, मा० बु० टे० भाग १, पृ० ७८, में विथत० है, जो सम्भवतः मुद्रण की त्रुटि है; परन्तु यदि यह मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि होती तो उनके 'एडेन्डा एट कारिजेन्डा' में सुधार हो जाना चाहिये था। मैने अपनी ओर से 'वितथ' पाठ प्रस्तुत किया है।

देश्यदैशिकगाम्भीर्यश्रद्धा[1] न च न सन्ति हि।
न सत्त्वा नापि चासत्त्वास्तेऽनार्याय[अन्विताः खलु]॥ ५५॥
[अणुमात्रधर्माभावात्]ज्ञेया बोधिरनुत्तरा[2]।
न वृद्धया धर्मधातौ हि शुद्धिसाम्यात्स्वलक्षणात्[3]॥ ५६॥
उपायानुत्तरत्वाच्च सास्त्रवत्वादधर्मतः।
शुभा न धर्मा [धर्मश्च तत एव शुभो मतः]॥ ५७॥
(नैव?) चाव्याकृतत्वेऽपि देशनाऽप्राप्तये मता।
धर्मरत्नं ततश्चैकं रत्नादन्याद्विशिष्यते॥ ५८॥
संख्याप्रभवजातीनां सम्बन्धस्य विशेषणे।
[परीक्ष्य सर्वलोकेऽपि दृष्टान्तार्हो न] (लभ)यते॥ ५९॥
समत्वाद् धर्मधातोश्च न सत्त्वा मोचिता जिनैः।
सहनाम्ना यतः स्कन्धा धर्मधात्वबहिर्गताः॥ ६०॥
आत्मग्राहसमो दोषस[तत्र धर्माग्रहो यदि]।
[विमोच्यसत्त्व]ग्राहे हि अग्राहग्राहता मता॥ ६१॥
न चैव रूपकायेन सोऽनुयस्तथागतः।
धर्मकायो यतश्चक्रवर्ती माभूत्तथागतः॥ ६२॥
न च लक्षणवैपाक्यपु(ण्य) [सम्पत्तितो मतः]।
(धर्मकाय)स्य लाभो हि उपायो यद्विलक्षणः॥ ६३॥

---

१. जोशी पाठ में गाम्भीर्यत्रद्धा, ऊपर भोट पाठ के अनुसार रखा गया है।

२. मूल पाण्डुलिपि में पाठ 'बोधेर' है।

३. भोट पाठ शुद्धिश्रवणात्स्वलक्षणात्।

रूपानुश्रवमात्रेण न बुद्धज्ञः पृथग्जनः।
तथताधर्मकायो हि यतोऽविज्ञानगोचरः॥ ६४॥
न च पुण्यस् [य विच्छेदो नोच्छेदस्तत्फलस्य वा]।
क्षान्तिलाभेऽपि नोच्छेदो निर्मलस्यास्य[1] लाभतः॥ ६५॥
पुनः पुण्यनिमित्तं हि तस्माद्दृष्टान्तदेशना।
तत्पुण्यस्याऽ[2]विपाकत्वान्नोद्ग्रहः सपरिग्रहः॥ ६६॥
तन्निर्माणफलं तेषा(म् पुण्य) [नां सत्त्वदापनम्]।
अनाभोगेन यत्कर्म बुद्धाः कुर्वन्ति दिक्षु च॥ ६७॥
गत्यादयस्तु निर्माणैर्बुद्धास्त्वविचलाः सदा।
धर्मधातौ च तत्स्थानं नैकत्वान्यत्वतो मतम्॥ ६८॥
रजोमषीक्रिया धातोर्दृ(ष्टान्तस्तस्य द्योत)कः।
मषीकर(ण)ता क्लेशक्षयस्येह निदर्शनम्॥ ६९॥
असञ्चयत्वा[3] पिण्डत्वम् अनेकत्वनिदर्शनम्।
संहतस्थानता तस्मिन्नान्यत्वे[4] च निदर्शनम्॥ ७०॥
व्यवहारमात्रताया (बाला)नामुद्ग्रहोऽन्यथा ।
द्वयाभावान्न बोध्याप्तिः प्रहाणादात्मधर्मयोः॥ ७१॥
तस्माद्दृष्टिरदृष्टिश्च नैरर्थयाभूतकल्पतः।
सूक्ष्ममावरणं ह्येतत् तथा ज्ञानात्प्र(हीयते)॥ ७२॥

---

१. भोट पाठ निर्मलास्यदृष्टान्तस्य।
२. मूल पाण्डुलिपि में पाठ 'तत्पुण्यस्य विपाक॰' है।
३. मूल पाण्डुलिपि- पाठ 'असञ्चयत्वात्' है।
४. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'तस्मिन्नर्यत्वे' है।

ह. नं. 30462

ज्ञानद्वयसमाधानप्रहेयं तच्च देशितम्।
निर्माणैः कशणात्पुण्यं तद्बुद्धानां न नाक्षयम्॥ ७३॥
निर्मितोऽस्मीति चात्मानं काशयन्तस्तथागताः।
प्रकाशयन्ति ना(त्मानं) तस्मात् सा काशना सती॥ ७४॥
संस्कारो न तथा नान्यं निर्वाणम् हि तथागते।
नवधा सम्भूतस्येह सम्यग्ज्ञानपरीक्षणात्॥ ७५॥
दृष्टिर्निमित्तं[1] विज्ञानं प्रतिष्ठादेहभोगता।
अतीतं वर्तमानं च परीक्ष्यं चाप्यनागतम्॥ ७६॥
लक्षणस्योपभोगस्य[2] प्रवृत्तेश्च परीक्षणात्।
निर्मलां (तेषु) वशितां संस्कारेषु समाप्नुते॥ ७७॥

त्रिशतिकायाः प्रज्ञापारमिता(याः) कारिकासप्ततिः॥ समाप्ता॥

कृतिरियम् आर्यासङ्गपादानामिति॥

■

---

१. मूल पाण्डुलिपि-पाठ 'दृष्टिं निमित्तं' है।

२. भोट पाठ 'लक्षणस्य विपरीतस्य'।

त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति

हिन्दी अनुवाद

त्रिशतिका प्रज्ञापारमिता कारिकासप्तति

(१) मानव 'शरीर' और इससे सम्बन्धित अन्य वस्तुयें ('परिग्रह') परम अनुग्रह स्वरूप हैं। (क्यों कि मानव शरीर में बुद्ध-गुणों का विकास होता है अतएव यह एक दुर्लभ उपलब्धि[1] है जो बोधिसत्त्वों को तथागत के परमानुग्रह से हुई)। 'परीन्दनया' से तात्पर्य यह है कि बोधिसत्त्व ने जो कुछ प्राप्त कर लिया है, और जो अभी प्राप्त करना है, इन दोनों को वह खोने नहीं पाता (क्योंकि वह न महायान को त्यागता है और न इसमें अग्रसर होने का प्रयत्न छोड़ता है[2])(दूसरा अध्याय समाप्त)।

(२) दूसरों की भलाई करने का जो अभिप्राय ('आशय') उसके चित्त में प्रकट होता है (और जिसका उद्देश्य बोधि-लाभ है), वह गुणों से परिपूर्ण[3] है। वह चतुर्विध है—(क) 'विपुल' (क्यों बोधिसत्त्व के चित्तोत्पाद का उद्देश्य सभी प्राणियों को निर्वाण तक ले जाना है), (ख)'परम' (इसलिये कि उसका उद्देश्य सभी प्राणियों को निरुपधिशेष निर्वाण की प्राप्ति करवाना है), (ग) 'अत्यन्त' (क्योंकि सत्यत: कोई भी प्राणी विद्यमान नहीं है), (घ)'अविपर्यास' (क्योंकि यदि बोधिसत्त्व को विपर्यास[4]

---

१. द्र० बोधिचर्यावतार, १.४—क्षणसंपदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः॥
तु० शिक्षासमुच्चय, (सं० बेन्डाल) पृ० २ प्रज्ञाकरमति पृ० ५; विवेकचूड़ामणि, ३; तथा शिक्षा समुच्चय, पृ० ५; — 'दुर्लभ सत्त्व पृथग्जनकाया।'

२. असङ्ग की टीका (कारिका सप्तति) दूसरे अध्याय से प्रारम्भ होती है।

३. द्र० गण्डव्यूहसूत्र, बौ० सं० ग्र० ५, पृ० ३९६ बोधिचित्तं हि कुलपुत्र बीजभूतं सर्वबुद्धधर्माणाम्। यह प्राचीन वाक्य शिक्षा स० पृ० ५, प्रज्ञाकरमति पृ० ११ भावनाक्रम (मा० बु० टे० भाग २), पृ०१९२; तथा अभिसमयालंकार-आलोक-व्याख्या (बौ० सं० ग्र० ४) पृ० २८३ में उद्धृत किया गया है।

४. विपर्यास (पाली विपल्लास) का अर्थ है मिथ्यादृष्टि। जैसे दु:ख को सुख समझना। इस विषय पर द्र० प्रसन्नपदा, अध्याय २३; डॉ० कॉन्ज, बुद्धिस्ट थाट इन इण्डिया, लन्दन १९६२, पृ० ४०-४१-२७६।

हो अर्थात् सत्कायदृष्टि, याने सत्त्वों की सत्ता है, इस प्रकार का विचार हो तो वह बोधिसत्त्व नहीं कहा जा सकता है) उपर्युक्त के अतिरिक्त यह आशय (=बोधिचित्त) इस यान (पारमितानय, महायान) में स्थिर रखता है। (तीसरा अध्याय समाप्त)।

(३) 'दान' के उल्लेख द्वारा छः पारमिताओं (दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान व प्रज्ञा) की ओर संकेत किया गया है। क्योंकि सभी पारमिताओं में (दान) देने की बात समान रूप से पाई जाती है, यह दान (क) भोग्यवस्तुओं का, (ख) अभय का अथवा (ग) धर्मोपदेश द्वारा प्रज्ञापारमिता का हो सकता है[१]। प्रथम प्रकार के दान में केवल एक दान देना मात्र है; दूसरे प्रकार के (दान के) अन्तर्गत दो बातें हैं: शीलचर्या और क्षान्ति, तीसरे प्रकार के अन्तर्गत तीन बातें (पारमितायें) सम्मिलित हैं—वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा। इस प्रकार का यह मार्ग अप्रतिष्ठित कहा है।

(४-५) इन दो कारिकाओं में आचार्य ने बताया है कि दान किस प्रकार देना चाहिये और मन का निग्रह किस प्रकार करना चाहिये। बोधिसत्त्व को आत्मभाव के प्रति राग नहीं होना चाहिये। जो कुछ पुण्य किया हो उसके बदले में (लाभ-सत्कारादि की) कोई आशा नहीं रखनी चाहिये[२]। दूसरे शब्दों में दो बातें वर्जित हैं (१) आत्मभावानुराग के कारण दान करना, और (२) सम्यग्व्यायाम के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों से दान करना। निम्नलिखित बातें मन के निग्रह के समय विचारणीय हैं। (क) यह ध्यान में रखना कि दान-कार्य, दान-पात्र, और दाता तीनों ही समान रूप से सत्यतः अवास्तविक है, (ख) मन को उन कल्पनाओं से दूर रखना जो गुणों को किसी वस्तु विशेष से ऐसे सम्बन्धित रखती है जैसे कि वे वस्तुएं सत्य हों, और (ग) सूत्र में कही गई बातों के विषय में सम्भाव्य सन्देहों का निवारण करना। (चौथा अध्याय समाप्त)।

(६) कोई व्यक्ति प्रश्न कर सकता है कि यदि धर्मों की सत्ता न मानते हुये दान किया जाय तो किस प्रकार कोई बुद्धत्व प्राप्ति के लिए दान कर सकता है? इसीलिए सूत्र में कहा है: तत्किं मन्यसे सुभूते लक्षणसम्पदा तथागतो द्रष्टव्यः? कोई ऐसा सोच

---

१. द्र० धर्मसंग्रह, १०५।

२. द्र० शिक्षासमुच्चयकारिका, १५-१६; धर्मदूत वर्ष २९, मई-जून १९६४, पृ० १८।

सकता है कि बुद्धत्व एक संस्कृत धर्म है (जो दान-पुण्य के फलस्वरूप है), इस प्रकार की कल्पना का निराकरण करने के लिये ही यहां पर (सूत्र में) कहा गया है कि (महापुरुष के) लक्षणों के कारण कोई तथागत नहीं होता, ये लक्षण निर्माणकाय में पाये जाते हैं। परन्तु धर्मकाय असंस्कृत है, इसमें कोई लक्षण नहीं होते। इसीलिये सूत्र में कहा है : या सा लक्षणसम्पत् सैवालक्षणसम्पत्। संस्कृत धर्म के तीन गुणों (उत्पत्ति, स्थिति और विनाश) में और बुद्धत्त्व में कोई समता नहीं है। तथागत इनसे भिन्न हैं, बुद्ध में उक्त तीन लक्षणों का अभाव होता है। (पांचवा अध्याय समाप्त)।

(७) यह देशना और कारण-कार्य का नियम (जोकि इस उपदेश में निहित है) गम्भीर होने पर भी इस अधम युग में भी निष्फल नहीं है। क्योंकि इस युग में भी (सूत्र में कहे गये) तीन गुणों (गुणवन्तः शीलवन्तः प्रज्ञावन्तः) से युक्त बोधिसत्त्व हैं।

(८) चूँकि, अपने पूर्व जन्मों में इन बोधिसत्त्वों ने शिक्षा-उपासनादि द्वारा बुद्धों की सेवा की है, और (अन्तिम बुद्ध से पहले के) बुद्धों के समक्ष कुशल कार्यों का बीजारोपण किया है, अतएव इन्हें शीलवान और गुणवान कहा गया है।

(९) वे (बोधिसत्त्व) प्रज्ञावान भी है क्योंकि उन्होंने पुद्गलों और धर्मों में आत्मा की धारणा का सर्वथा नाश कर दिया है, वे धर्मनैरात्म्य और पुद्गलनैरात्म्य को जानते हैं अतः प्रज्ञावन्त कहे गये हैं। उक्त धारणा अष्टविध है— चतुर्विध धारणा-आत्मसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा, जीवसंज्ञा, पुद्गलसंज्ञा और चतुर्विध धारणा-धर्म, अधर्म, संज्ञा, और असंज्ञा से सम्बन्धित[१]।

(१०) प्राणियों में आत्म-तत्त्व विषयक कल्पना चतुर्विध है, इसे चार प्रकार से कल्पित किया जा सकता है—(अ) व्यक्तित्व के पांच अंगों (स्कन्धों) से भिन्न (आत्मा), (आ) जीवनसन्तान (सत्त्व), (इ) (जन्म से) मृत्यु तक का जीवन (जीव), तथा (ई) नवीन गतियों को प्राप्त करने की इच्छा (पुद्गल)।

---

१. देखिये ऊपर वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र।

(११) (यद्यपि सत्यतः किसी प्रकार की भी धर्मसंज्ञा असम्भव है, परन्तु फिर भी यह) धर्मों से सम्बन्धित कल्पनायें भी चतुर्विध हैं—(अ) सभी धर्म असत् हैं, (ग्राहक-ग्राह्य की धारणा मृषा है, और इसके प्रतिकूल, अधर्म की कल्पना असम्भव है)। (आ) (क्योंकि) यह अ-सत् (शून्यता के रूप में) सत है (अतएव संज्ञा असम्भव है)। (इ) (क्योंकि) कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके विषय में कुछ कल्पित किया जाय, (असंज्ञा भी असम्भव है), (ई) (क्योंकि) व्यावहारिक जीवन में प्रत्येक वस्तु को किसी न किसी संज्ञा से अभिहित किया जाता है[१]।

(१२) निम्नलिखित चार कारणों से बोधिसत्त्व प्रज्ञावन्त कहलाते हैं और उन्हें भूतसंज्ञा (सत्य जैसा है उसका यथावत् ज्ञान) अधिगत होती है:—(अ) सूत्रों को सुनकर उन पर श्रद्धा और विश्वास (आ) (सूत्रों को सुनकर) उनकी प्रसन्नता, (इ) उनके द्वारा सूत्रों के केवल शब्दों के अनुसार अर्थ न समझना, और (अपितु) (ई) सूत्रों में उपदिष्ट अर्थ को ठीक-ठीक समझना)।

(१३) (सूत्र में ऐसे बोधिसत्त्वों का उल्लेख हुआ है जिन्हें तथागत जानते हैं और जिनके पुण्यों का फल भी तथागत ने बुद्ध-चक्षु से देखा है। भाष्यकार असंग इसी तथ्य का स्पष्टीकरण करता है—) उन बोधिसत्त्वों के गुणों को बुद्ध ने उनके परिणामों को देखकर अनुमान द्वारा नहीं जाना है, वरन् उनको बुद्ध ने मूल प्रणिधि के अनुसार और अपने विशिष्ट ज्ञान (बुद्धचक्षु)द्वारा प्रत्यक्ष देखा है। बुद्ध ने सूत्र में ऐसा इसलिये कहा है ताकि बहुत से लोग (जो सन्त होने का दावा करते हैं) लाभ और सत्कार पाने की इच्छा से इस प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति का ढोंग न कर सकें।

(१४) सूत्रों में उपदिष्ट धर्म को समझने का अर्थ इस प्रकार है—धर्म को समझ लेने पर (किसी को भी) उस पर निर्भर (आश्रित) नहीं हो जाना चाहिए परन्तु उसके

---

१. तु० मध्यान्तविभागटीका [एस० यामागुची का संस्करण, नागोया, १९३४]

१.१— अभूतपरिकल्पोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते।

शून्यता विद्यते तत्र तस्यामपि स विद्यते॥

द्र० जी० तुची, डॉक्ट्रिन्स आफ मैत्रेय (नाथ) एण्ड असंग, कलकत्ता १९३०, पृ० ३१-३५।

अनुकूल (कार्य करते) रहना चाहिये। अतएव धर्म को उसी प्रकार ग्रहण और परित्यक्त करना चाहिए जिस प्रकार बेड़े को (नाव को) (नदी के पार जाने के लिये) पकड़ा और (उस पार पहुँचने पर) परित्यक्त किया जाता है। इसीलिये कहा है[१] कि धर्मोपदेश की भाषा में गूढ़ार्थ संकेतित होता है जिसके अनुसार धर्म को ग्रहण भी करना चाहिए और धर्म का परित्याग भी)। (छठा अध्याय समाप्त)।

(१५) प्रश्न किया जा सकता है : यदि बुद्ध को उनके शारीरिक लक्षणों से नहीं देखा जा सकता, जैसा कि पहले कहा गया है, क्योंकि बुद्धत्त्व असंस्कृत है, तो सूत्रों और शास्त्रों में यह क्यों कहा गया है कि तथागत ने सम्यक् सम्बोधि अधिगत करके धर्मोपदेश किया? यह प्राचीन मत इस सूत्र की देशना (न कोई सम्यक्सम्बोधि ही अधिगत की जा सकती है और न कोई धर्मदेशना ही सम्भव है) के विरुद्ध है।[इस विषय में भाष्यकार कहता है] नैर्माणिक होने से निर्माणकाय को वास्तविक बुद्ध नहीं माना जा सकता और इस (काय) के द्वारा कोई देशना भी नहीं हुई है। जो देशना हुई है उसमें कहा गया है कि कोई भी धर्म (धर्म अथवा अ-धर्म रूप में) ग्राह्य नहीं है, अतएव यह अकथनीय (अवाच्य) है क्योंकि यह शब्दों के माध्यम का अतिक्रमण करता है। (सातवां अध्याय समाप्त)।

(१६) (यद्यपि न धर्म ग्राह्य है और न इसका प्रकाशन हो सकता तथापि यह असत् नहीं है, वरन् सत् है) अतएव धर्म को स्वयं अधिगत करना और दूसरों के लिए इसे प्रकाशना निष्फल नहीं होता, इसके द्वारा महान् पुण्य संग्रह होता है, यह पुण्यमय होता है जबकि इसे बोधि-स्तम्भ के रूप में न समझा जाय, (क्योंकि जहां सूत्र में 'पुण्यस्कन्ध' कहा गया है वहां स्कन्ध का अर्थ उस कन्धे अथवा स्तम्भ से नहीं है जो भार सहन करता है, इसका अर्थ ढेर अथवा राशि अथवा संग्रह है)। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि (धर्म को अधिगत करना और उसकी देशना करना) दोनों बोधि के स्तम्भ हैं।

(१७) यह पुण्यार्जन (जो धर्म-ग्रहण और धर्मोपदेश से होता है—'गाथां उद्गृह्य परेभ्यो देशयेत्'—) उस हेतु की चोटि स्वरूप है जिसके कारण (बोधिसत्त्व)

---

१. देखिये ऊपर मूल ग्रन्थ अ० ६ 'कोलोपमं.......' आदि।

स्वाभाविककाय (=धर्मकाय, बोधि) को प्राप्त होता है। यह असंस्कृत अर्थात् अजन्मा है। इससे भिन्न जो दूसरी काय (निर्माणकाय) है वह इसी से (धर्मकाय से) उद्भूत हुई है। तीसरी जो काय (सम्भोगकाय) है वह विशिष्ट बुद्ध-धर्मों से युक्त होती है। (आठवां अध्याय समाप्त)।

(१८) (वज्रच्छेदिका में कहा गया है कि सभी सन्त, योगी और अर्हत् 'असंस्कृत-प्रभावित' होते हैं। परन्तु (अन्यत्र) शास्त्रों में कहा गया है कि श्रोतापन्न, सकृदागामी आदि अपनी चर्यानुसार फल प्राप्त करते हैं। यह दोनों कथन एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि वास्तव में) कोई धर्म न पकड़ में आ सकता है और न शब्दों द्वारा उसकी चर्चा की जा सकती है, (श्रोतापन्न से अर्हत् तक कोई भी) किसी फल को अपने (धर्माचरण योगाभ्यासादि के) फल के रूप में नहीं पकड़ सकता (क्योंकि स्वभाव से सभी सत्त्व असंस्कृत-प्रभावित हैं और ज्यों ही वे यह समझते हैं कि उन्होंने अमुक फल पा लिया है त्योंही ही उन्हें आत्म-ग्राह हो जाता है)। चूँकि सुभूति क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरण दोनों से मुक्त है(अरणाविहारी कहलाता है) अतएव दोनों (आवरण) उसमें अनुपस्थित हैं (नवां अध्याय समाप्त)।

(१९) (उपर्युक्त कथन से उस शास्त्रीय परम्परा का विरोध होता प्रतीत होता है जिसके अनुसार शाक्यमुनि बुद्ध ने दीपंकर बुद्ध से धर्म ग्रहण किया था। परन्तु यह विरोध असत् है, क्योंकि सूत्र में यह कह दिया गया है कि ऐसा कोई धर्म है ही नहीं जिसे तथागत ने दीपंकर बुद्ध से प्राप्त किया हो)। तथागत (शाक्यमुनि) ने (सम्बोधि) प्राप्त करने के लिए दीपंकर बुद्ध से वाक्य रूप में कोई उपदेश ग्रहण नहीं किया था। अतएव यह सिद्ध है कि (सम्बोधि की) प्राप्ति में कुछ न ग्रहण हुआ और न कुछ शब्दों द्वारा व्यक्त ही हुआ।

(२०) बुद्ध-क्षेत्रों की प्राप्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि ये (बुद्ध-क्षेत्र) केवल विज्ञप्तिमात्रता के नामान्तर मात्र है। (परमार्थ की दृष्टि से) इनमें भौतिक विन्यास नहीं होता, और (क्षेत्रों में) ये अग्रणी हैं, इसी कारण इन बुद्ध-क्षेत्रों के व्यूहों को अव्यूह कहा जाता है।

(२१) जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने आपको पर्वतराज नहीं समझता उसी प्रकार (सम्भोगकाय) बुद्ध भी अपने को पूर्णता की अवस्था—सम्भोगकाय—में नहीं

समझते (क्योंकि यह अवस्था सभी प्रकार के विकल्पों से परे है)। वास्तव में सम्भोगकाय एक ऐसी अवस्था है जिसमें सर्व प्रकार के आस्रवों व संस्कृतों (कर्मों अथवा कर्मविपाकों) की सर्वथा अनुपस्थिति होती है। (क्योंकि यह किसी बाह्य कारण पर निर्भर नहीं रहती है)। (दशवां अध्याय समाप्त)।

(२२) (सूत्र में पुनः पुण्यविषयक चर्चा हुई है) जिससे इसकी विशेषता और इसकी महानता की विविधता स्पष्ट हो जाय। अतएव पुनः देशना हुई है जिसमें उदाहरण द्वारा यह बताया गया है कि पहले उपदेश से यह दूसरा उपदेश महत्तर है। (इस दूसरे उपदेश में बुद्ध ने श्रेष्ठतर पुण्यों की चर्चा की है) (ग्यारहवां अध्याय समाप्त)।

(२३-२५) सभी दानों में धर्म-दान श्रेष्ठ है क्योंकि (अ) यह दो को पवित्र बनाता है—उस पृथ्वी प्रदेश को जहां पर धर्मोपदेश होता है, और उस व्यक्ति को जो धर्म का प्रकाशन करता है।(बारहवां अध्याय समाप्त)। (आ) जो पुण्यफल इससे प्रकट होते हैं वे अत्यन्त महान होते हैं (क्योंकि वास्तव में कोई धर्म कभी उपदिष्ट नहीं हुआ है)। (इ) यह (धर्मदान) असंक्लेश (क्लेशविहीन) है अर्थात् धर्मदान किसी भी क्लेश का कारण नहीं होता। यह सभी क्लेशों का निवारण करता है। (ई) इसका पुण्य अन्य लघुत्तर पुण्यों से बढ़कर है। (क्योंकि इसका उद्देश्य (महापुरुष के) लक्षणों को प्राप्त करना न होकर सम्यक्सम्बोधि प्राप्त करना है)। (उ) साधारण गुणों के अभ्यास के फलस्वरूप व्यक्ति को दुःख ही मिलते हैं (क्योंकि साधारण दान के फल के रूप में व्यक्ति को ऐसे सुख प्राप्त होते हैं जिन्हें शरीर द्वारा ही भोगा जा सकता है, और आगामी जन्मों में शरीर धारण करना वस्तुतः दुःख ही है), परन्तु धर्मोपदेश करने के परिणामस्वरूप होने वाले पुण्यों की सहायता से हम असंख्य देहों का परित्याग कर सकते हैं। (तरहवाँ अध्याय समाप्त)। (ऊ) इसके लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन है और इसका अर्थ उत्तम है। (ए) इसके विषयों की सीमाओं को जानना असम्भव है। (ऐ) इसकी शिक्षायें असाधारण हैं (जो अन्य सम्प्रदायों में अनुपलब्ध हैं) (ओ) यह प्रगाढ़ और गम्भीर है। (क्योंकि इसमें किसी प्रकार के विपर्यास के लिए स्थान नहीं है, ग्राहक-ग्राह्य अथवा अस्तित्व-नास्तित्व सम्बन्धी कोई भी मिथ्या दृष्टि इस

सिद्धान्त में नहीं हो सकती, ऐसा होते हुए भी बोधिसत्त्व त्रिविध मानसिक भयों से मुक्त रहता है)। (औ) यह (सूत्र) अन्य पारमिताओं से श्रेष्ठ है। (अं) इसका तथागतों के उपदेश से महान् और पुनीत सम्बन्ध है। उपर्युक्त कारणों से प्रज्ञापारमिता के अभ्यास का पुण्य अन्य सभी प्रकार के कार्यों से श्रेष्ठतर और विशिष्ट है।

(२६-२७) (बोधि प्राप्ति के लिए पारमितानय का) यह अभ्यास (यद्यपि) दुष्करचर्या है (तथापि) इसे सहन करने की क्षमता सर्वथा शुभ और कल्याणमय कही गई हैं। क्योंकि यह गुणों से परिपूर्ण है, इससे उद्भूत होने वाले गुणों की गणना करना असम्भव है, इसमें आत्मसंज्ञा अथवा व्यापादसंज्ञा के लिए कोई स्थान नहीं है, और इस पथ में दुःख की कोई सम्भावना नहीं है। (वास्तव में) यह मार्ग सुख पूर्ण है और करुणाभ्यास के कारण परिणाम में कभी दुःख नहीं होता।

(२८) (प्रत्येक बोधिसत्त्व प्राणियों की मुक्ति और तृप्ति के लिए सम्यक्सम्बोधि का साक्षात्कार करने का प्रण लेता है। उस प्रण का परित्याग नहीं करना चाहिये अतएव बोधिसत्त्व को) दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये कि कहीं बोधिचित्त का परित्याग न होने पावे। इसी प्रकार क्षान्तिपारमिता में पूर्णता की प्राप्ति के लिए सचेष्ट रहना चाहिए और एतदर्थ सभी उपायों को करना चाहिए।

(२९) प्रतिपत्ति (सम्यक् चर्या) का अभ्यास प्राणियों के हित के लिए होने से उपयोगी समझना चाहिए। परन्तु यह सदा ध्यान में रखना आवश्यक है कि उन प्राणियों के वस्तु-सत् (वास्तविक) होने की कल्पना परिवर्जित है।

(३०) क्योंकि जिसे प्राणी अथवा सत्त्व कहते हैं वह यथार्थ में स्कन्धों (के संघात) का नाम ही है (और कुछ नहीं)। (अतएव सत्त्वसंज्ञा वस्तुतः असंज्ञा ही है) बुद्धों और तत्त्वदर्शियों में न आत्मसंज्ञा होती है और न धर्मसंज्ञा ही, अतएव यह दोनों (आत्मा और धर्म) बुद्धों की दृष्टि में अविद्यमान है।

(३१) यह (प्रज्ञापारमिता रूपी) मार्ग (बुद्धत्व रूपी) फल की भावना पर आलीन (प्रतिष्ठित) नहीं है (यदि ऐसा होता तो बुद्धत्व भी संस्कृत की कोटि में रहता जो कि असंस्कृत है), परन्तु फिर भी यह मार्ग ही बुद्ध-पद-प्रासि का कारण है। क्योंकि

बुद्ध ही इसके आख्याता हैं और बुद्ध सदैव सत्य कहते हैं। उनका यह सत्यवचन चतुर्विध है :

(३२) (क) प्रतिज्ञा अर्थात् बुद्ध होने का निश्चय, (ख) हीनयान की देशना, (ग) महायान की देशना, और (घ) वे सभी कथन जो बुद्धों ने भविष्यवाणी (व्याकरण) के रूप में कहे हैं और जो कभी असत्य नहीं सिद्ध होते। (यह कारिका सूत्र के 'भूतवादी, सत्यवादी, तथावादी, अनन्यथावादी' शब्दों की व्याख्या करती है)। (परन्तु यह कैसे सम्भव है कि तथागत की देशना न सत्य है और न मृषा)?

(३३) चूँकि इसके द्वारा कोई ऐसी वस्तु प्राप्त नहीं होती जो यथार्थ में सत् हो (क्योंकि यथार्थ में इन शब्दों के पीछे कोई सत् वस्तु है ही नहीं) अतः यह देशना सत्य नहीं कही जा सकती। परन्तु इसको मृषा भी नहीं कहा जा सकती क्योंकि यह बोधि प्राप्ति के अनुकूल है। (तथागत ने) इसे इस प्रकार उपदेशा है जिससे कि यह उन विचारों का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करे जो शब्दों या नामों का शाब्दिक अर्थ लगाने को सदैव ऐसे उद्यत रहते हैं मानो कि उन शब्दों की यथार्थ सत्ता ही हो।

(३४) यद्यपि तथता सदा और सर्वत्र (व्याप्त) है, परन्तु उनके द्वारा इसका साक्षात्कार नहीं हो पाता अज्ञान के कारण जिनका मन कहीं (किसी वस्तु पर) प्रतिष्ठित रहता है। दूसरी ओर, वे लोग इसका प्रकाश प्राप्त करते हैं सम्यग्ज्ञान के कारण जिनका मन कहीं प्रतिष्ठित नहीं रहता है।

(३५) अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान प्रकाश के समान कहा गया है। (मिथ्या कल्पनायें अन्धकार स्वरूप हैं और सम्यग्ज्ञान प्रकाशमय सूर्य के समान है)। इनका प्रतिपक्ष और विपक्ष क्रमशः लाभदायक (सत्य की प्राप्ति में सहायक) और हानिकारक (सत्य की अनुपलब्धि में सहायक) होता है।

(३६) यहाँ पर (सूत्र में) यह बताया गया है कि किस प्रकार की प्रतिपत्ति (सम्यक् चर्या) से कौन से पुण्यों की प्राप्ति होती है, और जो विशेषतायें इस धर्म की प्रतिपत्ति के अन्तर्गत हैं वह भी बतायी गयी है।

(३७) (सम्यक् चर्या=प्रतिपत्ति) विभिन्न प्रकार के वाक्यों द्वारा (सूत्र में) प्रतिपादित है। यह (मुख्य रूप से) त्रिविध है—(क) धर्म को धारण करना, (ख) धर्म में पण्डित (बहुश्रुत) होना, और (ग) धर्म का प्रसार करना। इसके गूढ़ अर्थ को समझने के दो मार्ग हैं— दूसरों से अथवा स्वयं-अर्थात् विद्वानों से धर्मश्रवण करके तथा स्वयं ध्यान करके इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(३८) धर्म-धारण से सम्बन्धित प्रतिपत्ति (कुलपुत्र में) आध्यात्मिक वातावरण को परिपक्व करती है, और दूसरों के लिए धर्म का प्रकाशन दूसरों में आध्यात्मिक दृष्टि का विकास करता है। अतएव पहले प्रकार का पुण्य दूसरे प्रकार के पुण्य से श्रेष्ठ है, क्योंकि इसको सम्पन्न करने में बड़ा समय लगता है और यह वास्तव में महान है। (चौदहवां अध्याय समाप्त)।

(३९) (ऊपर ३६वीं कारिका में इस धर्म-चर्या (प्रज्ञापारमिताभ्यास) से सम्बन्धित विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है। नीचे की तीन कारिकाओं में इन्ही विशेषताओं की चर्चा की गई है)। यह (क) अगोचर है, अर्थात् सामान्य जनों की पहुँच के बाहर, 'अचिन्त्य है'। यह (ख) कैवल्य है, अर्थात् श्रावकों (की चर्चा) से भिन्न, 'अतुल्य' है। यह (ग) महात्माश्रित है, अर्थात् महासत्त्वों, बोधिसत्त्वों (जो अग्रयान=महायान के पथिक हैं) द्वारा अपनाया गया (धर्म) है। इसका (घ) श्रवण दुर्लभ है (न हि शक्य श्रोतुम्)। और यह (ङ) पुण्यों की अनुत्तर वृद्धि करने की क्षमता रखता है।

(४०) (च) अनुत्तर धर्म को धारण करने की क्षमता रखता है, (छ) जहां पर धर्मोपदेश हुआ है उस स्थान को पवित्र बनाने की क्षमता रखता है। (पन्द्रहवां अध्याय समाप्त)। (ज) सभी आवरणों (अशुद्धियों) का परिशोधन (निवारण) करता है। (झ) इससे अभिज्ञा की शीघ्र उपलब्धि होती है, और (४१) विभिन्न लोकों में (आध्यात्मिक) सम्पत्ति की पूर्णता सुन्दर और महान परिणाम (विपाक)

प्राप्त होता है। उपर्युक्त सभी कर्म-फल (इस) धर्म की प्रतिपत्ति के कारण उद्भूत होते हैं। (सोलहवां अध्याय समाप्त)।

(४२) परन्तु जब कोई सम्यक्चर्या (पारमिताभ्यास) करता है तो वह समझता है कि ''मैं बोधिसत्त्व हूँ'', अथवा ''मैं धर्माचरण करता हूँ'', मन का निग्रह करता हूँ'' इत्यादि। इस प्रकार की धारणा को मन का विकार (चित्तावरण) कहा जाता है। क्योंकि (वस्तुत: बोधिसत्त्व नाम की कोई सत्ता नहीं है और) चित्त को सर्वत्र अप्रतिष्ठित होना चाहिये।

(४३) जब दीपंकर बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि मैं भविष्य में सम्यक्सम्बुद्ध बनूँगा, उस समय मैंने इस परम चर्या (दुष्कर चर्या, बोधिचर्या) का अभ्यास (पूरा) नहीं किया था। (क्योंकि यदि मैं उस समय बोधि प्राप्त कर लेता तो मेरे बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी।) वास्तव में बोधि और बोधिचर्या एक समान ही है (क्योंकि न कोई चर्या है जिसको पूरा किया जा सकता है और न कोई बोधि नाम का धर्म ही है जो अधिगत किया जा सकता है, यदि बोधि प्राप्त की जा सकती है तो वह उस दशा में अवास्तविक होगी अर्थात् वह ऐसी वस्तु होगी जो उत्पन्न की जा सकती है) परन्तु वह संस्कृत नहीं है।

(४४) परन्तु क्या यह बोधि-लाभ की सम्भावना का निषेध नहीं है? नहीं, क्योंकि सूत्र में कहा—''जो बुद्ध द्वारा अधिगत हुआ है वह न सत्य है और न मृषा''। सभी धर्म स्वलक्षणरहित है, उनमें स्वलक्षणों का अभाव है अतएव सभी धर्म मृषा नहीं कहे गये हैं। सभी धर्म बुद्ध-धर्म है अतएव उनका स्वभाव अभाव स्वरूप है।

(४५) 'धर्मकाय' होने के कारण बुद्ध को एक (महा) पुरुष के समान कहा जाता है। द्विविध आवरणों (क्लेशावरण व ज्ञेयावरण) की अनुपस्थिति के कारण उनकी काय सर्वव्यापी होती है।

(४६) परन्तु अपने महान् गुणों के महात्म्य के कारण यह काय 'महाकाय' भी कहलाती है। बुद्ध को 'अकाय' भी कहा जाता है क्योंकि उनकी काय वस्तुतः 'अभावकाय' (असंस्कृततथता) स्वरूप है।

(४७) (क) 'धर्मधातु' को ठीक से समझने में अकुशल होना, (ख) सत्त्वों को निर्वाण तक ले जाने का विचार, और (ग) बुद्धि द्वारा बुद्ध-क्षेत्रों (स्वर्गों) को प्राप्त करने का विचार आदि भ्रान्त कल्पनायें हैं।

(४८) जो पुरुष सत्त्वों तथा बोधिसत्त्वों के धर्मों का चिन्तन करते हुये उन्हें अनात्म जानता है, ऐसा पुरूष, चाहे वह साधारण व्यक्ति (अनार्य) हो या सन्त (आर्य) हो, बुद्धिमान (बोधिसत्त्व) कहलाता है। (सत्रहवां अध्याय समाप्त)।

(४९) यद्यपि धर्मों को देखा नहीं जा सकता (धर्म दिखाई नहीं देते हैं) तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि (बुद्ध के पास) चक्षु नहीं है। बुद्ध के पास पांच प्रकार की आंखें हैं जिनके द्वारा वे विभिन्न प्रकार की दोषपूर्ण अवस्थाओं को देखते हैं।

(५०) नाना प्रकार की मिथ्या-धारणायें (कल्पनायें) सम्यक्स्मृति में नहीं होती। इनकी (परिवर्तनशील) व्यवस्था निराधार है, इसलिये इन्हें मिथ्या (चित्तधारा) कहा गया है। (अठाहवां अध्याय समाप्त)।

(५१) वह पुण्यस्कन्ध, जो (सम्यक्) ज्ञान का आधार है, मिथ्या नहीं कहा जा सकता है। अतएव इस प्रकार के पुण्य का महत्त्व स्पष्ट करने के लिये इसी पुण्य से सम्बन्धित दूसरा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। (सूत्र में 'बहु पुण्यस्कन्ध' का अर्थ उपादानस्कन्ध से नहीं है क्योंकि यह ज्ञान का आधार नहीं हो सकता)। (उन्नीसवां अध्याय समाप्त)।

(५२-५३) धर्मकाय की निष्पत्ति नाना प्रकार के लक्षणों के प्रकट होने (रूपकाय) में नहीं है, यह (धर्मकाय) महापुरुष की लक्षणसम्पत्ति (=बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी गौण प्रकार के लक्षणों) में भी नहीं है, क्योंकि धर्मकाय की निष्पत्ति सर्वप्रकार की काय की अनुपस्थिति में है। परन्तु ये दोनों प्रकार की पूर्णतायें--रूपकायपरिनिष्पत्ति और लक्षणसम्पत्ति--धर्मकाय से भिन्न नहीं हैं, किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि यह (पूर्णतायें) तथागत से भिन्न हैं। सूत्र में 'सम्पत्ति' शब्द का पुनः प्रयोग यह दर्शाता है कि उक्त दोनों (पूर्णताओं) के सहअस्तित्त्व द्वारा उनके परस्पर विरोध का अतिक्रमण हो चुका है। (बीसवां अध्याय समाप्त)।

(५४) बुद्ध की भांति उनकी देशना भी 'अविद्यमान' है। देशना द्विविध कल्पित है (शब्द और अर्थ जो 'धर्मदेशना धर्मदेशना' द्वारा इंगित की गई है) सूत्र में कहा गया है कि धर्मदेशना नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि धर्मदेशना वस्तुत: धर्मकाय से अभिन्न है और इसका अपना स्वलक्षण नहीं है।

(५५) ऐसी बात नहीं है कि शास्ता अथवा देशना की गम्भीरता पर श्रद्धा करने वाले नहीं है। ऐसे सत्त्व हैं (परन्तु) वे न सत्त्व हैं और न असत्त्व हैं। सत्व वह हैं जो आर्य (सन्त) के गुणों से रहित (अनार्य) हैं और असत्व वह हैं जो आर्य (सन्त) के गुणों से युक्त (आर्य) हैं। पृथग्जनत्व की दृष्टि से प्राणी 'असत्त्व' है और आर्य की दृष्टि से प्राणी 'सत्त्व' हैं)। (इक्कीसवां अध्याय समाप्त)।[१]

(५६-५७) बोधि को अनुत्तर जानना चाहिये क्योंकि (अन्य कोई) भी अणुमात्र धर्म नहीं है(जो इसके ऊपर हो), धर्मधातु में कोई वृद्धि नहीं होती है। दूसरी ओर, इसमें (धर्मधातु में) पूर्ण शुद्धि की साम्यावस्था है। यह स्वलक्षण है। यही अनुत्तर उपाय है क्योंकि सभी शुभ धर्म इसमें आकर पूर्णत्व प्राप्त करते हैं और इसके (बोधि के) अतिरिक्त अन्य कोई पूर्णता (सम्पत्ति) नहीं है। जब कोई ऐसा धर्म नहीं है जो सास्रव (अकुशल) धर्म कहा जा सके तब (इसके प्रतिकूल) कुशल (अनास्रव) धर्म भी नहीं हो सकता। अतएव यह धर्म (बोधि) शुभ धर्म (सद्धर्म) कहलाता है (क्योंकि) यह अत्यन्त कुशल है।) (बाइसवें व तेइसवें अध्याय समाप्त)।

(५८) यद्यपि बुद्ध-देशना अव्याकृत है, परन्तु यह बोधि की प्राप्ति में सहायक है। अतएव यह धर्मरत्न अन्य सभी रत्नों में श्रेष्ठ और विशिष्ट है।

(५९) जहां तक संख्या, प्रभाव (शक्ति), जाति और सम्बन्ध (विषयक पुण्य का चतुर्विध अन्तर और परिमापन) है, (यह स्पष्ट है कि) इस विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो परीक्षोपरान्त इससे तुलनीय हो (अर्थात् कोई भी ऐसी कल्पनीय वस्तु नहीं है जिसकी बोधि से तुलना हो सके) (चौबीसवां अध्याय समाप्त)।

---

१. यह कारिका कठिन है और खण्डित भी अत: अनुवाद सन्दिग्ध है।

(६०) जिनों (बुद्धों) के द्वारा किसी सत्त्व को निर्वाण प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि (वस्तुतः) धर्मधातु और सत्त्वों में समता है। क्योंकि जो स्कन्ध (प्राणियों के व्यक्तित्व के उपादान) हैं वे उनके नामों सहित धर्मधातु (से भिन्न अथवा) बाहर नहीं है।

(६१) यदि कोई किसी भी धर्म की सत्ता मानता है तो वह आत्मग्राह के समान दोष का भागी होता है। यदि किसी ऐसे प्राणी का अस्तित्व माना जाता है जिसको निर्वाण तक ले जाना है, तो यह भी अग्राह्य वस्तु को पकड़ लेने के समान है।(पचीसवां अध्याय समाप्त)।

(६२) रूपकाय (जिसमें महापुरुष के लक्षण होते हैं) के द्वारा तथागत (धर्मकाय) का दर्शन नहीं हो सकता। क्योंकि तथागत धर्मगकाय है। चक्रवर्ती (राजा) को उसके लक्षणों के कारण तथागत नहीं माना जा सकता। (यद्यपि चक्रवर्ती के और तथागत की रूपकाय के लक्षण लगभग एक समान होते हैं, सच यह है कि केवल लक्षण सम्पत्ति से तथागत नहीं पहचाना जा सकता)।

(६३) धर्मकाय की निष्पत्ति पुण्यों के विपाक के कारण नहीं होती, पुण्यों के विपाक से "महापुरुष" के बत्तीस लक्षणों की उपलब्धि होती है। दोनों की उपलब्धि के उपाय भिन्न हैं (जिस धर्मकाय का आधारभूत तत्त्व प्रज्ञा है वह धर्मकाय पुण्यों से सर्वथा भिन्न है)।

(६४) पृथग्जन बुद्ध को नहीं देख सकते क्योंकि वे केवल बुद्ध का रूप देखते हैं और उनकी आवाज सुनते हैं। वास्तव में जो धर्मकाय है वह तो तथता है और वह विज्ञान (तर्कप्रधान बौद्धिक ज्ञान) द्वारा अदृश्य है। (छब्बीसवां अध्याय समाप्त)।

(६५) परन्तु किसी भी पुण्य का अथवा उसके विपाक का कभी लोप नहीं होता। अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति[१] के अधिगत होने पर भी किसी पुण्य का उच्छेद नहीं होता, क्योंकि वह तो निर्मल (सत्य) की प्राप्ति है। (सत्ताइसवां अध्याय समाप्त)।

---

१. द्र० लालमणि जोशी, बुद्धिस्टिक कल्चर, अध्याय ५; ला वाली पूसें का लेख ई०रि०ई० जिल्द २, पृ० ७५१।

(६६) अतएव दूसरे उदाहरण द्वारा भी यह देशना हुई है कि पुण्यों का विनाश नहीं होता और न वे व्यर्थ ही हैं। परन्तु उन पुण्यों के विपाक को ग्रहण नहीं करना चाहिये केवल उनका अर्जन (संग्रह, परिग्रह) करना चाहिये।[१] (अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त)।

(६७-६८) वे आश्चर्यजनक पुण्यों के पुण्यस्कन्ध तथा प्राणियों में धर्मोपदेश द्वारा धर्म का प्रसार आदि जो कार्य बुद्धों द्वारा सभी दिशाओं में (सदा) सम्पन्न होते हैं वे सभी कार्य स्वतः (अनाभोग-चित्त द्वारा) होते रहते हैं। उनकी (बुद्धों की) जो क्रियायें आने-जाने से सम्बन्धित हैं वे निर्माणकाय द्वारा सम्पन्न होती हैं। यथार्थतः बुद्ध सर्वदा अविचल (अगतिशील) रहते हैं। उनका धर्मधातु (Absolute) में स्थित होना न एकत्व कहा जा सकता है और न अनेकत्व कहा जा सकता है। (उन्तीसवां अध्याय समाप्त)।

(६९) सूत्र में लोकधातु के रजकणों को (पीस कर) परमाणुओं में परिवर्तित करने का जो दृष्टान्त कहा गया है वह भी उपर्युक्त विचार को स्पष्ट करने के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। क्लेशों का क्षय (करने की क्रिया को) दिग्दर्शित करने के लिए (रजोमषीक्रिया की) मषीकरणता का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

(७०) अणुओं का न संचय है और न पिण्ड, यह तथ्य वस्तुओं की अनेकता निदर्शित करता है। परन्तु समूह की स्थिति (संहतस्थानता) की सत्ता से प्रकट होता है कि (उनमें) एकता है। जब अणुओं को परमाणुओं में विभाजित कर दिया जाता है तब ये परमाणु न तो अणुओं की भांति है और न उनसे भिन्न ही है, इसी प्रकार बुद्धत्व न धर्मधातु सा है और न उससे भिन्न ही है।

(७१) परन्तु मूर्ख लोग केवल व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति के कारण इन सभी (उपर्युक्त) बातों को अन्यथा (अयथार्थरूप में) समझते हैं। अतएव आत्मा और धर्मों

---

१. देखिये ऊपर कारिका ६६। डॉ० तुची द्वारा प्रस्तावित तथा प्रकाशित सुधार (तत्पुण्यस्यवि-पाकत्वान्नोद्ग्रहः के स्थान पर "तत्पुण्यस्याऽविपाकत्वान्नोदग्रह"। मेरी दृष्टि में अनावश्यक है। अतएव मेरा अनुवाद डॉ० तुची के अंग्रेजी अनुवाद से भिन्न है। कारिका का भावार्थ यह है कि पुण्यों का उद्ग्रह (पुण्यग्राह) नहीं होना चाहिये किन्तु परिग्रह होना चाहिये।

के प्रहाण मात्र से बोधि की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि ये दोनों (आत्मा और धर्म) तो अविद्यमान है। (तीसवां अध्याय समाप्त)।

(७२) अतएव दोनों प्रकार की दृष्टियां (आत्मदृष्टि व धर्मदृष्टि अर्थात् आत्मा और धर्मों की सत्ता का विचार तथा किसी वस्तु की सत्ता का निषेध या नास्तित्त्व) वस्तुतः निरर्थक और असत् कल्पनाओं से उत्पन्न होती हैं। ये दोनों दृष्टियां एक प्रकार का सूक्ष्म आवरण उत्पन्न कर देती हैं जो (सूत्र में प्रतिपादित सत्य) ज्ञान से नष्ट किया जा सकता है।

(७३) (सूत्र में कहा गया है "एवं ज्ञातव्या.....") यह जो उपदेश है इसके अनुसार दोनों प्रकार के ज्ञान ('ज्ञानद्वय' का अर्थ सम्भवतः सत्यद्वय[1]) द्वारा ध्यान द्वारा (उक्त सूक्ष्म आवरण का) विनाश होता है। (इक्कीसवां अध्याय समाप्त)। (इस प्रज्ञा अथवा ज्ञान के दान से प्राप्त पुण्य महान होता है और) इस पुण्य का क्षय नहीं होता है क्योंकि इसकी देशना बुद्धों की निर्माणकाय द्वारा हुई है।

(७४) जब तथागत (प्राणियों के हित के लिए धर्म का) उपदेश करते हैं तो वे आत्मा के अस्तित्व का उपदेश नहीं करते और न यह कहते हैं कि । मैं निर्माण (काय) हूँ।" चूंकि वे आत्मा का उपदेश नहीं करते अतएव उनकी देशना उत्कृष्ट कहलाती है।

(७५) तथागत (द्वारा अधिगत) निर्वाण न संस्कारों का परिणाम है और न कोई अन्य (वस्तु) है। इसे ठीक प्रकार से समझने के लिये सम्यग्ज्ञान की सहायता से (निम्नलिखित) नौ प्रकार से उत्पन्न होने वाले संस्कृतों (संस्कारों के परिणामों) की परीक्षा करनी चाहिये।

(७६) (सांसारिक वस्तुओं के स्वभाव को इस प्रकार से समझा जा सकता है—)

---

१. द्विविध सत्य—(१) संवृति सत्य और (२) परमार्थ सत्य। द्र० लालमणि जोशी, "मध्यमकार्थ संग्रह—एक विवेचन", "धर्मदूत", वर्ष २९, अंक ३-४, सारनाथ १९६४, पृ० ५५-५७।

(क) **दृष्टि**—(दिखाई देने वाले पदार्थ) सभी प्रकार के ''चैत्त'' सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् लुप्त हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के प्रकाशित होने पर तारागण (तारका) लुप्त हो जाते हैं।

(ख) **निमित्त**—(जिनसे पदार्थों की पहचान होती है) वस्तुएं गलत रूप में दिखाई देती हैं, जैसे कोई दूषित आंख का व्यक्ति (तिमिरम्) अपनी आँखों के सामने बाल देखता है।

(ग) **विज्ञान**—यह मानसिक व्यापार (दीपक की भांति) है क्योंकि वस्तुओं के दिखाइ देने पर राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

(घ) **प्रतिष्ठा**—यह तथाकथित आधार है क्योंकि संसार की वस्तुएं (माया के खेल की तरह) असत् हैं।

(ङ) **देह**—शरीर (ओस-बिन्दु की तरह) क्षणिक एवं नश्वर है।

(च) **भोगता**—(पानी के बुद्बुदे की तरह) संस्कृत (नाशमान) हैं।

(छ) **अतीत**—यह वस्तुएं (स्वप्न की तरह) केवल स्मरण मात्र रहती हैं।

(ज) **वर्तमान**—यह बिजली की चमक की भांति शीघ्र लुप्त होने वाले और क्षणिक हैं।

(झ) **अनागत**—यह बादल की तरह है क्योंकि आलयविज्ञान में सभी होने वाली घटनाओं के बीज निहित हैं।

(इस प्रकार हम संसार की वस्तुओं को सम्यग्ज्ञान की कसौटी पर परखने पर उन्हें क्षणिक और संस्कृत पाते हैं।)

(७७) जिस व्यक्ति ने संस्कृत वस्तुओं को (१) लक्षण, (२) उपभोग और (३) प्रवृत्ति इन तीनों दृष्टियों से भली प्रकार (सम्यक् ज्ञान द्वारा) देख लिया है, वह संस्कारों (के प्रभाव से अछूता रह कर उन पर) पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करता है और निर्मलता (निर्वाण) का अनुभव करता है। (बत्तीसवां अध्याय समाप्त)।

तीन सौ श्लोकों की प्रज्ञापारमिता पर सत्तर कारिकायें समाप्त हुई। यह (कारिकायें) आर्य असंगपाद की कृतियाँ हैं।

■

शब्दकोश

अग्राह्य : जो पकड़ा नहीं जा सकता, जिसको पकड़ना नहीं है।

अण्डज : अण्डे से उत्पन्न, जैसे पक्षी।

अनागामी : श्रावक की तृतीय भूमि, संसार में पुनः न आने वाला व्यक्ति।

अनागत : भविष्य (काल), आने वाला, जो अभी आया नहीं है।

अचिन्त्य : जो विचार का विषय नहीं है, जिसका चिन्तन नहीं करना है और न किया जा सकता है।

अनभिलाप्य : जिसकी चर्चा नहीं की जा सकती, जो बात-चीत का विषय नहीं है, (यथा प्रज्ञापारमिता)। निर्वाण को अतर्कावचर, अवाच्य, अनभिलाप्य समझना चाहिये।

अभिज्ञा : लोकोत्तर ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान, पंचविध अभिज्ञा—सिद्धि प्रदर्शन करने का ज्ञान (पालि ञाण), दिव्य श्रोत-ज्ञान, दूसरों के चित्त को जानने का ज्ञान, पूर्व जन्मों का स्मरण करने का ज्ञान, दिव्य चक्षु-ज्ञान। आस्रव क्षय-ज्ञान भी इसी कोटि में रखा जा सकता है। बुद्ध इन अभिज्ञाओं से परिपूर्ण होते हैं। द्र० धर्मसंग्रह, २०।

अनुग्रह : कृपा। सहानुभूतिपूर्ण सहायता।

अनुपधिशेष निर्वाण : निरूपधिशेषनिर्वाण, निर्वाण रूपी वह आयतन जिसमें कुछ बी उपधि अवशेष नहीं रहती। चन्द्रकीर्ति ने लिखा है—'यत्र तु निर्वाणे स्कन्धमात्रकमपि नास्ति, तन्निरूपधिशेषम् निर्वाणम्। दूसरे प्रकार का सोपाधिशेषनिर्वाण कहता है जिसमें मुक्ति की उपलब्धि हो जाती है परन्तु स्कन्धादि उपधियाँ शेष होती है।

अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति : 'धर्म अनुत्पन्न है' इस प्रकार के सत्य को सहन करने की क्षमता, धर्म उत्पन्न नहीं होते हैं ऐसा समझने की बौद्धिक क्षमता।

अनुत्तर : अतुल्य, अत्युत्तम, अद्वितीय।

अधिवचन : समानार्थक, पर्याय, अभिवचन।

असंस्कृत : अनिर्मित, अजन्मा, कार्य-कारण के नियम से परे; यह निर्वाण, प्रज्ञापारमिता, परमार्थ आदि का समानार्थक है।

अप्रतिष्ठित : किसी वस्तु में रमण न करना, अनासक्त, अनाधृत, अनालीन।

अरणाविहारी : शान्ति-विहार करने वाला, एकान्त अरण्य में रहने वाला, वीतराग।

अर्हत् : बौद्ध सन्त जिसने आस्रवों को जीत लिया है, श्रावक की अन्तिम भूमि, पूर्णता प्राप्त मुनि, बुद्ध की एक उपाधि, निर्वाण की योग्यताओं (अर्हताओं) से शोभित आर्यपुद्गल, वह आदरणीय व्यक्ति जिसने अरि का हनन कर लिया है, हतारित्वान् अर्हत्। हरिभद्र ने लिखा है—'पूजादक्षिणागुणप्रकर्षाद्यर्हतया अर्हन्तः'। लंकावतारसूत्र में कहा है— ध्यानध्येयसमाधिविमोक्षबलाभिज्ञानक्लेशदुःखविकल्पाभावादर्हन्नित्युच्यते'।

आराम : संघाराम, विहार, भिक्षुओं का निवास स्थान; उद्यान।

आलयविज्ञान : आलय+विज्ञान—विज्ञान का आलय; अनेक प्रकार के विज्ञानों का भण्डार रूपी चित्त, धर्मों, भावनाओं, और प्रवृत्तियों के बीजों का विज्ञान स्थान। द्रष्टव्य डॉ० डी० टी० सुजूकी कृत स्टडीज इन दि लंकावतार सूत्र, लन्दन १९३०।

आस्रव : पालि 'आसव' (आस्रव), दुःख, पाप, बुरा असर, चतुर्विध आस्रव—कामास्रव; भवास्रव, अविद्यास्रव, दृष्टिआस्रव। हरिभद्र ने कहा है—'भवाग्रादसंसारं स्रवन्तीति आस्रवः'। श्रीमती रीजडेविड्स ने आस्रवों को 'ड्यडली ड्रग्स' कहा है क्योंकि ये आध्यात्मिक जीवन की हत्या कर देने वाले विष के समान हैं।

आर्य : श्रेष्ठ, उत्तम, पवित्र, बौद्ध साहित्य में 'आर्य' शब्द (पालि 'अरिय') का प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ है जिस अर्थ में ब्राह्मण साहित्य

के प्रसंग में हुआ है। बौद्ध धर्म में सभी जातियों व वर्णों के लोग आर्य हो सकते हैं यदि वह शील, समाधि और प्रज्ञा से सुशोभित हों। आर्य शब्द अर्हतों, बोधिसत्त्वों व पण्डितों के लिये प्रयुक्त होता है। बौद्ध धर्म मूल रूप में अवेदिक एवं आर्येतर धर्म (श्रमण-धर्म) है परन्तु इसे 'अरिय' (आर्य) धर्म कहा गया है क्योंकि यह उत्कृष्ट एवं पुनीत धर्म है।

आत्मभाव : देह, शरीर, अहं और अपनापन, अपना सभी कुछ; आत्मत्व।

आयतन : ज्ञानन के प्रवेश मार्ग इन्द्रियों से सम्बद्ध विषय आयतन कहलाते हैं; बारह आयतन— चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, गन्ध, शब्द, रस, स्पर्श, और धर्म (पहले छः आन्तरिक और दूसरे छः बाह्य)।

उद्ग्रहीत : पकड़ना, ग्रहण करना।

उन्माद : विक्षेप, व्यग्र, मन की अव्यवस्थित अवस्था उन्माद की अवस्था है।

उपेतकाय : कायप्राप्त, शरीरयुक्त।

एकचित्तप्रसाद : श्रद्धापूर्ण एकाग्रचित्त, संयमित सानन्द चित्त।

उपासक : बौद्ध गृहस्थ, बुद्ध, धर्म और संघ की शरणागत व्यक्ति, बौद्ध धर्म का मानने वाला, सौगत, शाक्य।

उपपादुक : औपपादुक, स्वयं उत्पन्न, आश्चर्यजनक रूप से उत्पन्न।

उच्छेद : विनाश, नाश।

कर्मविपाक : कर्म-फल।

कुलपूत्र : अच्छे कुल में उत्पन्न, सौगत परिवार में उत्पन्न व्यक्ति, मज्झिमनिकाय की टीका में कहा गया है कि कुलपुत्र (कुपुत्त) द्विविध होते हैं— 'जातिकुलपुत्ता आचार कुलपुत्ता च'। कुलपुत्र शब्द का प्रयोग आदरपूर्वक सम्बोधित करने के लिये भी होता है।

क्लेशावरण : क्लेशों का आवरण, राग, द्वेष, मोह, तृष्णा, आदि परमार्थ सत्य पर आवरण डाल देते हैं और दुःख देते हैं। प्रज्ञाकरमति ने लिखा है— 'क्लेशा रागादयः' 'क्लेशा एवावृत्तिः'।

क्षान्ति : तितिक्षा, (दुःख) सहने की सामर्थ्य, क्षान्ति तीसरी पारमिता है, धम्मपद में कहा है— 'खन्ती परमं तपो तितिक्खा'। (पालि) खन्ती= क्षान्ति, (पालि) तितिक्खा=तितिक्षा।

चित्त : मन, विज्ञान, विज्ञप्ति, चित्त-सन्तान; बसुबन्ध ने लिखा है—'चित्तं मनोविज्ञानं विज्ञप्तिश्चेति पर्यायाः'।

चीवर : वस्त्र, बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के काषाय वर्ण के वस्त्र, पहनने का कपड़ा।

चैत्त : चित्त से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रखने वाले धर्म। द्र० एच० वी० गुन्थर, फिलासाफी एण्ड साइकालाजी इन दि अभिधर्म, अध्याय २ तथा शेर्बात्स्की, सेन्ट्रल कन्सेप्शन आफ बुद्धिज्म, पृ० १३-१७।

चैत्य : सामान्य रूप से चैत्य शब्द स्तूप का समानार्थक है; बुद्ध के पवित्र अवशेषों (अस्थियों, दाँतों आदि) पर जो संरचनायें निर्मित की जाती हैं वह स्तूप (पालि थूप) कहलाती हैं। चैत्य शब्द कदाचित् चिता से सम्बन्धित है; चैत्य का वही महत्व है जो मन्दिर अथवा देवालय का है। विस्तृत चर्चा के लिये देखिये मेरी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय कला की ऐतिहासिक समीक्षा, अध्याय ४ तथा रीजडेविड्स, पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, 'चेतिय'। चैत्य पवित्र स्मारक है।

जरायुज : गर्भ से उत्पन्न, यथा पशु, मानव।

तथागत : तथा (वैसे)+आगत (आया), जैसे पूर्वप्रादुर्भूत बुद्ध (परमार्थ) सत्य तक आ पहुँचे थे वैसे ही सत्य तक आने वाला; बुद्ध की एक उपाधि, शाक्यमुनि, गौतम बुद्ध, सुगत।

तथता : शुन्यता, भूतकोटि, प्रज्ञापारमिता, परमार्थ, धर्मता।

दीपंकर : एक पूर्वप्रादुर्भूत बुद्ध, एक सूची के अनुसार पच्चीस बुद्धों में से प्रथम बुद्ध (द्र० बुद्धवंस)।

देशना : उपदेश, धर्मपर्याय, शिक्षा, शासन।

धर्म : बौद्ध वाङ्मय में यह पारिभाषिक शब्द है जो किसी अन्य भाषा में अनूदित नहीं किया जा सकता। धर्म—१. बुद्ध का उपदेश, बौद्ध धर्म, सद्धर्भ, २. परमार्थ सत्, तत्त्व, निर्वाण, ३. अभिधर्म साहित्य एवं दर्शन में धर्म का सामान्य अर्थ पदार्थ, घटना, वस्तु, संस्कार आदि होता है; ये धर्म अनेक हैं, प्रत्येक धर्म पृथक् हैं, क्षणिक हैं, प्रतीत्यसमुत्पन्न है, और अनात्मन् (शून्य) है। द्र० शेर्बात्स्की, पू० उ०, पृ० ६०-६१।

धर्मकाय : बुद्ध का एक विरुद, अध्यात्मिक रूप, धर्म (परमार्थ) का मानो मूर्त रूप, बुद्ध की तीन कायो ं में सर्वश्रेष्ठ काय (अन्य दो 'सम्भोगकाय' और 'निर्माणकाय' हैं)। लंकावतारसूत्र में कहा है—'मनोमयधर्मकायस्य तथागतस्यैतद् अधिवचनम्'। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता में कहा है—'धर्मकाया बुद्धा भगवन्त:।' प्रज्ञाकरमति ने लिखा है—'एकानेकस्वभावविविक्तमनुत्पन्नमनिरुद्धमनुच्छेदमशाश्वतं सर्वप्रपञ्चविनिर्मुक्तमाकाशप्रतिसमं धर्मकायाख्यं परमार्थतत्त्वमुच्यते। वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितां सूत्र में कहा है—

'धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायका:।
धर्मता चाप्यविज्ञेया न सा शक्याविजानितुम्॥'

निर्वाण : मुक्ति, मोक्ष, निरोध, शाश्वत शान्ति, परमार्थ, परम सुख, बुद्धत्व, बोधि, शून्यता, धर्मता, धर्मधातु, तथता, भूतकोटि; सर्वज्ञत्त्व, दु:ख-समाप्ति, आस्रव-क्षय, बन्धन-मुक्ति, अनुत्तर-विमुक्ति, अनुत्तर-विशुद्धि, चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्व, परम पद, गम्भीर, अकथनीय, अनभिलाप्य, अतर्कावचर आयतन।

निरात्मन् : नैरात्म्य, अनात्म, निःस्वभाव, शून्य, आत्मा से रहित, सत्य विहीन, प्रतीत्यसमुत्पन्न।

निमित्तसंज्ञा : निमित्त-ज्ञान।

परिभूत : पराजित; विनीत।

परीन्दन : देना, (प्रज्ञापारमिता को) प्रदान करना, समर्पित करना, परीन्दामि= प्रत्यर्पयामि, परन्तु वज्रच्छेदिका में परीन्दन का अर्थ पक्ष-पोषण या अपनाने से है।

पर्यवाप्नोति : अध्ययन करता है; पढ़ता है।

पर्युपासित : सम्मानित; पर्युपासना करना, समादर करना; पूजा करना।

पिण्डग्राह : भौतिक पदार्थ को पकड़ना; वस्तुओं में तल्लीन होना।

प्रजानाति : प्रज्ञा से जानता है; ठीक से समझता है।

पुद्गल : पालि 'पुग्गल'; व्यक्ति; पुरुष; पुनः जन्मने वाला जीव या प्राण; वात्सिपुत्रीय बौद्धों को पुद्गलवादी कहा जाता है; पुद्गल न पञ्चस्कन्ध है और न इनसे भिन्न है, यह अकथनीय है। द्र० तत्त्व-संग्रह का सातवां अध्याय। पुद्गल आत्मा की तरह का है। पुद्गलनैरात्मय = पुरुष की अनात्मकता। जैन धर्म में पुद्गल का अर्थ पदार्थ होता है। पुद्गल की महायानी व्याख्या के लिये देखिये अभिसमयालंकारालोकव्याख्या (बौ० सं० ग्र०-४) पृ० २७४; अभिधम्म (पालि) व्याख्या के लिये देखिये ''पुग्गल-पञ्ञत्ति''। अष्ट पुरुष पुद्गलों तथा अष्ट प्रतिपुद्गलों के लिये द्र० धर्मसंग्रह, १०२-१०३।

प्रतिग्रहीष्यन्ति : प्राप्त करेंगे; अधिगत करेंगे।

प्रतिकांक्षितव्य : इच्छा करने योग्य; वांछनीय।

प्रहाण : प्रयत्न; चेष्टा; (पालि प्रधान), प्रहाण का अर्थ 'छोड़ना' 'परित्याग' करना भी होता है, परन्तु यहां इस ग्रन्थ में प्रहाण सम्यक् प्रहाण है। चतुर्विध सम्यक् प्रहाण —(१) उत्पन्न कुशलमूलों का संरक्षण,

(२) अनुत्पन्न कुशलमूलों को उत्पन्न करना, (३) उत्पन्न अकुशलमूलों का प्रहाण करना, (४) अनुत्पन्न अकुशलमूलों को पुनः न उत्पन्न करना।

प्रज्ञा : प्रविचय करने वाली प्रज्ञेन्द्रिय; पारमिताओं में छठी पारमिता; सर्वश्रेष्ठ पारमिता; संबोधिसाधन; सम्यक् प्रकार से जानने के अर्थ में प्रज्ञा; प्रज्ञाकरमति ने लिखा है—'प्रज्ञा यथावस्थितप्रतीत्य-समुत्पन्नस्तुतत्त्वप्रविचयलक्षणा'। देखिये ऊपर 'भूमिका'।

प्रज्ञापरिहीण : प्रज्ञा जिनकी नष्ट हो गई है; प्रज्ञाविहीन ।

प्रज्ञापारमिता : ज्ञान की पराकाष्ठा; दुःखशमनी; धर्मप्रविचयस्वभावा; दिङ्नाग ने लिखा है— 'प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वयं सा तथागतः'।
प्रज्ञा की पूर्णता; भूतकोटि; धर्मता; तथता; तथागतमाता; बोधिप्रदात्री; देखिये ऊपर 'भूमिका'।

प्रविचय : धर्मप्रविचय एक संबोध्यंग; वर्गीकरण; अन्वेषण; पहिचानना, चयन; अलग करना; विश्लेषण; लंकावतारसूत्र में कहा है—
'प्रविचयबुद्ध्याविचारयमाणः'। धर्म और तत्त्व का प्रविचय करना प्रज्ञा का गुण है।

बालपृथग्जन : सामान्य मूर्ख प्राणी।

बुद्धक्षेत्रव्यूह : बुद्धों के लोकों के व्यवस्थित समूह; बुद्ध-क्षेत्र-संस्थान।

बोधिचित्त : बोधि [बुद्धत्त्व] प्राप्ति में लगा हुआ मन।

बोधिसत्त्व : बोधि प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील प्राणी; भावी बुद्ध; पारमिताओं के अभ्यास द्वारा प्राणियों को निर्वाण तक ले जाने वाला बौद्ध सन्त; प्रज्ञाकरमति ने लिखा है—'तत्र बोधिः सत्त्वमभिप्रायोऽस्येति-बोधिसत्त्वः'।

बोधिचर्या : बोधि की प्राप्ति के लिए पारमिताओं का अभ्यास करना; द्र० बोधिचर्यावतार, अध्याय १; प्रज्ञाकरमति ने लिखा है—'बोधौ' बोधिनिमित्तं बुद्धत्त्वार्थं चर्या बोधिचर्या'।

बोधिसत्त्वयान : बोधिसत्त्वों का पथ; महायान; पारमितानय; प्रज्ञापारमितायान; इसे अग्रयान भी कहा है।

भूतसंज्ञा : यथावत् देखना; परमार्थ ज्ञान; प्रज्ञा अधिगत होना।

भूततथता : भूतकोटि; यथावत् सत्य; शून्यता; धर्मता।

भूतवादी : यथावत् कहने वाला; सत्यवादी।

महायान : महान्, बृहत्, प्रशस्त यान अथवा मार्ग; यह श्रावकयान तथा प्रत्येकबुद्धयान से श्रेष्ठ कहा गया है; यही बोधिसत्त्वयान है। द्र० मेरा महायान पर लेख, त्रिपाठी अभिनन्दनग्रन्थ, पृ० ११२-११४।

मिथ्या : असत्; झूठ।

मृषा : मायावत्; नकली; धोखा; भ्रामक।

रूपकायपरिनिष्पत्ति : महापुरुष की देह; बत्तीस लक्षणों की पूर्णता से सुशोभित रूप; शाक्यमुनि की देह ऐसी थी; इसे लक्षण सम्पदायुक्त शरीर कहते हैं।

लक्षणसम्पंदा : महापुरुष के बत्तीस शारीरिक लक्षण; ये निम्नलिखित हैं— चक्रांकितपाणिपादतलता; सुप्रतिष्ठितपाणिपादतलता; जालाबलबद्धाङ्गुलिपाणिपादतलता; मृदुतरुणहस्तपादलता; सप्तोत्सदता; दीर्घाङ्गुलिता; आयतपार्ष्णिता; ऋजुगात्रता; उत्सङ्गपादता; उर्ध्वाग्ररोमता; एणेयजङ्ता; प्रलम्बबाहुता; कोषगतवस्तिगुह्यता; सुवर्णवर्णता; शुक्लच्छविता; प्रदक्षिणावर्तेकरोमता; ऊर्णालंकृतमृखता; सिंहपूर्वान्तकायता; सुसंवृत्तस्कन्धता; चितान्तरांसता; रसरसाग्रता; न्यग्रोधपरिमण्डलता; ऊष्णोषशिरस्कता; प्रभूतजिह्वता; सिंहहनुता; शुक्लहनुता; समदन्तता; हंसविक्रान्तगामिता; अविरलदन्तता; समचत्वारिंशद्दन्तता; अभिनीलनेत्रता; गोपक्षनेत्रता।

वस्तुपतित : वस्तुओं में गिरा हुआ; वस्तुओं में आसक्त।

वितथ : असत्य; मिथ्या।

विपर्यास : पालि विपल्लास; भ्रान्ति, जैसे अशुभ को शुभ, अनित्य को नित्य मानना।

विपाक : कर्म का सूक्ष्म परिणाम।

व्यापादसंज्ञा : द्वेष देखना; दूषित ज्ञान जिसमें वैर भावना हो।

व्याकृत : भविष्यवाणी कही है; व्याकरण=भविष्यवाणी; बोधिसत्त्व कब किस रूप में सम्यक्सम्बुद्ध होगा यह बताना।

सन्धाय : गूढ़ार्थ के साथ; छिपे हुये गुह्य अर्थ के साथ (सन्धाभाषा=गूढ़ अर्थ वाली भाषा जिसका व्यक्त अर्थ गूढ़ अर्थ से भिन्न हो)

सप्तरत्न : चक्रवर्ती के सात रत्न—चक्र, अश्व, हस्ति, मणि, स्त्री, खड्ग, तथा परिणायक।

सकृदागामी : श्रावक की दूसरी भूमि; ऐसा सन्त जिसे एक बार पुनः जन्म लेकर कुछ करणीय है।

सुगत : सुन्दर गति वाला; भली प्रकार गया हुआ; बुद्ध का एक विरुद; तथागत।

संस्वेदज : स्वेद (नमी, पसीना) से उत्पन्न, स्वेदज।

स्वलक्षण : अपनत्व, किसी वस्तु का अपना स्वभाव या विशेष गुण; बौद्ध दर्शन में वस्तुसत्, यथार्थ, परमार्थ, को स्वलक्षण कहा गया है; यह प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है; यह अन्य सामान्य (वस्तुओं) से भिन्न होता है। धर्मोत्तराचार्य ने स्वलक्षण की व्याख्या में लिखा है—'स्वमसाधारणं लक्षण तत्त्वं स्वलक्षणम्।'

स्प्रष्टव्य : जो स्पर्श किया जा सकता है; ग्यारह स्प्रष्टव्य वस्तुयें—पृथ्वी, अप् तेज, वायु, श्लक्ष्णत्व, कर्कशत्व, लघुत्व, गुरुत्व, शीत, जिघत्सा, पिपासा।

स्रोतआपन्न : श्रावक की पहली भूमि; अध्यात्मिक साधना रूपी स्रोत (धारा नदी) में आ पहुँचना; चित्त को निर्वाणगामिनी प्रतिपदा में स्थिरतापूर्वक लगाना; निर्वाण पथ पर अग्रसर सन्त।

स्कन्ध : समुदाय; समूह; ढेर; जीव के व्यक्तित्व [देह, आत्मा] के पांच अंग; पञ्चस्कन्ध=रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान।

हीनयान : श्रावकयान; लघु, प्रारम्भिक, संकुचित यान अथवा पथ; यह शब्द महायानियों ने श्रावकों थेरवादियों, अर्हतों के मार्ग के लिये प्रयुक्त किया है अतः इसके प्रयोग का औचित्य विवादग्रस्त है।

हीनअधिमुक्ति : हीनचर्या, साधारण अभिप्राय से, ढीले चित्त से साधना करना।

■

सहायक ग्रन्थों व लेखों की सूची

अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता सं०प०ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० ४, दरभंगा १९६० (१९६५ में प्रकाशित)

क. **अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता** (दि परफेक्शन आफ विज्डम इन ८,००० श्लोकज) एडवर्ड कान्ज द्वारा अनूदित, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता १९५८।

अंगुत्तर निकाय, जिल्द १-४, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, नवनालन्दा महाविहार, १९६०।

अभिसमयालंकारालोकव्याख्या (हरिभद्र), सं०प०ल० वैद्य, बौ०सं०ग्र० ४।

अभिधर्मकोशकारिका (वसुबन्धु) सं० वी० वी० गोखले, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई, १९४६।

क. **अभिधर्मकोश** (वसुबन्धु) हिन्दी में आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा अनूदित (कोशस्थान १-३) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग १९५८।

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन ऐण्ड इथिक्स, जेम्स हेस्टिंग्ज् द्वारा सम्पादित एडिनबरा से प्रकाशित, जिल्द १-१२।

उदान, भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, खुद्दकनिकाय जिल्द १, नालन्दा देव नागरी पालि ग्रन्थमाला, १९५९।

महायान करतलरत्नशास्त्र (भावविवेक), एन० अय्यस्वामी शास्त्री द्वारा चीनी से संस्कृत उद्धार, विश्वभारती एनल्स, जिल्द २, १९४९।

कॉन्ज, एडवर्ड, **बुद्धिस्ट थॉट इन इण्डिया : श्री फेजेज ऑफ बुद्धिस्ट फिलासफी,** जार्ज एलेन, लन्दन, १९६२। (अंग्रेजी में बौद्ध दर्शन पर लिखी गई अत्युत्तम एवं प्रामाणिक पुस्तक)।

वही, **बुद्धिस्ट स्क्रिप्चर्स** (बौद्ध श्रुति-ग्रन्थ) पेंगिन क्लासिक्स, लन्दन, १९५९।

वही, **दि प्रज्ञापारमिता लिटरेचर,** दि हेग, १९६०।

वही, 'दि ओल्डेस्ट प्रज्ञापारमिता', **दि मिडिल वे—जर्नलऑफ दि बुद्धिस्ट सोसाइटी,** वर्ष ३२, अंक ४, लन्दन १९५७।

वही, **सेलेक्टेड सेइग्ज् फ्राम दि परफेक्शन ऑफ विज्डम,** बुद्धिस्ट सोसाइटी, लन्दन १९५९।

गण्डव्यूहसूत्र, सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० ५, दरभंगा १९६०।

जोशी, लालमणि, **स्टडीज़ इन दि बुद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इण्डिया (ड्यूरिंग दि सेवन्थ एण्ड एट्थ सेन्चुरीज ए० डी०),** दिल्ली, १९६७।

वही, **शान्तदेव शिक्षासमुच्चयकारिका,** नागरी लिपि में सम्पादित एवं अंग्रेजी में अनूदित, सारनाथ (वाराणसी) १९६५।

वही, 'ट्रू बुद्धिज्म', **महाबोधि जर्नल,** वर्ष ७४, कलकत्ता १९६६।

वही, **'मध्यमकार्थ-संग्रह', धर्मदूत** वर्ष २६, अंक ३-४, जुलाई-अगस्त, सारनाथ, १९६४, पृ० ५४-५७।

वही, 'सद्धर्म मुक्तावली' **धर्मदूत** वर्ष २९, अंक ५, सितम्बर १९६४, पृ० ८४-८६।

वही, नागार्जुनकृत **'प्रज्ञापारमितास्तुति'** हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी, **धर्मदूत** वर्ष ३०, मार्च-अप्रैल १९६६।

वही, 'महायान बौद्ध धर्म का उत्पत्ति और विकास', **सुरति नारायण मणि त्रिपाठी अभिनन्दन ग्रन्थ,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी १९६५, पृ० १११-१३०।

वही, 'ए सर्वे ऑफ दि कन्सेप्शन ऑफ बोधिचित्त', **जर्नल ऑफ रिलीजियस स्टडीज,** वाल्यूम ३, पटियाला, १९७१।

वही, 'बौद्ध धर्म दर्शन एवं संस्कृति के दो सौ वर्ष', **धर्मदूत,** वर्ष २९, अंक ११, मार्च १९६०, पृ० २३३-२३८।

वही, 'लाइफ एण्ड टाइम्स आफ दि माध्यमिक फिलॉसफर नागार्जुन', **महाबोधि,** वर्ष ७३, कलकत्ता १९६५।

तत्व-संग्रह (शान्तिरक्षित) एवं **तत्त्व-संग्रह-पञ्जिका** (कमलशील), सं० एम्बर कृष्णामाचार्य, गायकवाड़ आरियन्टल सिरीज ३०-३१, बड़ौदा १९२६।

तत्त्व-संग्रह आफ शान्तिरक्षित विद दि कमेन्टरी ऑफ कमलशील, ट्रान्सलेटेड इन टु इंग्लिश, गा० ओ० सि० ८०, ८३, बड़ौदा १९३७, १९३९, अनुवादक गंगानाथ झा।

तुची, जी०, **माइनर टेक्स्ट्स,** भाग १, सेरी आरियन्टल रोमा, रोम १९५६।

थेरापदान, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, **खुद्दक निकाय,** जिल्द ६, नवनालन्दामहाविहार १९५९।

थेरगाथा, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, **खुद्दक निकाय,** जिल्द २, नवनालन्दामहाविहार, १९५९, पृ० २३३-४०२।

थेरगाथा, डा० उ० धर्मरत्न द्वारा हिन्दी में अनूदित, महाबोधि सभा, सारनाथ, बुद्धाब्द २४९९ (१९५५)।

द्वादशमुखशास्त्र (नागार्जुन), एन० अय्यस्वामी शास्त्री द्वारा चीनी से संस्कृत उद्धार, विश्वभारती एनल्स, वर्ष ६, १९५४, पृ० १८५-२२८।

दीघनिकाय, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, जिल्द १-३, नवनालन्दा महाविहार, १९५८।

दयाल, हर; **बोधिसत्त्व डाक्ट्रिन इन बुद्धिस्ट संस्कृत लिटरेचर,** लन्दन, १९३२।

दत्त, नलिनाक्ष, **एस्पेट्स आफ महायान बुद्धिज्म एण्ड रिलेशन टु हीनयान,** लन्दन १९३०।

धर्मरक्षित, भिक्षु, **बौद्ध-धर्म-दर्शन तथा साहित्य,** वाराणसी, १९६३।

धर्मसंग्रह (नागार्जुन?) सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० १७—**महायान सूत्र संग्रह** खण्ड १, दरभंगा १९६१, पृ० ३२९-३३९।

नवनालन्दामहाविहार रिसर्चपब्लिकेशन, भाग २, नालन्दा १९६०।

न्यायबिन्दुटीका (धर्मोत्तर), चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा सम्पादित, चौखम्बा, वाराणसी १९५४।

प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ (दिङ्नाग), सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० - ४, पृ० २९३-२९६।

पञ्चविंशतिसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता (प्रथम परिवर्त), सं० नलिनाक्ष दत्त, कलकत्ता आरियन्टल सिरीज २८, १९३४।

प्रसन्नपदा (चन्द्रकीर्ति), सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र०—१०, दरभंगा, १९६५ (तिथि १९६० छपी है)।

पूसें, लूई दे ला वाली, 'बोधिसत्त्व', **ई० रि० इ०** जिल्द २, पृ० ७३९-७५३।

पाण्डे, गोविन्दचन्द्र, **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास,** हिन्दी समिति ग्रन्थमाला ७१, लखनऊ १९६३।

बुद्धवंस, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, **खुद्दकनिकाय,** जिल्द ७, नवनालन्दा महाविहार, १९५९, पृ० २९७-३८३।

बोधिचर्यावतार (शान्तिदेव), सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र०-१२, दरभंगा, १९६१।

बोधिचर्यावतारपञ्जिका (प्रज्ञाकरमति), सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र०—१२।

बोधिचित्तोत्पाद सूत्रशास्त्र (वसुबन्धु), शान्तिभिक्षु शास्त्री द्वारा चीनी से संस्कृत उद्धार, विश्वभारती एनल्स, वर्ष २, १९४९, पृ० २०७-२४०।

भावनाक्रम (कमलशील), जी० तुची द्वारा **मा० बु० टे०** भाग २ में सम्पादित, रोम १९५८।

महावग्ग, सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, नवनालन्दा महाविहार, १९५६।

महावंसो (महानाम) सं० एन० के० भागवत, बम्बई, विश्वविद्यालय, द्वि० सं० १९५९।

मिलिन्दपञ्हो, सं० आर० डी० वाडेकर, बम्बई विश्वविद्यालय, १९४०।

मिलिन्द प्रश्न, भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा हिन्दी में अनूदित, धर्मोदय सभा कलकत्ता, १९५१।

महायानसूत्रालंकार (मैत्रेय-असंग), सिल्वां लेवी द्वारा सम्पादित, पेरिस १९०७।

महायान सूत्र संग्रह (प्रथम खण्ड), सं० पं० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र०-१७, दरभंगा, १९६१।

मध्यमकशास्त्र (नागार्जुन), सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र०—१०, दरभंगा [१९६०] १९६५।

मित्र, राजेन्द्र लाल, **संस्कृत बुद्धिस्ट लिटरेचर ऑफ नेपाल,** कलकत्ता १८८२।

मूर्ति, टी० आर० वी०, **दि सेन्ट्रल फिलॉसॉफी ऑफ बुद्धिज्म,** लन्दन १९५५।

माइनर बुद्धिस्ट टेक्स्ट्स, भाग 1-2, से आ० रो० ९, रोम १९५६, १९५८, सं० जी० तुची, इंस्तीत्यूतो इतालियानो पर इल मेदियो एद एस्त्रेमो आरियन्ते, रोमा द्वारा प्रकाशित।

मध्यान्तविभागटीका, सं० एस० यामागुची, २ भाग, नागोया, १९३४।

म्यूलर, मैक्स, **बुद्धिस्ट महायान सूत्रज्,** सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, वाल्यूम ४९, भाग २, आक्सफर्ड, १८९४ (पुनः प्रकाशित मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)।

(दि) मिडिल वे—क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ दि बुद्धिस्ट सोसाइटी, लन्दन, वॉल्यूम २८ (१९५३), ३२ (१९५७), ३५ (१९६०)।

(दि) **महाबोधि— इन्टर्नेशनल बुद्धिस्टमन्थली,** महोबोधि सोसाइटी ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, वॉल्यूम ६३ (१९५५), ६४ (१९५६), ७३ (१९६५) ।

(दि) **महाकर्म-विभङ्ग-उपदेश,** सं० प० ल० वैद्य, **महायान-सूत्र-संग्रह** प्रथम खण्ड।

महावस्तु, सं० ई० सेनार्त, जिल्द १-३, पेरिस १८८२-९७।

महावस्तु जे० जे० जोन्स द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, जिल्द १-३, लन्दन, १९४९-५६।

मज्झिमनिकाय, जिल्द १-३, सं० राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु जगदीश काश्यप तथा पी० वी० बापट, नवनालन्दा महाविहार, १९५८।

मज्झिमनिकाय, राहुलसांकृत्यायन तथा त्रिपिटकाचार्य धर्मरक्षित द्वारा हिन्दी में अनूदित [द्वि० सं०] महाबोधि सभा, सारनाथ १९६४।

लंकावतारसूत्र सं० प० ल० वैद्य तथा शीतांशुशेखर वागचि, बौ० सं० ग्र० ३, दरभंगा, १९६३।

(दि) **लंकावतारसूत्र,** दैसेत्ज तेतरी सुजूकी द्वारा अंग्रेजी में अनूदित लन्दन, १९५६।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र, सं० मैक्सम्यूलर, एनेक्डोटा आक्सीनीन्सिया, आर्यन सिरीज, जिल्द १, भाग १, आक्सफर्ड १८८१।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, एडवर्ड कान्ज द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित, से० आ० रो० १३, रोम १९५७।

वही (एडवर्ड कान्ज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित)।

(त्रिशतिका नाम) वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, सं० प० ल० वैद्य, **महायानसूत्र संग्रह,** प्रथम खण्ड, दरभंगा, १९६१।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, एन० पी० चक्रवर्ती द्वारा रोमन लिपि में गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित, **मा० बु० दे०** भाग १, रोम १९५६, पृ० १८२-१९२।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, एफ० ई० पार्जीटर द्वारा सम्पादित, ए० एफ० आर० होर्नल द्वारा प्रकाशित **मैनुस्क्रिप्ट रिमेन्स ऑफ बुद्धिस्ट लिटरेचर फाउण्ड इन ईस्टर्न तुर्किस्तान,** लन्दन, १९१६, पृ० १७५-१९५।

वाटर्स, टॉमस, **आन युबानच्वांग्स् ट्रेवेल्स इन इण्डिया,** (पुनः मुद्रित); दिल्ली, १९६१। .

समाधिराजसूत्र, सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० २, दरभंगा १९६१।

सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र, सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० ५, दरभंगा, १९६१।

सुजूकी, डी० टी०, **एन इन्ट्रोडक्शन टु ज़ेन बुद्धिज्म,** ऐरोबुक्स, लन्दन, १९५९।

शिक्षासमुच्चय (शान्तिदेव), (१) सं० सेसिल बेण्डल, दि हेग, १९५७, (२) सं० प० ल० वैद्य, बौ० सं० ग्र० ११, दरभंगा १९६०।

शतसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, सं० प्रतापचन्द्रघोष (केवल १-१४ अध्याय), बिब्लियोथेका इण्डिका, कलकत्ता १९१२।

शेरबात्स्की, थि०, **बुद्धिस्ट लॉजिक,** २ भाग, बिब्लियोथेका बुद्धिका, सेंट पीटर्सबर्ग, १९३२ (पुनः मुद्रित, दि हेग १९५८)।

सांकृत्यायन, राहुल, **पुरातत्त्वनिबन्धावली,** द्वि० सं० प्रयाग, १९५८।

सोलोमन, ई० ए०, 'दि प्राब्लम ऑफ सर्वज्ञत्त्व', **ब्रह्मविद्या-अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन** वर्ष २६, १९६२।

शास्त्री, शान्तिभिक्षु **महायान,** विश्वभारती-शान्तिनिकेतन (तिथिविहीन)।

सेकोद्देशटीका, सं० एम० ई० कारेली, गा० आ० सि० ९०, बड़ौदा १९४१।

(इस तालिका में केवल वही ग्रन्थ अथवा लेख उल्लिखित हैं जिनसे प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में सहायता ली गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ व लेख और भी हैं जिनका प्रयोग 'भूमिका' में हुआ है जो अन्त में लिखी गई)।

■

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོ།

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] १९६० ।

[illegible] (जिल्द १-१४ भाग) [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (हिन्दी) ।

[illegible]

[illegible]

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། ཨཱརྻ་བཛྲཙྪེདིཀ་ནཱམ་པྲཛྙཱ་པཱརམིཏཱ་མཧཱཡཱན་སཱུཏྲ། བོད་སྐད་དུ། འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ། སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཐམས་ཅད་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། །འདི་སྐད་བདག་གིས་ཐོས་པ་དུས་གཅིག་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་མཉན་དུ་ཡོད་པ་ན་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱི་ཀུན་དགའ་ར་བ་ན། དགེ་སློང་སྟོང་ཉིས་བརྒྱ་ལྔ་བཅུའི་དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ཆེན་པོ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རབ་ཏུ་མང་པོ་དང་ཐབས་ཅིག་ཏུ་བཞུགས་ཏེ། དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་སྔ་དྲོའི་དུས་ཀྱི་ཚེ་ཤམ་ཐབས་དང་ཆོས་གོས་གསོལ་ཏེ་[1]ལྷུང་བཟེད་བསྣམས་ནས། མཉན་ཡོད་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོར་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་ཕྱིར་ཞུགས་སོ། །དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་མཉན་ཡོད་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོར་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་ཕྱིར་གཤེགས་ནས་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་ཞལ་ཟས་མཐུག་ཏུ་གསོལ་ཏེ། ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་མཛད་ནས་ཕྱི་མའི་བསོད་སྙོམས་སྤངས་པས།[2] ལྷུང་བཟེད་དང་ཆོས་གོས་བཞག་ནས་ཞབས་[3] བསིལ་ཏེ། གདན་བཤམས་པ་ལ་སྐྱིལ་མོ་ཀྲུང་བཅས་ནས་སྐུ་དྲང་པོར་བསྲང་སྟེ། དྲན་པ་མངོན་དུ་བཞག་ནས་བཞུགས་སོ། །དེ་ནས་དགེ་སློང་མང་པོ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ག་ལ་བ་དེར་དོང་སྟེ་ལྷགས་ནས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཞབས་ལ་མགོ་བོས་ཕྱག་འཚལ་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ལན་གསུམ་བསྐོར་བ་བྱས་ནས

1 བགོས་ཏེ། སྡེ། སྣ།

2 ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་མཛད། སྡེ། སྣ།

3 ཞལ་ སྡེ།

ཕྱོགས་གཅིག་ཏུ་འཁོད་དོ། །ཡང་དེའི་ཆེ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་འཁོར་དེ་ཉིད་དུ་[1]འདུས་པར་གྱུར་ཏེ་འདུག་གོ །དེ་ནས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་སྟན་ལས་ལངས་ཏེ། བླ་གོས་ཕྲག་པ་གཅིག་ཏུ་གཟར་ནས་པུས་མོ་གཡས་པའི་ལྷ་ང་ས་ལ་བཙུགས་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ག་ལ་བ་དེ་ལོགས་སུ་ཐལ་མོ་སྦྱར་བ་བཏུད་དེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རྣམས་ལ་ཕན་གདགས་པའི་དམ་པ་ཇི་སྙེད་པས་ཕན་གདགས་པ་དང་། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རྣམས་ལ་ཡོངས་སུ་གཏད་པའི་དམ་པ་ཇི་སྙེད་པས་ཡོངས་སུ་གཏད་པ་ནི། བཅོམ་ལྡན་འདས། ངོ་མཚར་ལགས་སོ།[2] །བདེ་བར་གཤེགས་པ། ངོ་མཚར་ལགས་སོ།[3] །བཅོམ་ལྡན་འདས། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བགྱི། ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བགྱི། ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བགྱི། དེ་སྐད་ཅེས་གསོལ་བ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། ལེགས་སོ། །ལེགས་སོ། །རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རྣམས་ལ་

---

1 ན་ སྔེ།
2 ལགས་ཏེ། སྔེ།
3 ལགས་ཏེ། སྔེ།

ཕན་གདགས་པའི་དམ་པས་ཕན་བཏགས་སོ། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རྣམས་ལ་ཡོངས་སུ་གཏད་པའི་དམ་པས་ཡོངས་སུ་གཏད་དོ། །རབ་འབྱོར། དེའི་ཕྱིར་ཉོན་ལ་ལེགས་པར་རབ་ཏུ་ཡིད་ལ་ཟུངས་[1]ཤིག་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་ངས་ཁྱོད་ལ་བཤད་དོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་ནོ།[2] །ཞེས་གསོལ་ནས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ལྟར་ཉན་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་ཇི་[3]ཙམ་སེམས་ཅན་དུ་བསྡུ་བ་[4]བསྡུས་པ་སྒོ་ང་ལས་སྐྱེས་པའམ། མངལ་ནས་སྐྱེས་པའམ། དྲོད་གཤེར་ལས་སྐྱེས་པའམ། བརྫུས་ཏེ་སྐྱེས་པའམ། གཟུགས་ཅན་ནམ། གཟུགས་མེད་པའམ། འདུ་ཤེས་ཅན་ནམ། འདུ་ཤེས་མེད་པའམ། འདུ་ཤེས་མེད་འདུ་ཤེས་མེད་མིན་ནམ། སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་ཇི་ཙམ་སེམས་ཅན་དུ་གདགས་པས་བཏགས་པ་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ཕུང་པོ་[5]ལྷག་མ་མེད་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་སུ་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་

1 ཟུང་ སྣེ།
2 དེ་དེ་བཞིན་ནོ།། སྣེ།
3 ཅི་ སྣེ།
4 བསྡུ་བར་ སྣེ།
5 ཕུང་པོའི་ སྣེ།

ལས་འདའོ།[1] །དེ་ལྟར་སེམས་ཅན་ཚད་མེད་པ་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་[2] ཀྱང་སེམས་ཅན་གང་ཡང་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པར་[3]གྱུར་པ་མེད་དོ།། སྙམ་དུ་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་ན། དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གང་སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་གམ། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་གམ།[4] གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་ན། དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།[5] །ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དངོས་པོ་ལ་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ།། ཆོས་ལ་[6]ཡང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ། །གཟུགས་ལའང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ། །སྒྲ་དང་། དྲི་དང་། རོ་དང་། རེག་བྱ་དང་། ཆོས་ལའང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ། །རབ་འབྱོར། ཅི་ནས་མཚན་མར་འདུ་ཤེས་པ་ལའང་མི་གནས་པ་དེ་ལྟར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ།[7] །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པ་དེའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ནི། རབ་འབྱོར། ཚད་གཟུང་བར་སླ་བ་མ་

---

1 བཟླའོ།། ལྷ།

2 བཟླས་ ལྷ།

3 བཟླས་པ་ ལྷ།

4 སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་སམ། སྣ།

5 ཕྱིར་ཏེ། སྣ།

6 ཆོས་གང་ལ་ ལྷ།

7 སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ།། ལྷ།

ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། ཤར་ཕྱོགས་ཀྱི་ནམ་མཁའི་ཚད་གཟུང་བར་སླའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི། མ་ལགས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། དེ་བཞིན་དུ་ལྷོ་དང་། ནུབ་དང་། བྱང་དང་། སྟེང་དང་། འོག་གི་ཕྱོགས་དང་། ཕྱོགས་མཚམས་དང་། ཕྱོགས་བཅུའི་ནམ་མཁའི་ཚད་གཟུང་བར་སླའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི། མ་ལགས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་དུ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པ་དེའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡང་ཚད་གཟུང་བར་སླ་བ་མ་ཡིན་ནོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་ཏེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་གང་གསུངས་པ་དེ་ཉིད་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུའོ། །དེ་སྐད་ཅེས་གསོལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས།[1] མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ཙམ་དུ་བརྫུན་ནོ། །ཇི་ཙམ་དུ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མེད་པ་དེ་ཙམ་དུ་མི་བརྫུན་ཏེ། དེ་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཚན་དང་མཚན་མེད་པར་བལྟའོ། །དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་པ་

1 རབ་འབྱོར། ཅི་ཙམ་དུ་ སྣེ།

དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། མ་འོངས་པའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ་ལ་དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པར་འགྱུར་བ་ན་སེམས་ཅན་གང་ལ་ལ་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག་བཤད་པ་འདི་ལ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་བ་ལྟ་མཆིས་སམ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། ཁྱོད་འདི་སྐད་དུ། མ་འོངས་པའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ་ལ་དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པར་འགྱུར་བ་ན་སེམས་ཅན་གང་ལ་ལ་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག་བཤད་པ་འདི་ལ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་བ་ལྟ་[1] མཆིས་སམ་ཞེས་མ་ཟེར་ཅིག ཡང་རབ་འབྱོར། མ་འོངས་པའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ་ལ་དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པར་འགྱུར་བ་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་ལྡན་པ། ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ། ཤེས་རབ་དང་ལྡན་པ་དག་འབྱུང་སྟེ། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དེ་དག་[2]ཀྱང་སངས་རྒྱས་གཅིག་ལ་བསྙེན་བཀུར་བྱས་པ་མ་ཡིན། སངས་རྒྱས་གཅིག་ལ་དགེ་བའི་རྩ་བ་བསྐྱེད་པ་མ་ཡིན་གྱི། རབ་འབྱོར། སངས་རྒྱས་བརྒྱ་སྟོང་མང་པོ་ལ་བསྙེན་བཀུར་བྱས་ཤིང་། སངས་རྒྱས་བརྒྱ་སྟོང་དུ་མ་ལ་དགེ་བའི་རྩ་བ་དག་བསྐྱེད་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དག་འབྱུང་ངོ་། །རབ་འབྱོར།[3] གང་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག

1 ལྟ་ སྣར་མི་སྣང་།
2 ཆེན་པོ་དག་ སྣ། སྣ།
3 རབ་འབྱོར། སྣར་མི་སྣང་།

བཤད་པ་འདི་ལ་སེམས་དད་པ་གཅིག་ཙམ་རྙེད་པར་འགྱུར་བ་དེ་དག་ནི། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན་ཏོ། །རབ་འབྱོར། དེ་དག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གཟིགས་ཏེ། རབ་འབྱོར། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་ཅིང་ རབ་ཏུ་སྡུད་པར་འགྱུར་རོ།།[1] དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དེ་དག་ནི་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་ཞིང་། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་མ་ཡིན། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་མ་ཡིན།[2] གང་ཟག་ཏུའང་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དེ་དག་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། ཆོས་མེད་པར་ཡང་འདུ་ཤེས་མི་འཇུག་སྟེ། དེ་དག་ནི་འདུ་ཤེས་དང་འདུ་ཤེས་མེད་པར་ཡང་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དེ་དག་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་ན། དེ་ཉིད་དེ་དག་གི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ཞིང་། སེམས་ཅན་དུ་འཛིན་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། གལ་ཏེ་ཆོས་མེད་པར་འདུ་ཤེས་[3]འཇུག་ནའང་དེ་ཉིད་དེ་དག་གི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ཞིང་། སེམས་ཅན་དུ་འཛིན་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། ཡང་

---

1 འགྱུར། སྡེ།
2 ཡིན་ཏེ། ལྷ།
3 འདུ་ཤེས་ ལྷ་ནང་མི་སྣང་།

རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་[1]ཆོས་ཀྱང་ལོག་པར་གཟུང་བར་མི་བྱ་སྟེ། ཆོས་མ་ཡིན་པ་ཡང་མི་གཟུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བས་ན། དེ་ལ་[2]དགོངས་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་[3]གཟིངས་ལྟ་བུར་ཤེས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་རྣམས་ཀྱང་སྤང་བར་བྱ་ན། ཆོས་མ་ཡིན་པ་རྣམས་ལྟ་ཅི་སྨོས་ཞེས་གསུངས་སོ། །གཞན་ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་གང་ཡང་བསྟན་ཏམ། དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་པ་དང་།[4] བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས།[5] བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་པའི་དོན་འདི་[6]བདག་གིས་འཚལ་བ་ལྟར་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་[7]མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་སོ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བསྟན་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་

1 སེམས་དཔའ་ སྣ།

2 དེ་ལས་ ལྷ།

3 འདི་ སྡེ་དང་སྣ་ནང་མི་སྣང་།

4 བཀའ་སྩལ་ནས། སྡེ།

5 བཅོམ་ལྡན་འདས། སྣ་ནང་མི་སྣང་།

6 འདི་ སྡེ་ནང་མི་སྣང་།

7 ཏུ་ ལྷ་ནང་མི་སྣང་།

མ་མཆིས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་གང་ཡང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའམ་བསྟན་པ་དེ་ནི་[1]གཟུང་དུ་མ་མཆིས། བརྗོད་དུ་མ་མཆིས་ཏེ། དེ་ནི་ཆོས་ཀྱང་མ་ལགས། ཆོས་མ་མཆིས་པ་ཡང་མ་ལགས་པའི་སླད་དུའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། འཕགས་པའི་གང་ཟག་རྣམས་ནི། འདུས་མ་བགྱིས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་སླད་དུའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་ལ་ལ་ཞིག་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་ན། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མང་དུ་བསྐྱེད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། མང་ལགས་སོ། །བདེ་བར་གཤེགས་པ། མང་ལགས་ཏེ། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མང་དུ་བསྐྱེད་དོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དེ་ཉིད་ཕུང་པོ་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ། ཞེས་གསུངས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། གང་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་

---

1 ནི་ སྡེ་དང་མ་མཆིས།

ཚིགས་སུ་བཅད་པ་གཅིག་ཙམ་བཟུང་ནས་གཞན་དག་ལ་ཡང་འཆད་ཅིང་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་ན། དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི་འདི་ལས་བྱུང་སྟེ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཀྱང་འདི་ལས་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་དེ་དག་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱའོ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་སེམས་སམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་ཅི་ལའང་ཞུགས་པ་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ཞེས་བགྱིའོ།། གཟུགས་ལའང་མ་ཞུགས། སྒྲ་ལ་མ་ལགས། དྲི་ལ་མ་ལགས། རོ་ལ་མ་ལགས། རེག་བྱ་ལ་མ་ལགས། ཆོས་ལའང་མ་ཞུགས་ཏེ། དེས་ན་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། གལ་ཏེ་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་དེ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་པར་གྱུར་ན། དེ་ཉིད་དེའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།།[1] སེམས་ཅན་དུ་

1 བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་རོ།། སྣ།

འཛིན་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།[1] །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་སམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། གང་ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བ་ཉིད་དུ་ཞུགས་པའི་ཆོས་[2]དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། ཕྱིར་མི་འོང་བ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་ཕྱིར་མི་འོང་བའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་སམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། གང་ཕྱིར་མི་འོང་བ་ཉིད་དུ་ཞུགས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་ཕྱིར་མི་འོང་བ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། ཡང་[3]དགྲ་བཅོམ་པ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་དགྲ་བཅོམ་པ་ཉིད་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་སམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། གང་དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བགྱི་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུའོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས། གལ་ཏེ་དགྲ་བཅོམ་པ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་

1 འཛིན་པར་འགྱུར་རོ།། སྣི།
2 གང་ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བའི་ཆོས་ སྣི།
3 ཡང་ ལྷ་ནང་མ་མཆིས།

དགྲ་བཅོམ་པ་ཉིད་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་པར་གྱུར་ན། དེ་ཉིད་དེའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།[1] །སེམས་ཅན་དུ་འཛིན་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།།[2] བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་ཏུ་བསྟན་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་དགྲ་བཅོམ་པ་ལགས་ཀྱང་། བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་འདི་སྙམ་དུ། བདག་ནི་དགྲ་བཅོམ་པའོ། །སྙམ་དུ་མི་སེམས་ལགས་སོ།[3] །བཅོམ་ལྡན་འདས། གལ་ཏེ་བདག་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་དགྲ་བཅོམ་པ་ཉིད་ཐོབ་བོ། །སྙམ་དུ་སེམས་པར་གྱུར་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བདག་ལ། རིགས་ཀྱི་བུ་རབ་འབྱོར་ནི་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་ཡིན་ཏེ། ཅི་ལའང་མི་གནས་པས་ན་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ། ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་ཞེས་ལུང་མི་སྟོན་ལགས་སོ།།[4] བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་

---

1 འཛིན་པར་འགྱུར་རོ།། ཞི།

2 འཛིན་པར་འགྱུར་རོ།། ཞི།

3 མི་སེམས་སོ།། ཞི།

4 མི་སྟོན་ཏོ།། ཞི།

ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་ཐོབ་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། བདག་གིས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་བསྒྲུབ་པར་བྱའོ། །ཞེས་ཟེར་ན། དེ་ནི་མི་བདེན་པར་སྨྲ་བའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཀོད་པ་དེ་དག་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། དེ་ལྟ་བས་ན། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོས་འདི་ལྟར་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པ་ཞེས་བྱའོ།།[1] ཅི་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །གཟུགས་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ།། སྒྲ་དང་། དྲི་དང་། རོ་དང་། རེག་བྱ་དང་། ཆོས་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། སྐྱེས་བུ་ཞིག་ལུས་འདི་ལྟ་བུར་གྱུར་ཏེ། འདི་ལྟ་སྟེ། རིའི་རྒྱལ་པོ་རི་རབ་ཙམ་དུ་གྱུར་ན། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། ལུས་དེ་ཆེ་བ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། ལུས་དེ་ཆེ་བ་ལགས་སོ། །བདེ་བར་གཤེགས་པ། ལུས་དེ་ཆེ་བ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་དངོས་པོ་མ་མཆིས་པར་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་ལུས་ཞེས་བགྱིའོ། །དེ་དངོས་པོ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་

1 སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ།། སྣ།

གསུངས་ཏེ། དེས་ན། ལུས་ཞེས་བགྱིའོ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གངྒཱའི་[1]ཀླུང་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་[2]གངྒཱའི་ཀླུང་ཡང་དེ་སྙེད་ཁོ་ནར་གྱུར་ན། དེ་དག་གི་བྱེ་མ་གང་ཡིན་པ་དེ་དག་མང་བ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། གངྒཱའི་[3]ཀླུང་དེ་དག་ཉིད་ཀྱང་མང་བ་ལགས་ན། དེ་དག་གི་བྱེ་མ་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་འཚལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། ཁྱོད་ཀྱིས་མོས་པར་བྱ། ཁྱོད་ཀྱིས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། །གངྒཱའི་[4]ཀླུང་དེ་དག་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་དེ་སྙེད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཀྱི་སྐྱེས་པའམ། བུད་མེད་གང་ལ་ལ་ཞིག་གིས་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྣམས་ལ་སྦྱིན་པ་བྱིན་ན། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྐྱེས་པའམ་བུད་མེད་དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་མང་དུ་བསྐྱེད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། མང་ལགས་སོ། །བདེ་བར་གཤེགས་པ། མང་ལགས་ཏེ། སྐྱེས་པ་འམ་བུད་མེད་དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་མང་དུ་བསྐྱེད་དོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། གང་གིས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དེ་སྙེད་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་

1 གང་གཱའི་ སྡེ། སྣ།
2 སྙེད་པ་གང་ སྡེ། སྣ།
3 གང་གཱའི་ སྡེ། སྣ།
4 གང་གཱའི་ སྡེ། སྣ།

རྣམས་ལ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། གང་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་བཟུང་ནས་གཞན་དག་ལ་ཡང་བཤད་དེ་[1] ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་བསྟན་ན། དེ་ཉིད་[2]གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། ས་ཕྱོགས་གང་ན་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་འདོན་ཏམ། བརྗོད་པའི་[3]ས་ཕྱོགས་དེ། ལྷ་དང་། མི་དང་། ལྷ་མ་ཡིན་དུ་བཅས་པའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་ཡིན་ན། སུ་ཞིག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དང་། ཚུལ་བཞིན་དུ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་དེ། ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་བ་ལྟ་ཅི་སྨོས། ས་ཕྱོགས་དེ་ན་སྟོན་པ་ཡང་བཞུགས་ཏེ། བླ་མའི་གནས་གཞན་དག་ཀྱང་གནས་སོ། །དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདིའི་མིང་ཅི་ལགས། ཇི་ལྟར་གཟུང་བར་བགྱི། དེ་སྐད་བཅས་གསོལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་སྟེ། འདི་དེ་ལྟར་ཟུངས་[4]ཤིག དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་

---

1 གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ སྡེ།
2 དེ་ཉིད་དེའི་ སྣ།
3 སྟོན་ སྡེ།
4 ཟུང་ སྡེ། སྣ།

འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་བཟུང་བ་[1] དེ་ཉིད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་གསུངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་གསུངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ན་སའི་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་དེ་མང་བ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། སའི་རྡུལ་དེ་མང་ལགས་སོ། །བདེ་བར་གཤེགས་པ། མང་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། སའི་རྡུལ་གང་ལགས་པ་དེ་རྡུལ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་སའི་རྡུལ་ཞེས་བགྱིའོ། །འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་གང་ལགས་པ་དེ་ཁམས་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྐྱེས་བུ་ཆེན་པོའི་མཚན་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པོ་དེ་དག་གིས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་སུ་བལྟའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། སྐྱེས་བུ་ཆེན་པོའི་མཚན་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པོ་གང་དག་དེ་བཞིན་

1 ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་གསུངས་པ་ ལྷ། སྣ།

གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དེ་དག་མཚན་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སྐད་དུ་སྟེ། དེས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མཚན་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། ཡང་རབ་འབྱོར། སྐྱེས་པའམ་བུད་མེད་གང་གིས་ལུས་གང་གཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད་ཡོངས་སུ་བཏང་བ་[1]བས། གང་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་བཟུང་སྟེ་གཞན་དག་ལ་ཡང་བསྟན་ན། དེ་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ། །དེ་ནས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ཆོས་ཀྱི་ཤུགས་ཀྱིས་མཆི་མ་ཕྱུང་[2]སྟེ། དེས་མཆི་མ་ཕྱིས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །འདི་ལྟར་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་ནི། བཅོམ་ལྡན་འདས། ངོ་མཚར་ལགས་སོ།།[3] བདེ་བར་གཤེགས་པ། ངོ་མཚར་ལགས་སོ།།[4] བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་གི་ཡེ་ཤེས་སྐྱེས་ཚུན་ཆད་བདག་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་སྔོན་ནམ་ཡང་མ་ཐོས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། མདོ་བཤད་པ་འདི་ལ་གང་དག་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་པའི་སེམས་ཅན་དེ་དག་ནི་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།[5] །དེ་ཅིའི་སྐད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་

1 གཏོང་བ་ སྡེ།

2 ཕྱུང་ སྡེ།

3 ངོ་མཚར་ཏོ།། སྡེ།

4 ངོ་མཚར་ཏོ།། སྡེ།

5 ལྡན་པར་འགྱུར་རོ།། སྡེ།

ལྡན་འདས། ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་གང་ལགས་པ་དེ་ཉིད་འདུ་ཤེས་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེ་བས་ན་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་ཞེས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་བཤད་པ་ལ་རྟོག་ཅིང་མོས་པ་ནི། བདག་ལ་མོས་པ་མ་ལགས་ཀྱི། བཅོམ་ལྡན་འདས། སླད་མའི་ཚེ་སླད་མའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་པ་[1]ཐ་མ་ལ་སེམས་ཅན་གང་དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བགྱིད་པ་དེ་དག་ནི། ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ།[2] །ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དག་ནི་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་གང་ལགས་པ་དེ་དག་ཉིད་འདུ་ཤེས་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ནི་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བའི་སླད་དུའོ། །དེ་སྐད་ཅེས་གསོལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། མདོ་འདི་[3]བཤད་པ་འདི་ལ་གང་དག་མི་སྐྲག་མི་དངང་ཞིང་དངང་བར་མི་

1 པ་ ལྷ་དང་སྣར་ནང་མ་མཆིས།
2 ལྡན་པར་འགྱུར་རོ།། སྡེ།
3 འདི་ སྡེ་ནང་མི་སྣང་།

འགྱུར་བའི་སེམས་ཅན་དེ་དག་ནི་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དམ་པ་འདི་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དམ་པ་གང་དག་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དེ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔག་ཏུ་མེད་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་[1]གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དམ་པ་ཞེས་བྱའོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་དོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གང་གི་ཚེ་ཀ་ལིང་ཀའི་རྒྱལ་པོས་ངའི་ཡན་ལག་དང་། ཉིང་ལག་རྣམ་པར་བཅད་པར་གྱུར་པ་དེའི་ཚེ་ང་ལ་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་སམ། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་སམ། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་སམ། གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་ཀྱང་མ་བྱུང་ཞིང་།[2] ང་ལ་འདུ་ཤེས་ཅི་ཡང་མེད་ལ། འདུ་ཤེས་མེད་པར་གྱུར་པ་ཡང་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་དེའི་ཚེ་ང་ལ་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་བྱུང་ན། དེའི་ཚེ་གནོད་སེམས་ཀྱི་འདུ་ཤེས་ཀྱང་བྱུང་ལ། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་བྱུང་ན། དེའི་ཚེ་གནོད་སེམས་ཀྱི་འདུ་ཤེས་ཀྱང་འབྱུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། ངས་མངོན་པར་ཤེས་ཏེ། འདས་པའི་དུས་ན་ང་ཚེ་རབས་ལྔ་བརྒྱར་བཟོད་པར་སྨྲ་བ་ཞེས་བྱ་བའི་དྲང་སྲོང་དུ་གྱུར་པ་དེ་ན་ཡང་ང་ལ་བདག

1 ཀྱང་ སྡེ་ནང་མི་སྣང་།

2 མ་ཕྱུང་ལ། སྡེ།

ཏུ་འདུ་ཤེས་མ་བྱུང་། སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་མ་བྱུང་ངོ་། །རབ་འབྱོར། དེ་ལྟ་བས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོས་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་སྤངས་ཏེ་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །གཟུགས་ལ་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །སྒྲ་དང་། དྲི་དང་། རོ་དང་། རེག་བྱ་དང་། ཆོས་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ།། ཆོས་མེད་པ་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །ཅི་ལའང་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། གནས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་མི་གནས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་འདི་སྐད་དུ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ། །ཞེས་གསུངས་སོ། ། ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདི་ལྟར་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་གྱི་ཕྱིར་སྦྱིན་པ་ཡོངས་སུ་གཏང་[1]བར་བྱའོ། །སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ཀྱང་འདུ་ཤེས་མེད་པ་སྟེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཅེས་གང་གསུངས་པ་དེ་ཉིད་ཀྱང་མེད་པའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ནི། ཡང་དག་པར་གསུང་བ། བདེན་པ་གསུང་བ། དེ་བཞིན་ཉིད་དུ་[2]གསུང་བ་སྟེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ནི་མ་ནོར་བ་དེ་བཞིན་ཉིད་གསུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་

1 བཏང་ སྣ།
2 དུ་ སྔོན་མེད།

ཆོས་གང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའམ། བསྟན་[1]པ་དེ་ལ་ནི། བདེན་པ་ཡང་མེད། རྫུན་པ་ཡང་མེད་དོ། རབ་འབྱོར་འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། མིག་དང་ལྡན་པའི་མི་ཞིག་མུན་པར་ཞུགས་ན་ཅི་ཡང་མི་མཐོང་བ་དེ་བཞིན་དུ་གང་དངོས་པོར་ལྷུང་བས་སྦྱིན་པ་ཡོངས་སུ་གཏོང་བའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔར་བལྟའོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། ཉམ་ལངས་ཏེ་ཉི་མ་ཤར་ན་[2] མིག་དང་ལྡན་པའི་མིས་གཟུགས་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་དག་མཐོང་བ་དེ་བཞིན་དུ་གང་དངོས་པོར་མ་ལྷུང་བས་སྦྱིན་པ་ཡོངས་སུ་གཏོང་བའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔར་བལྟའོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དང་། གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་པ་དེ་དག་ནི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན། དེ་དག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གཟིགས་ཏེ། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་རོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། སྐྱེས་པའམ། བུད་མེད་གང་ཞིག་སྔ་དྲོའི་དུས་ཀྱི་ཚེ་ལུས་གངྒཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད་ཡོངས་སུ་གཏོང་ལ། ཕྱེད་ཀྱི་དུས་དང་། ཕྱི་དྲོའི་དུས་ཀྱི་ཚེ་ཡང་ལུས་གངྒཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད་ཡོངས་སུ་གཏོང་སྟེ། རྣམ་གྲངས་འདི་ལྟ་བུར་བསྐལ་པ་ཁྲག་ཁྲིག་འབུམ་ཕྲག་དུ་མར་ལུས་ཡོངས་སུ་གཏོང་བ་བས། གང་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ཐོས་

---

1 བསྙེན་ སྡེ།

2 ནས་ ལྷ།

ནས་མི་སྲོང་ན། དེ་ཉིད་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་ན། གང་གིས་ཡི་གེར་བྲིས་ནས་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དང་། གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་པ་ལྟ་ཅི་སྨོས། ཡང་རབ་འབྱོར། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ནི། བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་ཅིང་མཚུངས་པ་མེད་དེ། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ནི། ཐེག་པ་མཆོག་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུཏ་པའི་སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་དོན་དང་། ཐེག་པ་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པའི་སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་དོན་གྱི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་སོ། །གང་དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དང་། གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་པ་དེ་དག་ནི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན།[1] དེ་དག་ནི་[2]དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གཟིགས་ཏེ། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་རོ། །བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་དང་། མཚུངས་པ་མེད་པ་དང་། གཞལ་དུ་མེད་པ་དང་། ཚད་མེད་པ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ཏེ། སེམས་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ངའི་བྱང་ཆུབ་ཕྲག་པ་ལ་ཐོགས་པར་འགྱུར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དམན་པ་ལ་མོས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་མཉན་པར་མི་[3]ནུས་ཏེ། བདག་ཏུ་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས་མ་

1 མཁྱེན་ཏོ། སྣེ།

2 ནི་ སྣེ་ནང་མེད།

3 མ་ སྣེ།

ཡིན། སེམས་ཅན་དུ་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས་མ་ཡིན། སྲོག་ཏུ་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས་མ་ཡིན། གང་ཟག་ཏུ་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས་མཉན་པ་དང་། སླང་བ་དང་། གཟུང་བ་དང་། བཟླག་[1]པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་མི་ནུས་ཏེ། དེ་ནི་གནས་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། ས་ཕྱོགས་གང་ན་མདོ་སྡེ་འདི་སྟོན་པའི་ས་ཕྱོགས་དེ། ལྷ་དང་། མི་དང་། ལྷ་མ་ཡིན་དུ་བཅས་པའི་འཇིག་རྟེན་གྱིས་མཆོད་པར་འོས་པར་འགྱུར་རོ། །ས་ཕྱོགས་དེ་ཕྱག་བྱ་བར་འོས་པ་དང་། བསྐོར་བ་བྱ་བར་འོས་པར་འགྱུར་ཏེ།[2] ས་ཕྱོགས་དེ་ནི་[3]མཆོད་རྟེན་ལྟ་བུར་འགྱུར་རོ།། རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག་འདི་དག་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དེ་དག་ནི། མནར་བར་འགྱུར། ཤིན་ཏུ་མནར་བར་འགྱུར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། སེམས་ཅན་དེ་དག་གིས་ཚེ་རབས་སྔ་མའི་མི་དགེ་བའི་ལས་ངན་སོང་དུ་སྐྱེ་བར་འགྱུར་བ་གང་དག་བྱས་པ་དག་ཚེ་འདི་ཉིད་ལ་མནར་བས། ཚེ་རབས་སྔ་མའི་མི་དགེ་བའི་ལས་དེ་དག་འབྱང་བར་འགྱུར་ཏེ། སངས་རྒྱས་ཀྱི་བྱང་ཆུབ་ཀྱང་འཐོབ་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། ངས་མངོན་པར་ཤེས་ཏེ། འདས་པའི་དུས་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པའི་ཡང་ཆེས་གྲངས་མེད་པ་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་མར་མེ་མཛད་ཀྱི་ཕ་རོལ་གྱི་ཡང་ཆེས་ཕ་རོལ་ན། སངས་རྒྱས་བྱེ་བ་ཁྲག་

1 ཀློག་ ལྷ། སྣ།
2 འགྱུར་རོ།། ལྷ། སྣ།
3 ནི་ སྡེ་ནང་མ་མཆིས།

ཁྲིག་འབུམ་ཕྲག་[1]བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་དག་བྱུང་བ་ངས་མཉེས་པར་བྱས་ཏེ། མཉེས་པར་བྱས་ནས་ཐུགས་མ་ཕྱུང་[2]བར་བྱས་ཏེ། རབ་འབྱོར། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་དག་ངས་མཉེས་པར་བྱས་ནས་ཐུགྲ་བྱུང་བར་མ་བྱས་པ་གང་ཡིན་པ་དང་། ཕྱི་མའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མར་གྱུར་པ་ན། མདོ་སྡེ་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་གང་ཡིན་པ་ལས། རབ་འབྱོར། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་འདི་ལ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྔ་མས་བརྒྱའི་ཆར་ཡང་མི་ཕོད། སྟོང་གི་ཆ་དང་། འབུམ་གྱི་ཆ་དང་། གྲངས་དང་། ཆ་དང་། བགྲང་བ་དང་། དཔེ་དང་། ཟླ་དང་། རྒྱུར་ཡང་མི་བཟོད་དོ། །རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་དེའི་ཚེ་རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དག་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཇི་སྙེད་རབ་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་བའི་རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དེ་དག་གི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ངས་བརྗོད་ན། སེམས་ཅན་རྣམས་མྱོ་མྱོ་པོར་འགྱུར་ཏེ། སེམས་འཁྲུགས་པར་འགྱུར་རོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་སྟེ། འདིའི་རྣམ་པར་སྨིན་པ་ཡང་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་ཉིད་དུ་[3]རིག་པར་བྱའོ། །དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བགྱི། ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བགྱི། ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བགྱི། བཅོམ་ལྡན་འདས་

1 སྟོང་ཕྲག་ སྡེ།

2 བྱུང་ སྡེ།

3 བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པར་ སྡེ།

ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཕུང་པོ་[1]ལྷག་མ་མེད་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་སུ་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདའོ།[2] །དེ་ལྟར་སེམས་ཅན་རྣམས་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་[3]ཀྱང་སེམས་ཅན་གང་ཡང་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་[4]པར་གྱུར་པ་མེད་དོ། །སྙམ་དུ་[5]སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་ན། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱ་ལ། གང་ཟག་གི་བར་དུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་ན་ཡང་དེ་[6]བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་པ་དང་།[7] བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་

---

1 ཕུང་པོའི་ སྡེ།

2 བཟླའོ།། ལྷ།

3 བཟླས་ ལྷ།

4 བཟླས་ ལྷ།

5 མེད་སྙམ་དུ་ སྣ།

6 འཇུག་ན་དེ་ཡང་ སྡེ།

7 བཀའ་སྩལ་ནས། སྡེ།

ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་ཡང་[1]མ་མཆིས་སོ། །དེ་སྐད་ཅེས་གསོལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དོ། །རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་འགའ་ཞིག་ཡོད་པར་གྱུར་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ཀྱིས་ང་ལ་བྲམ་ཟེའི་ཁྱེའུ། ཁྱོད་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ཞེས་བྱ་བར་འགྱུར་རོ། །ཞེས་ལུང་མི་སྟོན་པ་ཞིག་ན། རབ་འབྱོར། འདི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པས། དེའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ཀྱིས་ང་ལ་བྲམ་ཟེའི་ཁྱེའུ། ཁྱོད་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ཞེས་བྱ་བར་འགྱུར་རོ། །ཞེས་ལུང་བསྟན་ཏོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་

1 ཆོས་དེ་གང་ཡང་ སྣྲ

པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི། ཡང་དག་པ་དེ་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཚིག་བླ་དྭགས་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། རབ་འབྱོར། གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བླ་ན་མེད་པར་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་སོ། །ཞེས་ཟེར་ན། དེ་ལོག་པར་སྨྲ་བ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་གང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་དེ་ལ་བདེན་པ་ཡང་མེད། བརྫུན་པ་ཡང་མེད་དེ། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་ཐམས་ཅད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་སོ། །ཞེས་གསུང་ངོ་།[1] །རབ་འབྱོར། ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་ནི། དེ་དག་ཐམས་ཅད་ཆོས་མེད་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན། ཆོས་ཐམས་ཅད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་ཞེས་བྱའོ།།[2] རབ་འབྱོར། འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། མི་ཞིག་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོར་གྱུར་པ་བཞིན་ནོ།། ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མི་ཞིག་[3]ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ལུས་མ་མཆིས་པར་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་

1 གསུངས་སོ།། སྡེ།

2 བྱ་སྟེ། སྡེ།

3 དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མི་ སྡེ།

ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་ཡང་[1]མ་མཆིས་སོ། །དེ་སྐད་ཅེས་གསོལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པོ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ། །རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དོ། །རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་འགའ་ཞིག་ཡོད་པར་གྱུར་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ཀྱིས་ང་ལ་བྲམ་ཟེའི་ཁྱེའུ། ཁྱོད་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ཞེས་བྱ་བར་འགྱུར་རོ། །ཞེས་ལུང་མི་སྟོན་པ་ཞིག་ན། རབ་འབྱོར། འདི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པས། དེའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ཀྱིས་ང་ལ་བྲམ་ཟེའི་ཁྱེའུ། ཁྱོད་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ཞེས་བྱ་བར་འགྱུར་རོ། །ཞེས་ལུང་བསྟན་ཏོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་

1 ཆོས་དེ་གང་ཡང་ སྡེ།

པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི། ཡང་དག་པ་དེ་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཚིག་བླ་དྭགས་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། རབ་འབྱོར། གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བླ་ན་མེད་པར་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་སོ། །ཞེས་ཟེར་ན། དེ་ལོག་པར་སྨྲ་བ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་གང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་དེ་ལ་བདེན་པ་ཡང་མེད། བརྫུན་པ་ཡང་མེད་དེ། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་ཐམས་ཅད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་སོ། །ཞེས་གསུང་ངོ་།[1] །རབ་འབྱོར། ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་ནི། དེ་དག་ཐམས་ཅད་ཆོས་མེད་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན། ཆོས་ཐམས་ཅད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་ཞེས་བྱའོ།།[2] རབ་འབྱོར། འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། མི་ཞིག་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོར་གྱུར་པ་བཞིན་ནོ།། ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མི་ཞིག་[3]ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ལུས་མ་མཆིས་པར་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་

1 གསུངས་སོ།། སྡེ།
2 བྱ་སྟེ། སྡེ།
3 དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མི་ སྡེ།

འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་འདི་སྐད་དུ། བདག་གིས་སེམས་ཅན་རྣམས་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདའོ།།[1] ཞེས་ཟེར་ན། དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། གང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་མཆིས་ལགས་སོ།།[2] བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི། སེམས་ཅན་མེད་པ། སྲོག་མེད་པ། གང་ཟག་མེད་པའོ།།[3] ཞེས་གསུང་ངོ་།།[4] རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། བདག་གིས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་བསྒྲུབ་བོ། །ཞེས་ཟེར་ན། དེ་ཡང་དེ་བཞིན་དུ་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ནི།[5] དེ་དག་བཀོད་པ་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱའོ།། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་ཆོས་རྣམས་ནི། བདག་མེད་པའོ།། ཆོས་རྣམས་ནི་བདག་མེད་པའོ། །ཞེས་མོས་པ་དེ་ནི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་

1 བཟླའོ།། ལྷ།
2 དེ་ནི་མ་མཆིས་སོ།། ཕྱི།
3 གང་ཟག་མེད་པ། ཕྱི།
4 གསུངས་སོ།། ཕྱི།
5 བྱ་བ་ནི། ཕྱི།

སེམས་དཔའ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའོ། །ཞེས་བརྗོད་དོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤའི་སྤྱན་མངའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤའི་སྤྱན་མངའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ལྷའི་སྤྱན་མངའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ལྷའི་སྤྱན་མངའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་སྤྱན་མངའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་སྤྱན་མངའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཆོས་ཀྱི་སྤྱན་མངའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཆོས་ཀྱི་སྤྱན་མངའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྤྱན་མངའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྤྱན་མངའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གངྒཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་གངྒཱའི་ཀླུང་ཡང་དེ་སྙེད་དུ་གྱུར་ལ། དེ་དག་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་དེ་སྙེད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་སུ་གྱུར་ན། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དེ་དག

ཅེ་[1]མང་བ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དེ་དག་མང་བ་ལགས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དེ་དག་ན་སེམས་ཅན་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་དེ་དག་གི་བསམ་པ་ཐ་དད་པའི་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་[2]ངས་རབ་ཏུ་ཤེས་སོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་[3]སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་[4]ཞེས་བྱ་བ་ནི། དེ་རྒྱུན་[5]མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན། སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་[6]ཞེས་བྱའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། འདས་པའི་སེམས་ཀྱང་དམིགས་སུ་མེད། མ་འོངས་པའི་སེམས་ཀྱང་དམིགས་སུ་མེད། ད་ལྟར་བྱུང་བའི་སེམས་ཀྱང་དམིགས་སུ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་ཡོངས་སུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་ན། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དེ། གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་མང་དུ་བསྐྱེད་དམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། མང་ལགས་སོ། །བདེ་བར་གཤེགས་པ། མང་ལགས་སོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་དེ།

---

1 ཁམས་དེ་ སྡེ།

2 རྒྱུད་ སྡེ།

3 རྒྱུད་ སྡེ།

4 རྒྱུད་ སྡེ།

5 རྒྱུད་ སྡེ།

6 རྒྱུད་ སྡེ།

གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མང་དུ་བསྐྱེད་[1]དོ། །རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་[2]བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོར་གྱུར་ན། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཞེས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མི་གསུང་ངོ་། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པ་[3]དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་ཏེ། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པ་ཞེས་བགྱི་བ་ནི། དེ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི། མ་ལགས་ཏེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་གང་གསུངས་པ་དེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་

1 མང་པོ་སྐྱེད་ སྡེ།

2 བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ སྡེ་ནང་མི་གསལ།

3 གྲུབ་པས་ སྡེ།

སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འདི་སྙམ་དུ། ངས་ཆོས་བསྟན་ཏོ་ཞེས་དགོངས་སོ། །སྙམ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་ལྟར་མི་བལྟ་སྟེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བསྟན་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དོ། །རབ་འབྱོར། སུ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་བསྟན་ཏོ། །ཞེས་ཟེར་ན། རབ་འབྱོར། དེ་ནི་མེད་པ་དང་། ལོག་པར་ཟིན་པས་ང་ལ་སྐུར་བར་འགྱུར་རོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། ཆོས་བསྟན་པ་ཞེས་བྱ་བ་དམིགས་པར་འགྱུར་བའི་ཆོས་བསྟན་པ་ཆོས་བསྟན་པ་ཞེས་བྱ་བ་དེ། གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་[1]གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས། མ་འོངས་པའི་དུས་ན་སེམས་ཅན་གང་དག་འདི་ལྟ་བུའི་ཆོས་བསྟན་པ་འདི་ཐོས་ནས་མངོན་པར་ཡིད་ཆེས་པར་འགྱུར་བ་མཆིས་སམ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་དག་ནི་སེམས་ཅན་ཡང་མ་ཡིན། སེམས་ཅན་མེད་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། སེམས་ཅན་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་དག་སེམས་ཅན་མེད་པར་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་སེམས་ཅན་རྣམས་ཞེས་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པ་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ། ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་

1 ཅེས་ ལྷ་ནང་མི་སྣང་།

བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་ལགས་སོ།།[1] བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ནོ། །དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། དེ་ཆོས་ཉུང་ཟད་ཀྱང་མེད་ཅིང་མི་དམིགས་ཏེ། དེས་ན་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཅེས་བྱའོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། ཆོས་དེ་ནི་མཉམ་པ་སྟེ། དེ་ལ་མི་མཉམ་པ་གང་ཡང་མེད་པས་དེས་ན། བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཅེས་བྱའོ། །བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་དེ་ནི།[2] བདག་མེད་པ་དང་། སེམས་ཅན་མེད་པ་དང་། སྲོག་མེད་པ་དང་། གང་ཟག་མེད་པར་མཉམ་པ་སྟེ།[3] དགེ་བའི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱའོ། །རབ་འབྱོར། དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དེ་དག་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཆོས་མེད་པ་ཉིད་དུ་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱའོ།། ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་ལ་ལ་ཞིག་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ན་རིའི་རྒྱལ་པོ་རི་རབ་གང་དག་[4] ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་དེ་ཙམ་གྱི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱི་ཕུང་པོ་མངོན་པར་བསྡུས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། གང་གིས་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་བཟུང་ནས་གཞན་དག་ལ་ཡང་བསྟན་ན།

1 མ་མཆིས་སོ།། སྡེ།
2 བྱང་ཆུབ་ནི། སྡེ།
3 མཉམ་སྟེ། སྡེ།
4 རི་རབ་དག སྡེ།

རབ་འབྱོར། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་འདི་ལ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྔ་མ་དེས་བརྒྱའི་ཆར་ཡང་མི་ཕོད་པ་ནས་རྒྱུའི་བར་དུ་ཡང་ཉེ་བར་མི་བཟོད་དོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འདི་སྙམ་དུ། ངས་སེམས་ཅན་རྣམས་བཀྲོལ་ལོ་ཞེས་དགོངས་སོ། །སྙམ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་དེ་ལྟར་མི་བལྟའོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བཀྲོལ་བའི་སེམས་ཅན་དེ་དག་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །རབ་འབྱོར། གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་སེམས་ཅན་གང་ལ་ལ་ཞིག་བཀྲོལ་བར་གྱུར་ན། དེ་ཉིད་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར། སེམས་ཅན་དུ་འཛིན་པ་དང་། སྲོག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་རོ། །རབ་འབྱོར། བདག་ཏུ་འཛིན་ཅེས་བྱ་བ་ནི། དེ་འཛིན་པ་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ན། དེ་ཡང་བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས་བཟུང་ངོ་། །རབ་འབྱོར། བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དེ་དག་སྐྱེ་བོ་མེད་པ་ཉིད་དུ་[1]དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཞེས་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་ཏེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། དེ་དེ་བཞིན་ཏེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །རབ་

1 དེ་དག་སྐྱེ་བོ་མེད་པར་ སྣ།

འབྱོར། གལ་ཏེ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟ་བར་གྱུར་ན། འཁོར་ལོས་བསྒྱུར་པའི་རྒྱལ་པོ་ཡང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་བས་ན་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་པའི་དོན་བདག་གིས་འཚལ་བ་ལྟར་ན། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་བལྟའོ། །དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེའི་ཚེ་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་འདི་དག་བཀའ་སྩལ་ཏོ།།

གང་དག་ང་ལ་གཟུགས་སུ་མཐོང་། །གང་དག་ང་ལ་སྒྲར་ཤེས་པ། །
ལོག་པར་སྤོང་བས་[1]ཞུགས་པ་སྟེ། །སྐྱེ་བོ་དེ་དག་ང་མི་མཐོང་། །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་ཆོས་ཉིད་བལྟ། །འདྲེན་པ་རྣམས་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ། །
ཆོས་ཉིད་ཤེས་པར་[2]བྱ་མིན་པས། །དེ་ནི་རྣམ་པར་ཤེས་མི་ནུས། །

རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་སོ། །སྙམ་དུ་འཛིན་ན། རབ་འབྱོར། ཁྱོད་ཀྱིས་དེ་ལྟར་མི་བལྟ་སྟེ། རབ་འབྱོར། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་མེད་དོ། །རབ་འབྱོར། འདི་སྙམ་དུ།[3] བྱང་ཆུབ་

1 སྤོང་བར་ སྡེ།
2 ཆོས་ཉིད་རིག་པར་ སྡེ།
3 འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྡེ།

སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་ལ་ལ་ཞིག་རྣམ་པར་བཤིག་གམ། ཆད་པར་བཏགས་པ་སྙམ་དུ་འཛིན་ན། རབ་འབྱོར། དེ་ལྟར་མི་བལྟ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་པའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་གང་ཡང་རྣམ་པར་བཤིག་པའམ། ཆད་པར་བཏགས་པ་མེད་དོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་གངྒཱའི་ཀླུང་གི་[1]བྱེ་མ་སྙེད་དག་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་ཆོས་རྣམས་བདག་མེད་ཅིང་སྐྱེ་བ་མེད་པ་ལ་བཟོད་པ་ཐོབ་ན། དེ་ཉིད་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཆེས་མང་དུ་བསྐྱེད་དོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡོངས་སུ་གཟུང་བར་མི་བྱའོ། །ཆེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡོངས་སུ་གཟུང་བར་མི་བགྱི་ལགས་སམ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། ཡོངས་སུ་གཟུང་མོད་ཀྱིས། ལོག་པར་མི་གཟུང་སྟེ། དེས་ན་ཡོངས་སུ་གཟུང་བ་ཞེས་བྱའོ། །རབ་འབྱོར། གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བཞུད་དམ། བྱོན་ཏམ། བཞེངས་སམ། བཞུགས་སམ། མནལ་བར་[2]མཛད་དོ། །ཞེས་དེ་སྐད་ཟེར་ན། དེས་ན་ངས་བཤད་པའི་དོན་མི་ཤེས་སོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་

1 ཀླུང་གི་ ལྷ་ནང་མི་སྣང་།
2 མནལ་བ་ སྡེ།

གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་སྟེ། གར་ཡང་མ་བཞུད། གང་ནས་ཀྱང་མ་བྱོན་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱའོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ན་སའི་རྡུལ་རྣམས་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་དེ་དག་འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་བཞིན་དུ་ཕྱེ་མར་བྱས་ན། རབ་འབྱོར། འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་དེ་མང་པ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་དེ་ལྟར་ལགས་ཏེ།[1] རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་དེ་མང་བ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། གལ་ཏེ་ཚོགས་ཤིག་མཆིས་པར་གྱུར་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་བཀའ་མི་སྩོལ་[2]བའི་སླད་དུའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ་ཚོགས་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ།

དེས་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་བགྱིའོ། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ། ཁམས་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། དེས་ན། སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་བགྱིའོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། གལ་ཏེ་ཁམས་ཤིག་མཆིས་པར་གྱུར་ན། དེ་ཉིད་རིལ་པོར་འཛིན་པར་

1 དེ་དེ་ལྟ་ལགས་ཏེ། སྣེ། དེ་དེ་ལགས་ཏེ། སྣར།

2 སྩལ་ སྣེ། སྣར།

འགྱུར་བའི་སྐད་དུའོ། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་རིལ་པོར་འཛིན་པར་གང་གསུངས་པ་དེ། འཛིན་པ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། དེས་ན་རིལ་པོར་འཛིན་པ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། རིལ་པོར་འཛིན་པ་ཉིད་ནི། ཐ་སྙད་དེ། ཆོས་དེ་ནི་བརྗོད་དུ་མེད་པ་ཡིན་ན། དེ་ཡང་བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས་བཟུང་ངོ་། །རབ་འབྱོར། གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བདག་ཏུ་ལྟ་བར་གསུངས་ཤིང་།[1] དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་སེམས་ཅན་དུ་ལྟ་བ་དང་། སྲོག་ཏུ་ལྟ་བ་དང་། གང་ཟག་ཏུ་ལྟ་བར་གསུངས་སོ། །ཞེས་ཟེར་ན། རབ་འབྱོར། དེ་ཡང་ཡང་དག་པར་[2]སྨྲ་བས་སྨྲ་བ་ཡིན་ནམ། རབ་འབྱོར་གྱིས་གསོལ་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། བདེ་བར་གཤེགས་པ། དེ་ནི་མ་ལགས་སོ། །དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བདག་ཏུ་ལྟ་བར་གང་གསུངས་པ་དེ། ལྟ་བ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་སླད་དུ་སྟེ། དེས་ན་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་ཞེས་བགྱིའོ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་[3]འདི་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཤེས་པར་བྱ། བལྟ་བར་བྱ། མོས་པར་བྱ་སྟེ། ཅི་ནས་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་ལ་ཡང་མི་གནས་པ་དེ་ལྟར་མོས་པར་བྱའོ།། དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་ཞེས་བྱ་བ་

1 གསུངས་ཏེ། སྡེ། གསུངས། སྣ།
2 དེ་ཡང་དག་པར་ སྡེ།
3 ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ སྡེ།

ཏེ། འདུ་ཤེས་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། དེས་ན་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་ཞེས་བྱའོ། །ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་གང་གིས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དཔག་ཏུ་མེད་ཅིང་གྲངས་མེད་པ་དག་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་བླངས་ནས་འཛིན་ཏམ། ཀློག་གམ། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་དམ། གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་ན། དེ་ཉིད་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་[1]མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ། །ཇི་ལྟར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་ཅེ་ན། ཇི་ལྟར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་མི་སྟོན་པ་དེ་[2]བཞིན་དུ་སྟེ། དེས་ན་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་པ་ཞེས་བྱའོ།།

སྐར་མ་རབ་རིབ་མར་མེ་དང་། །
སྒྱུ་མ་ཟིལ་པ་ཆུ་བུར་དང་། །
རྨི་ལམ་གློག་དང་སྤྲིན་ལྟ་བུར།[3] །

འདུས་བྱས་དེ་ལྟར་བལྟ་བར་བྱ། །བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ནས་གནས་བརྟན་རབ་འབྱོར་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་དག་དང་། འཁོར་བཞི་པོ་དགེ་སློང་དང་། དགེ་སློང་མ་དང་། དགེ་བསྙེན་དང་། དགེ་

1 ཆེས་ ལྷ་ནང་མི་སྣང་།
2 དེ་ སྟེ་ནང་མི་གསལ།
3 ལྟ་བུ། ལྷ། སྣ།

བསྙེན་མ་དེ་དག་དང་། ལྷ་དང་། མི་དང་། ལྷ་མ་ཡིན་དང་། དྲི་ཟར་བཅས་པའི་འཇིག་རྟེན་ཡི་རངས་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་པ་ལ་མངོན་པར་བསྟོད་དོ། །འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ་རྫོགས་སོ།།

རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་བཤད་པ། བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། བཛྲ་ཚྪེདིཀཱཡཱ་པྲཛྙཱ་པཱརམིཏཱཡཱ་བྱཱཁྱཱོཔནིབནྡྷནཀཱརིཀཱ། བོད་སྐད་དུ། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་བཤད་པ། བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ། འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གཞོན་ནུར་གྱུར་པ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། །

ཕན་གདགས་པ་ཡི་དམ་པ་ནི། །
ལུས་དང་འཁོར་བཅས་ཤེས་པར་བྱ། །
ཐོབ་དང་མ་ཐོབ་མི་ཉམས་པ། །
ཡོངས་སུ་གཏད་པའི་དམ་པ་ཡིན། ། ༡

སེམས་ལ་ཕན་པའི་བསམ་པ་ནི། །
རྒྱ་ཆེར་མཆོག་དང་གཏན་དུ་དང་། །
ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་གནས་པ་སྟེ། །
ཐེག་པ་འདི་ལ་ཡོན་ཏན་རྫོགས། ། ༢

ཟང་ཟིང་མི་འཛིགས་ཆོས་ཀྱི་ནི། །
སྦྱིན་པ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་དྲུག་སྟེ། །
གཅིག་དང་གཉིས་དང་གསུམ་གྱིས་ནི། །
ལམ་དེ་འདིར་ནི་མི་གནས་ཡིན། ། ༣

ལུས་དང་ལན་དུ་ཕན་འདོགས་དང་། །
རྣམ་པར་སྨིན་ལ་ཆགས་པ་མེད། །

མི་འཇུག་པ་དང་གཞན་དག་ཏུ། །
འཇུག་པ་ཡོངས་སུ་སྤང་ཕྱིར་རོ། ། ༣

འཁོར་དུ་རབ་ཏུ་འཛིན་པ་དེས། །
མཚན་མ་ལས་ནི་སེམས་བཟློག་[1]དང་། །
ཕྱིར་ཞིང་[2]ཐེ་ཚོམ་སྐྱེ་བ་ལས། །
སེམས་ནི་བཟློག་པར་བྱེད་པ་ཡིན། ། ༤

འདུས་བྱས་ཉིད་དུ་ཀུན་བརྟགས་པས། །
འགྱུར་བའི་འགོག་པ་བཟློག་པར་མཛད། །
མཚན་ཉིད་གསུམ་ནི་འགྱུར་བའི་ཕྱིར། །
དེ་མེད་པ་[3]ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས། ། ༥

དུས་ན་ཆེ་ན་རྒྱུ་དང་འབྲས། །
བཙས་པར་ཟབ་པར་བསྟན་པ་ནི། །
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གསུམ་ལྡན་པ།[4] །
ཡོད་པའི་ཕྱིར་ན་དོན་མེད་མིན། ། ༦

སྔོན་ཆད་སངས་རྒྱས་གཞན་དག་ལ། །
བསླབ་པའི་སྒོ་ནས་བསྙེན་བཀུར་བྱས། །

---

1 སེམས་བཟྟོད། པེ་ཀིང་།
2 ཕྱིར་ཞིབ། པེ་ཀིང་།།
3 དེ་ཡོད་པ་ ལེགས་སྦྱར།
4 ལྡན་ན། གསེར་བྲིས།

དགེ་བ་དག་ཀྱང་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར། །
ཁྲིམས་ལྡན་ཡོན་ཏན་ལྡན་པར་བསྟན། ། ༨

གང་ཟག་ཆོས་དང་བཅས་རྣམས་ཀྱི། །
འདུ་ཤེས་སྤངས་ཕྱིར་ཤེས་རབ་ལྡན། །
དོན་བརྒྱད་ཡོད་པའི་བྱེ་བྲག་གིས། །
འདུ་ཤེས་རྣམས་ལ་བརྒྱད་དུ་འགྱུར། ། ༩

དངོས་པོ་སོ་སོ་རྒྱུན་གྱིས་འཇུག །
ཇི་སྲིད་འཚོ་ཡི་བར་དུ་གནས། །
ཕྱིར་ཡང་འགྲོ་བར་སྦྱོར་བས་ན། །
བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་རྣམ་བཞིར་འགྱུར། ། ༡༠

ཀུན་མེད་ཕྱིར་དང་མེད་པ་ནི། །
ཡོད་པའི་ཕྱིར་དང་བརྗོད་མེད་ཕྱིར། །
བརྗོད་པའི་སྦྱོར་བ་ཡོད་པས་ན། །
ཆོས་ཀྱི་འདུ་ཤེས་རྣམ་བཞིར་འགྱུར། ། ༡༡

དེ་དག་མོས་པའི་དབང་གིས་ན། །
དད་པས་ཡང་དག་འདུ་ཤེས་སོ། །
སྒྲ་བཞིན་འཛིན་པ་མ་ཡིན་དང་། །
ཡང་དག་བསྟན་པ་འཛིན་ཕྱིར་རོ། ། ༡༢

སངས་རྒྱས་འབྲས་བུས་དཔོག་མེད་མཛད། |
སྔོན་ནས་ཤེས་པས་ཕྱུར་སུ་ཆུད། |
སྙིང་དང་བཀུར་སྟི་འདོད་པ་རྣམས། |
དེ་སྐད་སྨྲ་བ་བཟློག་པའི་[1]ཕྱིར། | ༡༣

ཁོང་དུ་ཆུད་པ་ཆོས་རྣམས་ལ། |
མི་གནས་ཕྱིར་དང་མཐུན་པའི་ཕྱིར། |
གཟིངས་དང་འདྲ་བར་ཡོངས་སུ་སྤྲངས།[2] |
དེ་ཕྱིར་ཆོས་ཀྱི་དགོངས་པར་བཞེད་[3]། | ༡༤

སྤྲུལ་པ་ཡིན་པས་སངས་རྒྱས་མིན། |
ཆོས་ཀྱང་བཤད་པ་མེད་པ་ཡིན། |
བསྟན་ཀྱང་གཉིས་སུ་གཟུང་དུ་མེད། |
ཚིག་ལམ་མཚན་ཉིད་མིན་བརྗོད་མེད། | ༡༥

དེ་འཛིན་པ་དང་བསྟན་པ་ནི། |
བསོད་ནམས་སྐྱུད་ཕྱིར་དོན་མེད་མིན། |

1 བརྗོད་པའི། པོ་ཀིང་།
2 ལྷང་། གསེར་བྲིས། ལྷངས། པེ་ཀིང་།
3 བཞིང་། པེ་ཀིང་།

བསོད་ནམས་བྱང་ཆུབ་རྟོན་མིན་[1]དང་། །
གཉིས་ནི་རྟོན་པ་[2]ཡིན་ཕྱིར་རོ། ། ༡༦
ངོ་བོ་ཉིད་འཐོབ་རྒྱུ་ཡིན་པས། །
དེ་ལས་གཞན་པ་སྐྱེ་བ་ཡིན། །
སངས་རྒྱས་ཆོས་རྣམས་མ་འདྲེས་ཕྱིར། །
མཆོག་ཡིན་པས་ན་བསོད་ནམས་བསྒྲུབས། ། ༡༧
རང་གི་འབྲས་བུ་གཟུང་མེད་ཕྱིར། །
གཟུང་དུ་མེད་ཅིང་བརྗོད་དུ་མེད། །
སྒྲིབ་པ་གཉིས་ལས་ངེས་གྲོལ་ཕྱིར། །
རབ་འབྱོར་འདི་ལ་སྒྲིབ་གཉིས་མེད། ། ༡༨
མར་མེ་མཛད་ལས་[3]སངས་རྒྱས་ཀྱིས། །
རྟོགས་པ་ཚིག་[4]གིས་བླངས་པ་མེད། །
དེ་ཡི་ཕྱིར་ན་རྟོགས་པ་ལས། །
གཟུང་དུ་མེད་དང་བརྗོད་མེད་གྲུབ། ། ༡༩
ཡེ་ཤེས་རྒྱུ་མཐུན་རྣམ་རིག་ཙམ། །
ཡིན་པས་ཞིང་དུ་འཛིན་པ་མེད། །

---

1 སྟོན་མིན་ གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།
2 རྟོག་པ་ གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།
3 ལ། པེ་ཀིང་།
4 ཚིགས་ པེ་ཀིང་།

ལུས་མེད་ཕྱིར་དང་མཆོག་གི་ཕྱིར། །
བགོད་པ་མེད་པ་བགོད་པར་བཞེད། ། ༣༠

རྫོགས་པར་ལོངས་སྤྱོད་རི་རབ་ལྟར། །
རྒྱལ་པོར་འཛིན་པ་ཡོངས་མི་མངའ། །
ཟག་བཅས་ཉིད་དུ་དེ་མེད་དང་། །
འདུས་བྱས་ཉིད་དུ་མེད་ཕྱིར་རོ། ། ༣༡

མང་བའི་བྱེ་བྲག་བསྟན་ཕྱིར་དང་། །
ཁྱད་པར་དག་ཀྱང་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར། །
སྔ་མ་དང་ནི་ཕྱི་མ་ཡིས། །
བསོད་ནམས་དཔེ་ནི་ཡང་བསྟན་ཏོ། ། ༣༢

རྣམ་གཉིས་སྣོད་དུ་འགྱུར་པ་དང་། །
རྒྱུ་མཐུན་ཡིན་པས་ཆེ་བ་དང་། །
ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་རྒྱུར་འགྱུར་དང་། །
དམའ་བས་ཟིལ་གྱིས་གནོན་ཕྱིར་རོ། ། ༣༣

དེ་ཡི་འབྲས་མཆོག་སྡུག་བསྔལ་ཕྱིར། །
ཉིད་དཀའི་ཕྱིར་དང་མཆོག་ཕྱིར་དང་། །
ཤེས་བྱའི་ཕ་རོལ་ཕྱིན་མེད་ཕྱིར། །
གཞན་དང་མཐུན་མོང་མ་ཡིན་ཕྱིར། ། ༣༤

ཤིན་ཏུ་ཟབ་པའི་རང་བཞིན་ཕྱིར། །
མདོ་སྡེ་བཞན་ལས་ཁྱད་ཞུགས་ཕྱིར། །
རྒྱུ་ནི་དག་ཅིང་ཕལ་ཆེན་ཕྱིར། །
བསོད་ནམས་ལས་ནི་བསོད་ནམས་འཕགས། ། ༣༥

འདི་ལྟར་དཀའ་བ་སྤྱོད་པ་ལ། །
ཅི་མི་སྙམ་པ་དགེ་ཕྱིར་དང་། །
དེ་ཡི་ཡོན་ཏན་ཚད་མེད་པས། །
མཆོག་གི་དོན་དུ་བརྗོད་པ་ཡིན། ། ༣༦

བདག་ཏུ་འཛིན་དང་གནོད་སེམས་ཀྱི། །
འདུ་ཤེས་མེད་ཕྱིར་སྡུག་བསྔལ་མེད། །
སྤྱོད་པ་[1]སྡུག་བསྔལ་འབྲས་བུ་ཅན[2]། །
སྙིང་རྗེ་ཡོད་ཕྱིར་བདེ་དང་ལྡན། ། ༣༧

དེ་ཕྱིར་སེམས་ནི་མི་བཏང་བར། །
སྒྲུབ་ལ་འབད་ཅིང་བརྟན་[3]པར་བྱ། །
བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཕྱིན་ཐོབ་དང་། །
དེ་ལ་སྦྱོར་ལས་བྱུང་བ་ཉིད། ། ༣༨

---

1 སྦྱོར་བ། པེ་ཀིང་།
2 སྡུག་བསྔལ་འབྲས་བུ་མིན། ལེགས་སྦྱར།
3 བསྟན། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།

རྒྱུ་ཡི་ཚུལ་གྱིས་བསྒྲུབ་པ་ནི། །
སེམས་ཅན་དོན་དུ་ཤེས་པར་བྱ། །
སེམས་ཅན་དངོས་པོ་མཚན་མ་ནི། །
ཡོངས་སུ་སྤང་བར་ཤེས་པར་བྱ། ། ༢༩

དེ་དངོས་མིང་དང་ཕུང་པོ་ཡིན། །
སངས་རྒྱས་ཡང་དག་གཟིགས་ལྡན་པས། །
རྒྱལ་བ་དེ་ཡི་འདུ་ཤེས་དང་། །
བྲལ་བའི་ཕྱིར་ན་དེ་གཉིས་མེད། ། ༣༠

འབྲས་བུ་ལ་ནི་མི་གནས་ལམ། །
དེ་ཡི་འབྲས་བུ་འཐོབ་རྒྱུ་ཡིན། །
སངས་རྒྱས་ཡང་དག་གསུངས་བའི་ཕྱིར། །
དེ་ཡང་རྣམ་བཞིར་ཤེས་པར་བྱ། ། ༣༡

དམ་བཅས་ཐེག་པ་དམན་པ་དང་། །
ཐེག་པ་ཆེན་པོ་སྟོན་པ་དང་། །
ལུང་བསྟན་ཐམས་ཅད་བསྟན་པ་རྣམས། །
སླུ་བར་བྱེད་པ་མིན་ཕྱིར་རོ། ། ༣༣

དེས་ཐོབ་མིན་[1]ཞིང་མཐུན་པའི་ཕྱིར། །
བདེན་པ་མེད་ཅིང་རྫུན་མེད་བཞིན། །

1 མིང་། གསེར་བྲིས།

སྒྲ་བཞིན་དུ་ནི་ཞེན་པ་ཡི། |
གཉེན་པོ་ཉིད་དུ་བསྟན་པ་ཡིན། | ༣༣

དེ་བཞིན་ཉིད་ནི་རྟག་ཏུ་ཡང་། |
ཀུན་ལ་ཡོད་བཞིན་མི་འཐོབ་པ། |
གནས་དང་བཅས་པས་མ་ཤེས་ཕྱིར། |
གཅིག་ཤེས་ཀྱིས་ནི་ཤེས་ཕྱིར་འཐོབ། | ༣༤

མི་ཤེས་པ་ནི་མུན་པ་འདྲ། |
ཤེས་པ་སྣང་བ་འདྲ་བར་བཞེད། |
གཉེན་པོ་དང་ནི་མི་མཐུན་ཕྱོགས། |
ཐོབ་དང་ཉམས་པར་འགྱུར་ཕྱིར་རོ། | ༣༥

ཆོས་ལ་སྒྲུབ་པ་ཇི་ལྟ་བུས། |
བསོད་ནམས་ཅི་འདྲ་འཐོབ་པ་དང་། |
ལས་ནི་གང་དང་ལྡན་པ་དེ། |
སྒྲུབ་པ་ཡིན་ཏེ་དེ་བརྗོད་དོ། | ༣༦

ཡི་གེ་ལ་ནི་རྣམ་[1]གསུམ་སྟེ། |
ཆོས་འཛིན་པ་དང་རྒྱས་[2]ཐོས་ལ། |

---

1 རྣམས། པེ་ཀིང་།
2 རྒྱལ། པེ་ཀིང་།

དོན་ནི་གཞན་ལ་བདག་ཉིད་ཀྱིས། །
གཉེན་དང་བསམ་ལས་ཆུབ་པར་འགྱུར། ། ༣༧

འདི་ནི་བདག་སྨིན་བྱེད་གཞན་ནི། །
སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་བྱེད་ཡིན། །
དངོས་དང་དུས་ནི་ཆེ་བའི་ཕྱིར། །
བསོད་ནམས་ལས་ནི་བསོད་ནམས་འཕགས། ། ༣༨

སྤྱོད་ཡུལ་མིན་དང་མ་འདྲེས་དང་། །
དེ་བཞིན་ཆེ་བ་ཉིད་ལ་བརྟེན། །
ཐོས་པ་རྙེད་པར་དཀའ་བ་དང་། །
ཁམས་ཀྱང་རྒྱས་བྱེད་བླ་ན་མེད། ། ༣༩

དམ་པའི་ཆོས་ནི་འཛིན་པ་དང་། །
གནས་ཀྱང་སྟོད་དུ་བྱ་བ་དང་། །
སྒྲིབ་པ་རྣམས་ཀྱང་འདག་པ་དང་། །
མངོན་པར་ཤེས་པ་མྱུར་བ་དང་། ། ༤༠

འཇིག་རྟེན་འབྱོར་པ་སྣ་ཚོགས་ཀྱི། །
རྣམ་སྨིན་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བ་སྟེ། །
འདི་དག་ཆོས་ལ་སྒྲུབ་པ་ཡི། །
ལས་རྣམས་ཡིན་པར་རབ་ཏུ་བསྟན། ། ༤༡

སྒྲུབ་པ་སོ་སོ་བདག་རང་ལ། |
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔར་རྟོག་པ་ཡིན། |
མི་གནས་སེམས་ནི་གང་ཡིན་པའི། |
སེམས་ཀྱི་སྒྲིབ་པ་[1]ཡིན་པར་བསྟན། | ༨༢

ཕྱི་ནས་ཀྱང་ནི་ལུང་བསྟན་ཕྱིར། |
མར་མེ་མཛད་ལས་སྤྱད་མཆོག་མིན། |
བྱང་ཆུབ་དེ་[2]ཡི་སྤྱོད་དང་འདྲ། |
བྱས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་མི་བདེན། | ༨༣

དེའི་མཚན་མེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས། |
རྫུན་པ་མེད་ཅེས་ཡོངས་སུ་བསྟན། |
དེ་ཕྱིར་ཆོས་རྣམས་སངས་རྒྱས་ཆོས། |
ཐམས་ཅད་དངོས་མེད་རང་མཚན་ཉིད[3]། | ༨༤

སངས་རྒྱས་ཆོས་ཀྱི་སྐུར་བཞེད་དེ། |
མི་དེ་དང་ནི་འདྲ་བ་ཡིན། |
སྐུ་ནི་སྒྲིབ་པ་མེད་དང་ལྡན། |
ཐམས་ཅད་དུ་ནི་འགྲོ་བ་དང་། | ༨༥

---

1 སྒྲུབ་པ། གསེར་བྲིས། པེ་ཅིང་།
2 བདེ། པེ་ཅིང་།
3 རབ་མཚན་ཉིད།། གསེར་བྲིས། པེ་ཅིང་།

ཡོན་ཏན་ཆེ་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། །
དེ་ཉིད་སྐུ་ནི་ཆེ་བ་ཡིན། །
མེད་པའི་ལུས་ནི་ཡོད་པས་ན། །
དེ་ནི་མེད་པའི་ལུས་ཞེས་བྱ། ། ༨༦

ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ལ་མི་མཁས་པ། །
སེམས་ཅན་མྱ་ངན་འདའ་བ་དང་། །
ཞིང་རྣམས་དག་པར་བྱ་བར་སེམས། །
དེ་ན་ཕྱིན་ཅི་ལོག་པ་ཡིན། ། ༨༧

སེམས་ཅན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡི། །
ཆོས་རྣམས་སུ་ཞིག་བདག་མེད་པར། །
བློས་མོས་འཕགས་མིན་འཕགས་པའང་རུང་། །
དེ་ནི་བློ་དང་ལྡན་ཞེས་བརྗོད། ། ༨༨

ཆོས་རྣམས་ལ་ནི་མི་དམིགས་ཀྱང་། །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ལ་སྤྱན་མེད་མིན། །
དེ་ལྟའང་རྣམ་པ་ལྔ་ཡོད་དོ། །
ནོར་བའི་དོན་དུ་གཟིགས་པའི་ཕྱིར། ། ༨༩

ནོར་བའི་རྣམ་རིག་སྣ་ཚོགས་པ། །
དྲན་པ་ཉེ་བར་བཞག་མེད་ཕྱིར། །

དེ་ཡི་རྒྱུན་ནི་གཞི་མེད་དེ། །
དེ་ཡི་ཕྱིར་ན་ནོར་ཞེས་བྱ། ། ༥༠

བསོད་ནམས་ཡེ་ཤེས་གཞི་ཡིན་ཕྱིར། །
ནོར་པ་མ་ཡིན་ཤེས་པར་བྱ། །
དེ་ལྟ་བས་ན་བསོད་ནམས་ཕྱིར། །
དཔེ་ནི་བཟླས་ཏེ་བསྟན་པར་མཛད། ། ༥༡

དཔེ་བྱད་བཟང་པོ་ཞེས་བྱ་བ། །
ཆོས་ཀྱི་སྐུར་སྒྲུབ་མ་ཡིན་ཏེ། །
མཚན་རྣམས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའང་མིན། །
དེ་ཕྱིར་སྐུ་དེའི་སྐུ་མིན་བཞེད། ། ༥༢

ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ལས་དབྱེར་མེད་ཕྱིར། །
གཉིས་པོ་དེ་བཞིན་གཤེགས་མེད་མིན། །
ཕུན་སུམ་ཚོགས་ཞེས་ཡང་བརྗོད་པས། །
དེ་ཕྱིར་གཉིས་པོ་མེད་ལས་ཡོད། ། ༥༣

སངས་རྒྱས་བཞིན་དུ་བསྟན་མེད་ཕྱིར། །
བསྟན་པ་རྣམ་པ་གཉིས་ལས་བརྟགས། །
ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ལས་དབྱེར་མེད་པས། །
བསྟན་པའང་རང་གི་མཚན་ཉིད་མེད། ། ༥༤

སྟོན་དང་བཤད་བྱ་ཟབ་པ་ལ། །
དད་མེད་པ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། །
དེ་དག་འཕགས་མིན་འཕགས་ལྡན་ཕྱིར། །
སེམས་ཅན་མེད་མིན་སེམས་ཅན་མིན། ། ༥༥

ཆོས་རྣམས་རྡུལ་ཙམ་མེད་ཕྱིར་དང་། །
ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ལ་འཕེལ་མེད་[1]དང་། །
དག་པ་མཉམ་[2]ཕྱིར་རང་མཚན་ཕྱིར། །
ཐབས་ཀྱང་བླ་ན་མེད་པའི་ཕྱིར། ། ༥༦

བྱང་ཆུབ་བླ་མེད་ཞེས་པར་བྱ།[3] །
ཟག་དང་བཅས་པ་ཆོས་མིན་ཕྱིར། །
དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་མ་ཡིན་ནོ། །
དེ་ཕྱིར་དེ་ཉིད་དགེ་བའི་ཆོས། ། ༥༧

བསྟན་པ་ལུང་དུ་མ་བསྟན་ཀྱང་། །
ཐོབ་པར་[4]མི་འགྱུར་བཞིན་མ་ཡིན། །

---

1 སྐྱེ་མེད། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།
2 མཉན། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།
3 བོད་སྐད་དུ་གོ་རིམ་དེ་བཞིན་ཡོད་ཀྱང་། ལེགས་སྦྱར་དུ་ཡོད་པའི་གོ་རིམ་ནི་འདི་ལྟ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་བླ་མེད་ཞེས་པར་བྱ། །ཐབས་ཀྱང་བླ་ན་མེད་པའི་ཕྱིར། །
4 ཐོས་པར། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།

དེ་ཕྱིར་རིན་ཆེན་ཆོས་གཅིག་ནི། །
རིན་ཆེན་མཐའ་ཡས་ལས་ཀྱང་འཕགས། ། ༥༨

གྲངས་དང་མཐུ་དང་རིགས་རྣམས་དང་། །
འབྲེལ་པ་དག་གི་ཁྱད་པར་ནི། །
བརྟགས་ཀྱང་འཇིག་རྟེན་ཐམས་ཅད་ན། །
དཔེ་བྱར་[1]རུང་བ་མི་རྙེད་དོ། ། ༥༩

ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ནི་མཉམ་པ་དང་། །
ཕུང་པོ་མིང་[2]བཅས་ཆོས་དབྱིངས་ལས། །
ཕྱི་རོལ་མ་གྱུར་དེ་ཡི་ཕྱིར། །
རྒྱལ་བས་སེམས་ཅན་བཀྲོལ་བ་མེད། ། ༦༠

དགྲོལ་བྱའི་སེམས་ཅན་འཛིན་ན་ནི། །
དེ་ལ་ཆོས་སུ་འཛིན་འགྱུར་ཏེ། །
བདག་ཏུ་འཛིན་དང་ཉེས་པ་མཚུངས། །
གཟུང་དུ་མེད་པས་འཛིན་པར་བཞེད། ། ༦༡

གང་ཕྱིར་འཁོར་ལོ་སྒྱུར་བ་ཡང་། །
དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བཀོལ་འགྱུར་ཕྱིར། །

---

1 བྱད། པེ་ཀིང་།
2 མི། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ། །
གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ལས་བརྟགས་པ་མིན། ། ༦༢
མཚན་ནི་རྣམ་པར་སྨིན་པ་ཡི། །
བསོད་ནམས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལས། །
ཆོས་སྐུ་ཐོབ་པར་མི་བཞེད་དོ། །
ཐབས་དང་མཚན་ཉིད་མི་འདྲའི་ཕྱིར། ། ༦༣
ཆོས་སྐུ་དེ་བཞིན་ཉིད་ཡིན་ཏེ། །
རྣམ་ཤེས་སྤྱོད་ཡུལ་ཡིན་པའི་ཕྱིར། །
གཟུགས་དང་དེ་ནི་སྒྲ་ཙམ་ལས། །
སྐྱེ་བོ་སངས་རྒྱས་མི་རྟོགས་སོ། ། ༦༤
བསོད་ནམས་ཆུད་ཟར་འགྱུར་བ་མེད། །
དེ་ཡི་འབྲས་བུའང་འཆད་མི་འགྱུར། །
དེ་[1]ཉི་དྲི་མེད་ཐོབ་པས་ན། །
བཟོད་པ་ཐོབ་ཀྱང་ཆད་མི་འགྱུར། ། ༦༥
དེ་ལྟ་བས་ན་བསོད་ནམས་ཕྱིར། །
དཔེ་བསྟན་པ་ནི་ཡང་མཛད་དོ། །
བསོད་ནམས་དེས་ནི་རྣམ་སྨིན་མེད། །
དེ་ཕྱིར་འཛིན་བཅས་ལོག་འཛིན་མིན། ། ༦༦

---

1 དཔེ། གསེར་བྲིས། པེ་ཅིང་།

དེ་དག་གི་ནི་བསོད་ནམས་དེའི། |
འབྲས་བུ་སྤྲུལ་དང་སེམས་ཅན་འདུལ། |
སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་འཕྲིན་ལས་དེ། |
ལྷུན་གྱིས་གྲུབ་པར་ཕྱོགས་ན་མཛད། | ༧༧

སྤྲུལ་པ་རྣམས་ཀྱིས་བཞུད་ལགས་སོ། |
རྟག་ཏུ་མི་གཡོ་སངས་རྒྱས་རྣམས། |
དེ་དག་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་གནས་པ། |
གཅིག་དང་ཐ་དད་མ་ཡིན་བཞིན། | ༧༨

ཁམས་རྡུལ་ཕྱི་མར་བྱ་བ་ནི། |
དེ་ནི་དེ་ཡི་དཔེ་ཡིན་ནོ། |
འདི་ལ་ཕྱི་མར་བྱ་བ་ནི། |
ཉོན་མོངས་ཟད་པའི་དཔེ་ཡིན་ནོ། | ༧༩

ཚོགས་མིན་རིལ་པོ་མ་ཡིན་པས། |
དུ་མ་ཉིད་ཀྱི་དཔེ་ཡིན་ནོ། |
དེ་ལ་འདུས་པར་གནས་པ་ནི། |
ཐ་དད་མ་ཡིན་དཔེ་ཡིན་ནོ། | ༨༠

ཐ་སྙད་ཙམ་དུ་མ་ཤེས་ཕྱིར། |
བྱིས་པ་གཞན་དུ་ལོག་པར་འཛིན། |

བདག་དང་ཆོས་གཉིས་མེད་པའི་ཕྱིར། །
དེ་བས་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་མི་འགྱུར། ། ༧༡

    དེ་ཕྱིར་དོན་མེད་ཆོར་བརྟགས་ལས། །
    ལྷ་བ་མེད་དང་ལྷ་བར་འགྱུར། །
    དེ་གཉིས་སྒྲིབ་པ་ཕྲ་བ་སྟེ། །
    དེ་ལྟར་ཤེས་པས་སྤོང་བར་འགྱུར། ། ༧༢

དེ་ཡང་ཡེ་ཤེས་རྣམ་གཉིས་དང་། །
ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱིས་སྤང་བར་བསྟན། །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་སྤྲུལ་རྣམས་ཀྱིས། །
བཤད་པའི་བསོད་ནམས་ཟད་མི་འགྱུར། ། ༧༣

    དེ་བཞིན་གཤེགས་རྣམས་སྟོན་པ་ནི། །
    ང་ནི་སྤྲུལ་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས། །
    བདག་ཉིད་སྟོན་པ་མི་མཛད་ཕྱིར། །
    བསྟན་པ་དེ་ནི་ལེགས་པ་ཡིན། ། ༧༤

དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མྱ་ངན་འདས། །
འདུ་བྱེད་མ་ཡིན་གཞན་པ་མིན། །
འདིར་ནི་ཡང་དག་ཤེས་པ་ཡིས། །
འདུས་བྱས་རྣམ་པ་དགུར་བརྟག་ཕྱིར། ། ༧༥

ལྷ་དང་མཚན་མ་རྣམ་ཤེས་དང་། །
གནས་དང་ལུས་དང་ལོངས་སྤྱོད་དང་། །
འདས་པ་དང་ནི་ད་ལྟར་དང་། །
མ་འོངས་བརྟག་པར་བྱ་བ་ཡིན། ། ༧༦

མཚན་ཉིད་དང་ནི་ལོངས་སྤྱོད་[1]དང་། །
འཇུག་པ་རྣམས་ནི་བརྟག་པ་ལས། །
འདུ་བྱེད་རྣམས་ཀྱི་གཞི་དག་ལ། །
དབང་བྱེད་དྲི་མ་མེད་པ་འཐོབ། ། ༧༧

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་བཤད་པའི་བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་
ལེའུར་བྱས་པ་རྫོགས་སོ།། །།

Acc. 30462
30572

1 ཡོག་པ། གསེར་བྲིས། པེ་ཀིང་།

35K